पहला प्रवचन

भारत का भविष्य

भारत को जवान चित्त की आवश्यकता

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहूंगा। सुना है मैंने कि चीन में एक बहुत बड़ा विचारक लाओत्से पैदा हुआ। लाओत्से के संबंध में कहा जाता है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ। यह बड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है। लाओत्से के संबंध में यह बड़ी हैरानी की बात कही जाती रही है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ। इस पर भरोसा आना मुश्किल है। मुझे भी भरोसा नहीं है। और मैं भी नहीं मानता कि कोई आदमी बूढ़ा पैदा हो सकता है। लेकिन जब मैं इस हमारे भारत के लोगों को देखता हूं तो मुझे लाओत्से की कहानी पर भरोसा आना शुरू हो जाता है। ऐसा मालूम होता है कि हमारे देश में तो सारे लोग बूढ़े ही पैदा होते हैं।

मुझे कहा गया है कि युवक और भारत के भविष्य के संबंध में थोड़ी बातें आपसे कहूं। तो पहली बात तो मैं यह कहना चाहूंगा...देख कर लाओत्से की कहानी सच मालूम पड़ने लगती है। इस देश में जैसे हम सब बूढ़े ही पैदा होते हैं। बूढ़े आदमी से मतलब सिर्फ उस आदमी का नहीं है जिसकी उम्र ज्यादा हो जाए, क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि आदमी का शरीर बूढ़ा हो और आत्मा जवान हो। लेकिन इससे उलटा भी हो सकता है। आदमी का शरीर जवान हो और आत्मा बूढ़ी हो। भारत के पास भी जवानों की कोई कमी नहीं है, लेकिन जवान आत्माओं की बहुत कमी है। और जवान आत्मा को बनाने वाले जो तत्व हैं, उनकी बहुत कमी है। चारों ओर युवक दिखाई पड़ते हैं, लेकिन युवक होने के जो बुनियादी आधार हैं उनका जैसे हमारे पास बिलकुल अभाव है।

मैं कुछ प्राथमिक बातें आपसे कहूं। पहली तो बात, युवक मैं उसे कहता हूं जिसकी नजर भविष्य की ओर होती है, फ्यूचर की ओर होती है, जो फ्यूचर ओरिएनटेड है। और बूढ़ा मैं उस आदमी को कहता हूं जो पास्ट ओरिएनटेड है, जो पीछे की तरफ देखता रहता है। अगर हम बूढ़े आदमी को पकड़ लें, तो वह सदा अतीत की स्मृतियों में खोया हुआ मिलेगा। वह पीछे की बातें सोचता हुआ, पीछे के सपने देखता हुआ, पीछे की याददाश्त करता हुआ मिलेगा। बूढ़ा आदमी हमेशा पीछे की

तरफ ही देखता है। आगे की तरफ देखने में उसे डर भी लगता है, क्योंकि आगे सिवाय मौत के, सिवाय मरने के और कोई दिखाई बात पड़ती भी नहीं।

जवान आदमी भविष्य की तरफ देखता है। और जो कौम भविष्य की तरफ देखती है वह जवान होती है। जो अतीत की तरफ, पीछे की तरफ देखती है वह बूढ़ी हो जाती है। यह हमारा मुल्क सैकड़ों वर्षों से पीछे की तरफ देखने का आदी रहा है। हम सदा ही पीछे की तरफ देखते हैं, जैसे भविष्य है ही नहीं; जैसे कल होने वाला नहीं है। जो बीत गया कल है वही सब कुछ। यह जो हमारी दृष्टि है यह हमें बूढ़ा बना देती है।

अगर हम रूस के बच्चों को पूछें तो वे चांद पर मकान बनाने के संबंध में विचार करते मिलेंगे। अगर अमेरिका के बच्चों को पूछें तो वे भी आकाश की यात्रा के लिए उत्सुक हैं। लेकिन अगर हम भारत के बच्चों को पूछें तो भारत के बच्चों के पास भविष्य की कोई भी योजना, भविष्य की कोई कल्पना, भविष्य का कोई भी स्वप्न, भविष्य का कोई उटोपिया नहीं है। और जिस देश के पास भविष्य का कोई उटोपिया न हो वह देश भीतर से सड़ना शुरू हो जाता है और मर जाता है।

भविष्य जिंदा रहने का राज, भविष्य के कारण ही आज हम निर्मित करते हैं। भविष्य के लिए ही आज हम जीते और मरते हैं। जिनके मन में भविष्य की कोई कल्पना खो जाए, उनका भविष्य अंधकारपूर्ण हो जाता है। लेकिन इस मुल्क में न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में भविष्य की तरफ देखना बंद करके अतीत की तरफ ही देखना तय कर रखा है।

हम अतीत के ग्रंथ पढ़ेंगे, अतीत के महापुरुषों का स्मरण करेंगे। अतीत की सारी बातें हमारे मन में बहुत स्वर्ण की होकर बैठ गई हैं। बुरा नहीं है कि हम अतीत के महापुरुषों को याद करें। लेकिन खतरनाक हो जाता है अगर भविष्य की तरफ देखने में हमारी स्मृति बाधा बन जाए।

कार हम चलाते हैं तो पीछे भी लाइट रखने पड़ते हैं, लेकिन अगर किसी गाड़ी में सिर्फ पीछे ही लाइट हो और आगे लाइट हम तोड़ ही डालें, तो फिर दुर्घटना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता। गाड़ी में भी रियर व्यू मिरर रखना पड़ता है, एक दर्पण रखना पड़ता है जिसमें से पीछे से दिखाई पड़े। लेकिन ड्राइवर को हम पीछे की तरफ मुंह करके नहीं बिठा सकते।

अतीत का इतना ही उपयोग है जितना रियर व्यू मिरर का एक कार में

उपयोग होता है। पीछे का भी हमें दिखाई पड़ता रहे। यह जरूरी है। लेकिन चलना भविष्य में है, बढ़ना आगे है। और अगर भविष्य की तरफ देखने वाली आंखें बंद हो जाएं, तो दुर्घटना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता।

भारत का दो हजार साल का इतिहास, एक्सीडेंट का, दुर्घटनाओं का इतिहास है। इन दो हजार सालों में हम सिवाय गड्ढों में गिरने के किन्हीं ऊंचाइयों पर नहीं उठे। गुलामी देखी है, गरीबी देखी है, बहुत तरह की दीनता और बहुत तरह की परेशानी देखी है। और आज भी हमारे पास भविष्य की कोई ऐसी योजना नहीं है कि हम यह सोच सकें कि आने वाला कल आज से बेहतर हो सकेगा। वरन जवान से जवान आदमी से भी बात की जाए तो वह भी यही कहता हुआ मिलेगा कि कल और स्थिति के बिगड़ जाने का डर है। रोज चीजें बिगड़ती चली जाएंगी ऐसी हमारी धारणा है। इस धारणा के पीछे कुछ कारण हैं।

हमने अपने उटोपिया को पास्ट ओरिएनटेड रखा हुआ है। इस देश में हमने जो समय की धारणा की है, जो हमारा टाइम आर्डर है, वह यह कहता है कि सबसे अच्छा युग हो चुका। अब आने वाला युग बुरा होगा। सतयुग हो चुका, कलियुग हो रहा है और रोज हम अंधकार में उतरते चले जाएंगे। जो भी अच्छा था वह बीत चुका। राम, कृष्ण, नानक, कबीर, बुद्ध, महावीर, जो भी अच्छे लोग हो सकते थे वे हो चुके। अब भविष्य, भविष्य में जैसे कोई अच्छे होने का हमें उपाय दिखाई नहीं पड़ता।

लेकिन ध्यान रहे, जो भविष्य में अच्छे आदमियों को पैदा हम न कर पाए तो हमारे अतीत के अच्छे आदमी झूठे मालूम पड़ने लगेंगे। अगर हम भविष्य में और श्रेष्ठताएं न छू सके तो हमारे अतीत की सारी श्रेष्ठताएं काल्पनिक और कहानियां मालूम पड़ने लगेंगी। क्योंकि बेटा बाप का सबूत होता है। और अगर बेटे गलत निकल जाएं तो अच्छे बाप की बात सिर्फ मन भुलाने की बात रह जाती है। वह गवाही नहीं रह जाता। भविष्य तय करेगा कि हमने अतीत में राम को पैदा किया या नहीं पैदा किया। अगर हम भविष्य में राम से बेहतर आदमी पैदा कर सकते हैं तो ही हमारे राम सच्चे साबित होंगे। अगर हम राम से बेहतर आदमी पैदा नहीं कर सकते तो दुनिया हमसे कहेगी कि राम सिर्फ कहानी हैं, यह आदमी तुमने कभी पैदा किया नहीं।

अगर हम भविष्य में भीख मांगेंगे तो कोई मानने को राजी न होगा कि हमारे पास स्वर्ण की नगरियां थीं। और अगर भविष्य में हम सिर्फ गुंडे और बदमाशों को पैदा करेंगे तो नानक पर कितने दिन तक भरोसा रह जाएगा कि यह आदमी हुआ था। यह बहुत ज्यादा दिन तक भरोसा नहीं रह जाएगा। इसलिए पीछे के अच्छे आदमियों को याद करना काफी नहीं है। अगर सच में ये अच्छे आदमी हुए हैं, हम ऐसा दुनिया को कहना चाहते हों, तो हमें इनसे भी बेहतर आदमी रोज पैदा करने होंगे। जो रोज ऊंचाइयां चढ़ते हैं, वे ही गवाही दे सकते हैं कि उनके अतीत में भी उन्होंने ऊंचाइयां छुई होंगी।

लेकिन अगर हम रोज गड्ढों में गिरते चले जाएं तो फिर दुनिया हमसे कहेगी कि अक्सर भिखमंगे सपने देखते हैं कि उनके बाप सम्राट थे। लेकिन ये सपनों से कुछ सिद्ध नहीं होता। इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि भिखमंगे कंसोलेशन खोज रहे हैं, सांत्वनाएं खोज रहे हैं, अपने मन को समझा रहे हैं। भूखा आदमी रात में सपना देखता है राजमहल में निमंत्रण मिलने का। लेकिन रात का सपना यह नहीं बताता कि राजमहल में निमंत्रण मिला। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि उससे इतना ही पता चलता है कि वह आदमी दिन में भूखा रहा है। हम जब अतीत की बहुत ज्यादा चर्चा करते हैं तो शक पैदा होता है। और जब हम पीछे के लोगों की बहुत गौरव गरिमा की बात करते हैं तो शक पैदा होता है। क्योंकि दुनिया हमें देखती है। हम दुनिया को कहना चाहते हैं कि हम जगतगुरु थे।

लेकिन आज दुनिया में एक भी ऐसी चीज नहीं है जो हम किसी को सिखा सकें। सारी चीजें हमें दूसरों से सीखनी पड़ रही हैं। यह जगतगुरु की नासमझी की बात बहुत दिन तक टिक नहीं सकेगी। और आज नहीं कल अगर दुनिया हमारा मजाक उड़ाने लगे और हमसे कहने लगे कि हम जगतगुरु होने का खयाल इसीलिए मन में पैदा कर लिए हैं क्योंकि हम सारे जगत के शिष्य हो गए हैं। और इस बात को भुलाने के लिए, अपने अहंकार को बचाने के लिए हम इस तरह की बातें कर रहे हैं, तो इसमें बहुत आश्चर्य न होगा।

आज सूई से लेकर हवाई जहाज तक भी हमको बनाना हो तो सारी दुनिया में कहीं और हमें सीखने जाना पड़ता है। आज हमारे पास सिखाने योग्य कुछ भी नहीं बचा है। आज हम दुनिया को कुछ भी सीखा नहीं

सकते। लेकिन हम यह बात कहे चले जाएंगे कि हम कभी दुनिया के गुरु थे। ध्यान रहे, जब कोई कौम यह बात करने लगती है, पास्ट टेंस में जब कोई कौम बोलने लगती है, तो समझ लेना कि वह दीन हो गई। जब कोई कहने लगे कि मैं अमीर था, तब समझ लेना कि वह गरीब हो गया है। और जब कोई कहने लगे कि मैं ज्ञानी था, तब समझ लेना कि वह अज्ञान में गिर गया है। और जब कोई कहने लगे कि कभी हमारी शान थी, तो समझ लेना कि शान मिट्टी में मिल चुकी है। ये सारी बातें जो हम गौरव की करते हैं हमारे धूलि में गिर जाने के अतिरिक्त और किसी बात का प्रमाण नहीं है।

अतीत को देखना उपयोगी हो सकता है। लेकिन अतीत को आंख में रखना खतरनाक है। आंख में तो भविष्य होना चाहिए, आने वाला कल होना चाहिए। जो बीत गया कल वह बीत गया। उसकी धूल उड़ चुकी है। अब जमीन पर कहीं खोजने से उसे खोजा नहीं जा सकता। अब जिस रास्ते पर हम चल चुके वह रास्ता समाप्त हो गया है। और उस रास्ते पर बने हुए चरण चिह्न अब कहीं भी नहीं खोजे जा सकते हैं। जिंदगी की कहानी आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की कहानी है। अगर हम किसी पक्षी का पीछा करें तो उसके पैरों के कोई चिह्न नहीं छूटते हैं कहीं भी, पक्षी उड़ जाता है पीछे आकाश खाली हो जाता है। जिंदगी में कहीं कोई चिह्न नहीं छूटते। जिंदगी में सब विस्मृत हो जाता है।

जिंदगी तो प्रमाण मानती है आज को। आज हम क्या हैं? यही प्रमाण होता है। आज हम क्या हैं? अगर इसे सोचें तो दो-तीन बातें खयाल में आएंगी। हमसे ज्यादा गरीब आदमी आज पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। हमसे ज्यादा अशिक्षित कोई कौम नहीं है। हमसे ज्यादा अवैज्ञानिक कोई जाति नहीं है। हमसे ज्यादा कमजोर, हमसे ज्यादा हीन, हमसे कम उम्र, हमसे ज्यादा बीमार आज जमीन पर कोई भी नहीं है। दूसरे मुल्कों की औसत उम्र अस्सी वर्ष को छू रही है। दूसरे मुल्कों में, आज रूस में सौ वर्ष के ऊपर हजारों बूढ़े, और डेढ़ सौ वर्ष के ऊपर भी कुछ बूढ़े हैं। सारी दुनिया में गरीबी विदा होने के करीब है और हमारी गरीबी रोज बढ़ती चली जाती है। जब पिछले बार बिहार में अकाल पड़ा, तो मेरे एक स्वीडिश मित्र ने मुझे एक पत्र लिखा और उसने लिखा कि हम अपने बच्चे को समझाने में बहुत असमर्थ हैं कि हिंदुस्तान में लोग भूखे मर रहे हैं। उसने मुझे लिखा कि जब मैं अपने छोटे बच्चे को कहा कि हिंदुस्तान

में लोग भूखे मर रहे हैं और करोड़ों लोग भूखे मर जाएंगे। तो उस छोटे बच्चे ने कहा कि क्या उनके पास, अगर रोटी नहीं है तो फल भी नहीं हैं? तो उन्होंने कहा, नहीं, उनके पास फल भी नहीं हैं। तो उस छोटे बच्चे ने कहा, उनके रेफ्रीजेटर में कुछ तो बचा होगा? तो उसके बाप ने कहा कि रेफ्रीजेटर उनके पास है ही नहीं। उसमें बचने का कोई सवाल नहीं है।

उस बच्चे को समझना मुश्किल हुआ कि कोई कौम ऐसी हो सकती है जहां खाने को भी न हो। सच में ही स्वीडन के बच्चे को समझना मुश्किल पड़ेगा। उसको मुश्किल इसलिए पड़ जाएगा क्योंकि बच्चा जो देखता है चारों तरफ, न किसी को भीख मांगते देखता है, न किसी को गरीबी में मरते देखता है। तो उसके लिए भरोसा करना मुश्किल है कि जमीन पर ऐसे लोग भी हैं जो करोड़ों की संख्या में भूखे मरने की हालत में आ सकते हैं।

अभी एक अमेरिकी अर्थशास्त्री ने किताब लिखी है। उन्नीस सौ सत्तासी और उस किताब में उसने यह घोषणा की है कि उन्नीस सौ सत्तासी में, आज से केवल सात साल बाद, हिंदुस्तान में इतना बड़ा अकाल पड़ सकता है जिसमें कोई दस करोड़ से लेकर बीस करोड़ लोगों के मरने की संभावना है।

मैं दिल्ली में एक बहुत बड़े नेता से बात कर रहा था। तो उन्होंने कहा, उन्नीस सौ सत्तासी अभी बहुत दूर है। अभी तो हमें उन्नीस सौ बहत्तर की फिक्र है। उसके बाद देखा जाएगा। अभी सिर्फ उन्नीस सौ बहत्तर में जो इलेक्शन होगा उसकी नेता को फिक्र है। सात साल बाद हिंदुस्तान में दस करोड़ लोग मर सकते हैं। इसकी सारी दुनिया के अर्थशास्त्री राजी हैं इस बात के लिए कि यह होकर रहेगा। क्योंकि अमेरिका जितना हमें भोजन दे रहा है उतना अब आगे नहीं दे पाएगा। उसकी ताकत रोज कम होती जा रही है। अमेरिका में चार किसान जितना काम करते हैं उनमें से एक किसान की सारी ताकत हमें मिल रही है। और अमेरिका की ताकत देने की रोज कम होती चली जाती है। उन्नीस सौ पिचासी के बाद अमेरिका हिंदुस्तान को किसी तरह का अन्न देने में समर्थ नहीं होगा। और हम रोज बच्चे पैदा करते चले जाते हैं। हम सिर्फ एक चीज में बहुत प्रोडक्टिव हैं, हम बच्चे पैदा करने में बहुत उत्पादक हैं। हम बच्चे पैदा करते चले जाते हैं। अगर किसी दिन इस

मुल्क में दस करोड़ लोगों को किसी अकाल में मरना पड़ा, तो बाकी जो लोग बचेंगे वे भी जिंदा हालत में नहीं बचेंगे। वे भी मरने की हालत में ही बचेंगे। उनका बचना बचने से भी बदतर होगा। उनका बचना शायद मरे हुए लोगों से भी ज्यादा कठिन और दूभर हो जाएगा।

लेकिन क्या कारण हैं कि सारी जमीन पर धन बरस रहा है और हम गरीब होते चले जा रहे हैं? आज अमेरिका में धन बरस रहा है, और अमेरिका की कुल उम्र तीन सौ साल की है। अमेरिका में जो समाज है आज वह तीन सौ साल पुराना है और हमारी उम्र कम से कम दस हजार साल पुरानी है। हम दस हजार साल पुरानी सभ्यता और तीन सौ साल पुरानी सभ्यता के सामने हाथ जोड़ कर भीख मांगते हुए खड़े हैं। न हमें शर्म आती, न हमें चिंता पैदा होती, न हमें घबड़ाहट होती, न हमें ऐसा लगता कि हम ये क्या कर रहे हैं! दुनिया में भिखारी तो सदा रहे हैं, लेकिन कोई पूरा देश भिखारी हो सकता है इसका उदाहरण हमने पहली बार उपस्थित किया है।

आज हर चीज की हमें भीख चाहिए। इस भीख के बिना हम जी नहीं सकते। यह कब तक चलेगा? यह कैसे चल सकता है? यह तब तक चलता ही रहेगा जब तक भविष्य को निर्मित करने की हमारे पास कोई दृष्टि नहीं है, कोई फिलासफी नहीं है। जिसमें हम भविष्य को बनाने के लिए आतुर हो जाएं। हम सिर्फ पीछे की बातें करते रहेंगे तो भविष्य को निर्मित कौन करेगा? हम सिर्फ गुणगान करते रहेंगे अतीत का, तो भविष्य के लिए श्रम कौन करेगा?

तो मैं युवा आदमी का पहला लक्षण मानता हूं भविष्य के लिए उन्मुखता और बूढ़े आदमी का लक्षण मानता हूं अतीत के प्रति लगाव। जिस आदमी के मन में भी भविष्य के प्रति लगाव है उसकी उम्र कुछ भी हो, वह जवान है और जिस आदमी के मन में भविष्य की कोई कल्पना ही नहीं है और सिर्फ अतीत का गुणगान है उसकी उम्र कुछ भी हो वह बूढ़ा है। तो मैं यह आपसे कहना चाहूंगा कि भारत में अभी भी जवान आदमी बहुत कम हैं।

एक दूसरी बात भी आपसे कहना चाहूंगा, बूढ़ा आदमी मृत्यु से भयभीत होता है। स्वभावतः मौत करीब आती है तो बूढ़ा आदमी मृत्यु से डरने लगता है। जवान आदमी का लक्षण एक ही है कि वह मौत से घबड़ाता न हो। अगर जवान आदमी भी मौत से घबड़ाता हो तो उसका

मतलब इतना ही हुआ कि वह बहुत पहले ही बूढ़ा हो गया। हिंदुस्तान में मृत्यु का इतना भय है जिसकी कल्पना करनी मुश्किल है। होना सबसे कम चाहिए, क्योंकि हम अकेली कौम हैं सारी दुनिया में, जिनका ऐसा मानना है कि आत्मा अमर है और मरती नहीं है। हम सारी दुनिया में यह कहते रहे हैं कि आत्मा अमर है और मरती नहीं है।

यह बात सच है, आत्मा अमर है और मरती नहीं है। लेकिन कहने से यह बात सच नहीं होती। और जरूरी नहीं है कि जो लोग कहते हों वे ऐसा मानते भी हों। आदमी का मन बहुत उलटा है। असल में जो आदमी मरने से डरता है वह भी कह सकता है कि आत्मा अमर है। और अपने मन को समझाने के लिए आत्मा की अमरता के सिद्धांत का उपयोग कर सकता है। हिंदुस्तान को देख कर ऐसा लगता है कि हम मरने से तो बहुत डरते हैं और साथ ही आत्मा के अमरता की बात भी किए चले जाते हैं।

अक्सर ऐसा होता है कि बूढ़ा आदमी मंदिर में बैठ कर आत्मा की अमरता के शास्त्र पढ़ने लगता है। आत्मा अमर है ऐसा पढ़ कर उसके मन को अच्छा लगता है कि मैं मरूंगा नहीं। लेकिन अगर यह भय के कारण ही वह पढ़ रहा है तो इस कारण कोई ज्ञान उत्पन्न नहीं हो जाएगा। और अगर इस बात का ज्ञान उत्पन्न हो जाए कि मैं अमर हूं और मरूंगा नहीं, तो हमारे इस मुल्क को गुलाम बनाना असंभव हो जाता। हम एक हजार साल गुलाम रहे हैं और हम कल भविष्य में किसी भी दिन गुलाम फिर हो सकते हैं। हमारे सारे उपाय ऐसे हैं कि हम किसी भी दिन गुलाम हो सकते हैं।

लेनिन ने उन्नीस सौ बीस में एक घोषणा की थी मास्को में कि कम्युनिज्म मास्को से यात्रा करके पेकिंग होता हुआ कलकत्ते से गुजरता हुआ लंदन पहुंच जाएगा, पेकिंग तो पहुंच गया और कलकत्ते में भी पैरों की आवाज सुनाई पड़ने लगी। आज कलकत्ते की सड़कों पर जगह-जगह पोस्टर लगे हुए हैं कि चीन के अध्यक्ष माओ हमारे भी अध्यक्ष हैं, चीन के चेयरमैन माउत्सु तुंग भारत के भी चेयरमैन हैं। ये कलकत्ते की सड़कों पर जगह-जगह पोस्टर लगे हैं। हम गुलामी को फिर बुलाने की चेष्टा में लग गए। और इससे पहले भी हिंदुस्तान में जितनी बार गुलामी आई हमने बुलाया।

एक हजार साल गुलाम रहने के बाद भी हमें कुछ अंदाज नहीं है, हम

फिर गुलामी बुला सकते हैं। हम नये नामों से गुलामी बुला लेंगे। कम्युनिज्म हिंदुस्तान के लिए गुलामी सिद्ध होगी। और आज बंगाल में जो दिखाई पड़ रहा है कल पूरे हिंदुस्तान में दिखाई पड़ेगा। आज बंगाल में जो है वह कल पूरे हिंदुस्तान में फैल जाएगा इसमें बहुत आश्चर्य नहीं है। क्योंकि हम डरे हुए लोग, हम मरने से भयभीत लोग, हम बिना किसी चीज से कुछ भी आए उसे झेलने को सदा तत्पर और उसमें ही संतुष्ट हो जाने के लिए राजी लोग हैं। बूढ़ा आदमी भय के कारण हर चीज से राजी हो जाता है।

जवान आदमी लड़ता है, जवान आदमी जिंदगी को बदलने की कोशिश करता है, बूढ़ा आदमी जिंदगी जैसी होती है उसके लिए राजी हो जाता है। बूढ़ा आदमी कहता है, सब भाग्य है। जवान आदमी कहता है, भाग्य हमारे श्रम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। बूढ़ा आदमी कहता है, जो भी कर रहा है भगवान कर रहा है। जवान आदमी कहता है, जो भी हम करेंगे भगवान का आशीर्वाद उसे उपलब्ध होगा।

जवान आदमी एक संघर्ष है और बूढ़ा आदमी एक संतोष है, एक सेटिसफेक्शन है। अगर गुलामी आ जाए तो उससे भी संतोष कर लेंगे, गरीबी आ जाए उससे भी संतोष कर लेंगे, जो भी हो जाए उससे हम संतुष्ट हो जाएंगे। संतुष्ट अगर हमने होने की आदत नहीं बदली तो इस मुल्क को भविष्य में फिर और भी महा अंधकार देखने के क्षण आ सकते हैं।

मैं अभी बंगाल में था। तो बंगाल में जो मुझे दिखाई पड़ा, चाहता हूं, पूरे मुल्क के एक-एक युवक को कह दूं कि वह गुलामी को निमंत्रण है। और बंगाल राजी हो जाएगा। बंगाल में दस-पच्चीस आदमी अगर एक सड़क पर एक पुलिस वाले की हत्या कर रहे हैं, तो पूरे लोग अपने दरवाजे बंद करके बैठ रहेंगे। वे भीतर बैठ कर इस बात की निंदा करेंगे कि बहुत बुरा हो रहा है। लेकिन उस बुरे के खिलाफ लड़ने बाहर नहीं निकलेंगे। अगर एक बस में आग लगाई जा रही है, तो यात्री बस में चलने वाले उतर कर नीचे खड़े हो जाएंगे और खड़े होकर चर्चा करेंगे बहुत बुरा हो रहा है। लेकिन कोई उन आग लगाने वाले पांच आदमियों को रोकने की हिम्मत नहीं जुटाएगा।

इतनी कायर कौम कैसे जवान हो सकती है! इतना कमजोर चित्त कैसे जवान हो सकता है! पूरा बंगाल देखता रहेगा, थोड़े से लोग बेवकूफियां

करेंगे और पूरा बंगाल झुक जाएगा और आज नहीं कल पूरा हिंदुस्तान झुक जाएगा। दो लाख आदमियों की बस्ती में दो सौ आदमी कुछ भी करना चाहें, तो दो लाख की बस्ती झुक जाएगी और राजी हो जाएगी। हिंदुस्तान पर चीन का हमला हुआ, तो सारा हिंदुस्तान कविता करने लगा था, आपको भी पता होगा। सारा हिंदुस्तान कहने लगा था कि हम सोए हुए शेर हैं, हमें छेड़ो मत! तो मैंने कई कवियों से पूछा कि शेरों ने कभी भी नहीं कहा है कि हम सोए हुए शेर हैं, हमें छेड़ो मत! छेड़ो और पता चल जाता है कि शेर है या नहीं! कविताएं करने की जरूरत नहीं होतीं। लेकिन पूरे हिंदुस्तान ने कविताएं कीं। जगह-जगह कवि सम्मेलन हुए, लोगों ने तालियां बजाइ□। और जिन लोगों ने कविताएं कीं—कोई को पद्मश्री की उपाधि मिल गई, कोई राष्ट्रकवि हो गया, किसी को राष्ट्रपति ने स्वर्ण-पदक भेंट कर दिए। और चीन हिंदुस्तान की जमीन दबा कर बैठ गया। और वे सोए हुए शेर सब वापस कविता करके सो गए। उनका कुछ भी पता नहीं चला कि वह कहां चले गए!

लाखों मील की जमीन में चीन ने कब्जा कर लिया। तो हिंदुस्तान के नेताओं ने बाद में कहना शुरू किया कि वह जमीन बेकार थी। वह जमीन किसी काम की ही न थी। उसमें घास भी पैदा नहीं होता था। अगर वह जमीन बेकार थी तो फिर जवानों को लड़ाना बेकार था। पहले ही जमीन छोड़ देनी थी। और अगर जमीन पर घास भी नहीं उगती थी तो उसके लिए लड़ने की कोई जरूरत नहीं थी। तो मैं उन नेताओं से कहता हूं कि अभी भी देश में जितनी जमीन और बेकार हो उसे चुपचाप दूसरों को दे देना चाहिए, ताकि कोई झंझट न हो, कोई झगड़ा न हो।

यह जो हमारा चित्त है इस चित्त को मैं बूढ़ा, ओल्ड माइंड, बूढ़ा चित्त कहता हूं। यह बूढ़ा चित्त हर चीज में संतोष खोज लेता है। इस बूढ़े चित्त को तोड़ना पड़ेगा। अतीत की तरफ देखना बंद करना पड़ेगा, भविष्य की योजना बनानी होगी, संतोष छोड़ना पड़ेगा, एक। एक निर्माण की असंतोषकारी ज्वाला चाहिए, एक सृजन की आग चाहिए। और वह आग तभी होती है जब हम हर कुछ के लिए राजी नहीं हो जाते। जब हम दुख को मिटाने का संकल्प करते हैं, अज्ञान को मिटाने का संकल्प करते हैं, जब हम बीमारी को तोड़ने का संकल्प करते हैं, जब हम दीनता, दरिद्रता और दासता को मिटाने की कसम खाते है, तब भविष्य निर्मित होना शुरू होता है।

एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूंगा। मैंने सुना है, जापान में एक छोटे से राज्य पर हमला हो गया। बहुत छोटा राज्य और बड़े राज्य ने हमला किया था। उसका सेनापति घबड़ा गया और उसने अपने सम्राट को जाकर कहा कि मैं लड़ने पर नहीं जा सकूंगा। सेनाएं कम हैं, साधन कम हैं, हार निश्चित है। इसलिए व्यर्थ अपने सैनिकों को कटवाने की कोई जरूरत नहीं हैं। हार स्वीकार कर लें। उस सम्राट ने कहा कि मैं तो तुम्हें समझता था कि तुम एक बहादुर आदमी हो, जवान हो, तुम इतने बूढ़े साबित हुए! लेकिन जब सेनापति ने तलवार नीचे रख दी तो सम्राट भी बहुत घबड़ाया।

गांव में एक फकीर था सम्राट उसके पास गया। जब भी कभी मुसीबत पड़ी थी उस फकीर से सलाह लेने वह गया था। उस फकीर ने कहा कि इस सेनापति को फौरन कारागृह में डाल दो। क्योंकि इसकी यह बात, कि हार निश्चित है, हार को निश्चित कर देगी। आदमी जो सोच लेता है, वह हो जाता है। और जब सेनापति कहेगा हार निश्चित है तो सैनिक क्या करेंगे! उनकी हार तो बिलकुल निश्चित हो जाएगी। इसे कारागृह में डाल दो और कल सुबह मैं सेनापति बन कर आपकी सेनाओं को युद्ध के मैदान पर ले जाऊंगा।

राजा बहुत घबड़ाया! क्योंकि सेनापति योग्य था, युद्धों का अनुभवी था, वह डर गया और फकीर जिसे तलवार पकड़ने का भी कोई पता नहीं था, जो कभी घोड़े पर भी नहीं बैठा था, वह युद्ध के मैदान पर क्या करेगा! लेकिन कोई उपाय न था। और राजा को राजी होना पड़ा।

वह फकीर सेनाओं को लेकर युद्ध के मैदान पर चल पड़ा। राज्य की सीमा पर, नदी को पार करने के पहले, उस पार दुश्मन के पड़ाव थे, उस सेनापति ने मंदिर के निकट रुक कर अपने सिपाहियों को कहा कि मैं जरा मंदिर के देवता को पूछ लूं कि हमारी हार होगी कि जीत?

उन सैनिकों ने कहा, देवता कैसे बताएगा और देवता की भाषा हम कैसे समझेंगे?

उस फकीर ने कहा, भाषा समझने का उपाय मेरे पास है। उसने खीसे से एक चमकता हुआ सोने का रुपया निकाला, आकाश की तरफ फेंका और मंदिर के देवता से कहा कि अगर हमारी जीत होती हो तो सिक्का सीधा गिरे और अगर हार होती हो तो उलटा गिरे।

सैनिकों की श्वासें रुक [illegible] जीवन-मरण का सवाल था! वह रुपया

नीचे गिरा, वह सीधा गिरा!

उस फकीर ने कहा, अब तुम फिक्र छोड़ दो, हार का अब कोई उपाय नहीं है, हम हारना भी चाहें तो अब हार नहीं सकते, परमात्मा साथ है। सिक्के को खीसे में रख कर वे युद्ध में कूद पड़े।

आठ दिन बाद, अपने से बहुत बड़ी फौजों को जीत कर वे वापस लौटे। उस मंदिर के पास से गुजरते थे, तो सैनिकों ने फकीर को याद दिलाई कि परमात्मा को कम से कम धन्यवाद तो दे दें, जिस परमात्मा ने हमें जिताया।

उस फकीर ने कहा, परमात्मा का इससे कोई भी संबंध नहीं है आगे बढ़ो।

उन सैनिकों ने कहा, आप भूल गए मालूम होता है। युद्ध की विजय के नशे में मालूम होता है धन्यवाद का भी खयाल नहीं। तो उस फकीर ने कहा, अब तुम पूछते ही हो तो मैं तुम्हें राज बताए देता हूं। उसने रुपया निकाल कर दे दिया। वह सिक्का दोनों तरफ सीधा था, उसमें कोई उलटा हिस्सा नहीं था।

वे सैनिक जीते, क्योंकि जीत का खयाल निश्चित हो गया।

विचार अंततः वस्तुएं बन जाते हैं, विचार अंततः घटनाएं बन जाते हैं। एडिंग्टन का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है: थिंग्स ऑर थाट्स एंड थाट्स ऑर थिंग्स। जिसे हम वस्तु कहते हैं, वह भी विचार है। और जिसे हम विचार कहते हैं, वह भी कल वस्तु बन सकता है। जिसे हम जिंदगी कहते हैं, वह कल किए गए विचारों का परिणाम है। जिसे हम आज कहते हैं, वह कल के विचारों का निष्कर्ष है। और कल जो होगा वह आज के विचारों का परिणाम होगा।

मैं भारत को जवान देखना चाहता हूं। लेकिन भारत के मन को बदलना पड़ेगा, तो ही भारत जवान हो सकता है। मैं भारत को बूढ़ा नहीं देखना चाहता हूं। हम बहुत दिन बूढ़े रह चुके। हम बूढ़े हैं हजारों साल से। यह भारत का बुढ़ापा तोड़ना पड़ेगा, इस भारत के बुढ़ापे को मिटाना पड़ेगा। इस भारत के बुढ़ापे को अगर हम नहीं मिटा पाए तो अब तक हमने जो गुलामियां देखी थीं वे बहुत छोटी थीं। न तो मुसलमान इतनी बड़ी गुलामी ला सकते थे, न अंग्रेज इतनी बड़ी गुलामी ला सकते थे। जितनी बड़ी गुलामी कम्युनिज्म हिंदुस्तान में ला सकता है। और कम्युनिज्म की गुलामी और भी खतरनाक इसलिए है कि अब तक जो भी

गुलामियां थीं वे गुलामियां वैज्ञानिक नहीं थीं। कम्युनिज्म पहली दफा टेक्नालॉजिकली, वैज्ञानिक ढंग से आदमी को गुलाम बनाने में समर्थ है।

आज चीन में आदमियों का माइंड वाश किया जा रहा है। आदमी को मारने की जरूरत भी नहीं है, उसके दिमाग को पूरा धोकर साफ किया जा सकता है—जैसे सिलेट पट्टी को धोकर साफ किया जाता है। ये गुरुद्वारे, ये मंदिर, ये मस्जिद ज्यादा दिन नहीं बचेंगे, अगर हिंदुस्तान पर कम्युनिज्म आता है तो हमारे दिमाग ज्यादा दिन तक नहीं बचेंगे जो थे, वे पोंछ डाले जाएंगे।

आज रूस में कहां है गुरुद्वारा, कहां है मस्जिद, कहां है मंदिर? आज चीन में कहां है? वह सब विदा हो गया। मनुष्य के धर्म पर सबसे बड़ा खतरा कम्युनिज्म है।

अभी मैं आ रहा था, तो आपके प्रिंसिपल ने मुझे कहा कि आप धर्म के खिलाफ कुछ मत बोल देना। मैं बहुत हैरान हुआ! मैं बहुत हैरान हुआ कि अगर एक धार्मिक व्यक्ति धर्म के खिलाफ कुछ बोलेगा, तो फिर धर्म के पक्ष में कौन बोलेगा? पर उनके भय से मुझे लगा कि धर्म कहीं इतना कमजोर हो गया है कि अपने खिलाफ बोली गई बातों का जवाब देने में भी ताकतवर नहीं मालूम पड़ता है, इसलिए इतना डर है भीतर। लेकिन इतना डर कर धर्म बचेगा नहीं। डरा हुआ धर्म कैसे बचेगा? डरा हुआ धर्म नहीं बच सकता।

उन्होंने मुझसे कहा कि आप किन्हीं शास्त्रों के खिलाफ कुछ मत बोल देना। जिसके खिलाफ बोला जा सकता है वह शास्त्र ही नहीं है। जिसके खिलाफ नहीं बोला जा सकता वही शास्त्र है। और जिसके खिलाफ बोले जाने में डर मालूम पड़ता है, वह कमजोर है, वह सत्य नहीं हो सकता। जिसके खिलाफ सारी दुनिया बोलती हो तो भी जिसका रत्ती भर न टूटता हो वही सत्य है। उतना ही बच जाए तो काफी है, बाकी कचरे को बचाने की कोई जरूरत भी नहीं है। लेकिन हम भयभीत हैं, हम बहुत डरे हुए हैं। और इतने डरे हुए लोग धर्म को और शास्त्र को बचा सकेंगे यह मुझे संभव नहीं दिखाई पड़ता।

भारत का बूढ़ा मन धर्म की पूजा कर सकता है, धर्म को बचा नहीं सकता। भारत को जवान चित्त पैदा करना पड़ेगा वही धर्म को बचा सकेगा। एक और अंतिम बात आपसे कह दूं। अगर हमने सिक्ख धर्म

को बचाना चाहा तो धर्म नहीं बचेगा, अगर हमने हिंदू धर्म को बचाना चाहा तो धर्म नहीं बचेगा, अगर हमने जैन धर्म को बचाना चाहा तो धर्म नहीं बचेगा, अगर हमने मुसलमान धर्म को बचाना चाहा तो धर्म नहीं बचेगा, अगर हमने धर्म को बचाना चाहा तो धर्म बच सकता है।
असल में जब हम धर्मों को पचास हिस्सों में तोड़ देते हैं तो अधर्म से लड़ने की ताकत कम हो जाती है। अधर्म से लड़ेगा कौन? धर्म आपस में लड़ते हैं! मंदिर-मस्जिद लड़ते हैं। कम्युनिज्म से कौन लड़ेगा? हिंदू-मुसलमान लड़ते हैं, हिंदू-सिक्ख लड़ते हैं, हिंदू-जैन लड़ते हैं। आज भी चीन में बौद्धों का मठ गिराया जा रहा है, मुसलमानों की मस्जिद गिराई जा रही है, ईसाइयों का चर्च तोड़ा जा रहा है। फिर भी बौद्ध ईसाई के खिलाफ बोले चले जाते हैं, ईसाई मुसलमान के खिलाफ बोले चले जाते हैं, मुसलमान बौद्धों के खिलाफ बोला चला जाता है। ये धार्मिक आदमी हैं या पागल हो गए लोग हैं!
अगर धर्म को दुनिया में बचाना है तो धर्म को बचाने की तैयारी करनी पड़ेगी। छोटे-छोटे मोह छोड़ने पड़ेंगे। मेरा धर्म नहीं बचेगा अब, अब धर्म बच सकता है। और धर्म तभी बच सकता है जब धर्म आपस में लड़ने का पागलपन बंद कर दे। अन्यथा धर्म आपस में लड़ते हैं और अधर्म की तो कोई लड़ाई अधर्म से नहीं होती। यह कितने मजे की बात कि दुनिया में धर्म तीन सौ पचास हैं और अधर्म एक है। अधर्म का कोई विभाजन नहीं है और धर्म के इतने विभाजन हैं। विभाजित धर्म बच नहीं सकेगा। अविभाजित धर्म बच सकता है। चाहे हिंदू हो, चाहे सिक्ख, चाहे मुसलमान, चाहे जैन, अगर हम धर्म को बचाना चाहते हों तो कम्युनिज्म से टक्कर ली जा सकती है। और अगर हमने अपने छोटे-छोटे धर्मों को बचाने की कोशिश की तो ये सब डूब जाएंगे और अधर्म जीतेगा।
अगर हम सत्य को बचाना चाहते हों, तो हमें मेरे का आग्रह छोड़ देना चाहिए। अगर हम सत्य को बचाना चाहते हों, तो हमें छोटी-छोटी दीवालों का मोह छोड़ देना चाहिए। लेकिन वह मोह हमारा नहीं छूटता। बूढ़े मन के मोह बड़ी मुश्किल से छूटते हैं। इसलिए मैंने ये थोड़ी सी बातें कहीं, भारत का चित्त यदि जवान हो सके तो भारत के लिए एक स्वर्णमय भविष्य पैदा किया जा सकता है। अगर भारत का चित्त बूढ़ा रहा तो भविष्य एक मरघट होगा, एक कब्रिस्तान होगा, भविष्य एक जीवित,

जीवंत नहीं हो सकता है।
मैंने ये थोड़ी सी बातें कहीं, मेरी बातों को मान लेना जरूरी नहीं हैं।
क्योंकि केवल वे ही लोग अपनी बातों को मानने पर जोर देते हैं जिनकी
बातें कमजोर होती हैं। मैं आपको सिर्फ इतना ही कहूंगा कि मेरी बातों को
सोचना, अगर उनमें कोई सच्चाई होगी तो वह सच्चाई आपको मनवा
लेगी और अगर वे असत्य होंगी तो अपने आप गिर जाएंगी।
मेरी बातों को मानने की कोई भी जरूरत नहीं हैं। मेरी बातों को सोच
लेना काफी है। अगर आप सोचेंगे, विचारेंगे तो जो सत्य होगा वह
आपको दिखाई पड़ सकता है और सत्य दिखाई पड़े तो जीवन में क्रांति
शुरू हो जाती है और युवा चित्त का जन्म प्रारंभ हो जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम
स्वीकार करें।
दूसरा प्रवचन
भारत का भविष्य
नये के लिए पुराने को गिराना आवश्यक
मेरे प्रिय आत्मन्!
सुना है मैंने, एक गांव में बहुत पुराना चर्च था। वह चर्च इतना पुराना था कि आज गिरेगा या कल कहना मुश्किल था। हवाएं जोर से चलती थीं तो गांव के लोग डरते थे कि चर्च गिर जाएगा। आकाश में बादल आते थे तो गांव के लोग डरते थे कि चर्च गिर जाएगा। उस चर्च में प्रार्थना करने वाले लोगों ने प्रार्थना करनी बंद कर दी थी। चर्च के संरक्षक, चर्च के ट्रस्टियों ने एक बैठक बुलाई, क्योंकि चर्च में लोगों ने आना बंद कर दिया था। और तब विचार करना जरूरी हो गया था कि चर्च नया बनाया जाए। वे ट्रस्टी भी चर्च के बाहर ही मिले। उन्होंने अपनी बैठक में चार प्रस्ताव पास किए थे। वे मैं आपसे कहना चाहता हूं।
उन्होंने पहला प्रस्ताव किया कि बहुत दुख की बात है कि पुराना चर्च हमें बदलना पड़ेगा। उन्होंने पहला प्रस्ताव पास किया बहुत दुख के साथ कि पुराना चर्च हमें गिराना पड़ेगा। पुराने को गिराते समय मन को सदा ही दुख होता है। क्योंकि मन पुराना ही है। और पुराने के साथ पुराने मन को भी मरना पड़ता है।
उन्होंने दूसरा प्रस्ताव पास किया कि पुराने चर्च की जगह हम एक नया चर्च बनाने का निर्णय करते हैं। जैसा पुराने को गिराने का दुख से निर्णय किया, वैसे ही नये को बनाने का भी दुख से निर्णय किया। क्योंकि नया बनाने के लिए पहले आदमी को स्वयं भी नया होना पड़ता है। पुराने में जीना सुविधापूर्ण है, कन्वीनियंस है। नये में जीना खतरे से खाली नहीं।

उन्होंने तीसरा प्रस्ताव भी पास किया और वह तीसरा प्रस्ताव यह था कि नया चर्च हम पुराने चर्च की बुनियाद पर ही बनाएंगे। और पुराने चर्च की इ□टों का ही उपयोग करेंगे, और पुराने चर्च के दरवाजे ही नये चर्च में लगाएंगे। और चौथा प्रस्ताव उन्होंने यह पास किया कि जब तक नया न बन जाए तब तक हम पुराने को गिराएंगे नहीं। और चारों प्रस्ताव सर्व स्वीकृति से पास हो गए। वह चर्च अभी भी नहीं गिरा होगा। क्योंकि जो भी ऐसा सोचता है कि नये को बनाने के पहले पुराने को गिराएंगे नहीं; वह न नये को बना पाता है न पुराने को गिरा पाता है। नये को बनाने की पहली शर्त पुराने को गिराने की हिम्मत। और पुराने के गिराने की हिम्मत से नये को बनाने की क्षमता पैदा होती है।

असल में जो कहते हैं कि हम जब तक नये को न बना लेंगे, तब तक हम पुराने को न गिराएंगे। ऐसे लोग पुराने के साथ जीने के इतने आदी हो जाते हैं कि वे नये को बनाने की कल्पना भी खो देते हैं।

इस कहानी से अपनी बात इसलिए शुरू करना चाहता हूं कि यह हमारा देश भी इसी तरह के प्रस्ताव कर रहा है पांच हजार वर्षों से। पांच हजार वर्षों से हम एक मरी हुई कौम हैं। पांच हजार वर्षों से हम पुराने में ही जी रहे हैं। और नये को निर्माण करने की बात सदा पोस्टपोन करते चले जाते हैं। और जितना पुराने के साथ रहने की आदत बढ़ती जाती है उतना ही पुराने से मोह बढ़ता जाता है।

भारत का एक ही दुर्भाग्य है कि हम पुराने से अपने को मुक्त नहीं कर पा रहे हैं। पुराने का मोह हमारे प्राण लिए लेता है। और जब कभी हम पुराने को थोड़ा-बहुत छोड़ते भी हैं, तो जिसे हम नया कह कर पकड़ते हैं, वह सारी दुनिया के लिए तब तक बहुत पहले पुराना हो चुका होता है। अगर हम कभी कुछ नया भी पकड़ते हैं, तो वह तभी पकड़ते हैं जब वह भी सारी दुनिया में पुराना हो जाता है। जिस देश की आत्मा पुराने के साथ इस भांति बंध गई हो, उस देश की आत्मा जवान नहीं रह जाती, बूढ़ी हो जाती है।

यह हमारा देश एक बूढ़ा देश है और इस देश की सारी तकलीफें इसके बूढ़े होने से पैदा हो रही हैं। सारी दुनिया जवान है। हम बूढ़े हैं। इस जवान दुनिया के साथ हमारे ये बूढ़े पैर नहीं चल पाते। और इस जवान दुनिया के साथ हमारा बूढ़ा मन भी नहीं दौड़ पाता। और इस जवान दुनिया के साथ हमारे बूढ़े मन का कोई तालमेल नहीं बैठता। तब हम एक ही काम करते हैं कि हम सारी दुनिया को गाली देकर अपने मन में तृप्ति पाने की कोशिश करते हैं।

असल में बूढ़े मन का यह लक्षण है कि वह जवान को गाली देकर तृप्ति पा लेता है। हम सारी दुनिया की निंदा किए रहते हैं। हम सारी दुनिया को भौतिकवादी कहते हैं। मैटीरियलिस्ट कहते हैं। और जिनको हम भौतिकवादी कहते हैं, उन्हीं के सामने हम हाथ जोड़े भीख भी मांगते रहते हैं। जिनको हम गाली देते हैं, उनके गेहूं से हमारी गाली की भी ताकत आती है। जिनको हम गाली देते हैं, उनसे हम आलपिन से लेकर बम बनाने की सारी कला भी सीखते हैं। जिनको हम गाली देते हैं, उन पर ही हमारा जिंदा रहना निर्भर हो गया है। फिर भी हम गाली दिए जाते हैं। इस गाली के पीछे कारण हैं।

असल में गाली सिर्फ इंपोटेंट माइंड का लक्षण है। जब चित्त बिलकुल निर्वीर्य हो जाता है तो सिवाय गाली देने के और कुछ भी नहीं कर पाता। और आश्चर्य तो यह है कि जिनको हम गाली देते हैं उनकी ही नकल हमें करनी पड़ती है। लेकिन वह नकल भी हम इतने बेमन से करते हैं, और इतने पीछे करते हैं कि सिर्फ हंसी पैदा कर पाती

है और कुछ भी नहीं कर पाती। भारत का पूरा व्यक्तित्व ही हास्यास्पद हो गया, हंसने योग्य हो गया। इस सारी हंसने योग्य स्थिति के पीछे जो बुनियादी कारण हैं उनके संबंध में मैं आपसे बात करना चाहूंगा।

पहला कारण तो पुराने के प्रति हमारा मोह है। और जिनका भी पुराने के प्रति मोह होता है नये के प्रति उनमें भय पैदा हो जाता है। जहां पुराने का मोह है वहां नये का भय है। और जहां पुराने का मोह है वहां भविष्य की तरफ न देखने की इच्छा है। पुराने का मोह पीछे की तरफ देखने का आग्रह पैदा कर देता है। इसलिए हम सदा पीछे की तरफ देखते रहते हैं। हमारी गोल्डन एज हो चुकी, हमारा स्वर्ण युग बीत चुका। हमारे रामराज्य घटित हो चुके। हमारे अवतार, हमारे महापुरुष, हमारे तीथ□कर, सब पैदा हो चुके। हमारा कोई भविष्य नहीं है, हमारे पास सिर्फ अतीत है। वह जो बीत गया वही हमारी संपदा है। जो होने वाला है वह हमारी संपदा नहीं है। कैसे कोई कौम जी सकती है जिसके पास भविष्य न हो। और अगर हम भविष्य के संबंध में कभी सोचते भी हैं तो हम सदा अंधेरी, दुखद, निराशा की भाषा में सोचते हैं। यह आश्चर्यजनक है। यह आश्चर्यजनक है कि हम जहां सारी दुनिया प्रोग्रेस की छाया में जीती है, विकास की छाया में, हम पतन की छाया में। सारी मनुष्यता प्रगति की छाया में जी रही है और निरंतर भविष्य के सुंदर सपने बना रही है। वहां हम पतन की छाया में जी रहे हैं और निरंतर भविष्य की और काली तस्वीर हम निर्मित करते हैं। हमारा सतयुग हो चुका अब तो कलियुग है। और कलियुग का मतलब है हम रोज पतित हो रहे हैं।

हमने सारी देखने की, जो हमारी व्यवस्था है वही बीमार है। भविष्य सुंदर होना चाहिए, लेकिन हम कहते हैं, हमारा अतीत सुंदर था। और अतीत को सुंदर बनाने के लिए जरूरी हो जाता है कि भविष्य को हम अंधकारपूर्ण चित्रित करें। तो हर बाप कहता है कि उसकी पीढ़ी अच्छी थी और बेटे की पीढ़ी बुरी। और ऐसा नहीं कि आज का बाप कहता है, जो आज कह रहा है उसके पिता ने भी यही कहा था, और उसके पिता ने भी यही कहा था, और उसके पिता ने भी यही कहा था। हर पीढ़ी यह कहती है कि उसकी पीढ़ी बेहतर थी, आने वाली पीढ़ी पतित हो गई है।

हम रोज पतन में जी रहे हैं। बेटा बेहतर होना चाहिए बाप से। बेटे के बेहतर होने की कामना होनी चाहिए। लेकिन बाप के अहंकार को यह प्रीतिकर नहीं लगता कि बेटा बेहतर हो। प्रीतिकर बहुत गहरे में यही लगता है कि बेटा थोड़ा सा नीचे रह जाए। हर पीढ़ी आने वाली पीढ़ियों को नीचा मानती है। और जब हजारों वर्षों तक यह धारणा मन में हमारे बैठे कि रोज पतन हो रहा है तो पतन निश्चित हो जाता है। पतन और प्रगति हमारे मन की धारणाएं हैं। हम कैसे लेते हैं जीवन को इस पर निर्भर करता है सब कुछ। हमारा मन किस भाषा में सोचता है इस पर निर्भर करता है सब कुछ।

मैंने सुना है, जापान में एक छोटा सा राज्य था। और उस राज्य पर पड़ोस के एक बड़े राजा ने हमला कर दिया। उस छोटे से राज्य के सेनापति के पैर उखड़ गए, वह घबड़ा गया। उसने सम्राट को जाकर कहा कि लड़ना असंभव है, जीत हम न सकेंगे, हार निश्चित है, दुश्मन आठ गुनी ताकत का है। तो मैं अपने सैनिकों को लड़ाने नहीं ले जा सकता। यह तो मौत के मुंह में जाना है। सम्राट भी समझता था बात सच है, लेकिन बिना लड़े हार जाने को भी तैयार न था। लेकिन सेनापति ने कहा, फिर मुझे छुट्टी दे दें। आप लड़ें या लड़वाएं। मैं अपने सैनिकों को मौत के मुंह में मैं न ले जाऊंगा।

गांव में एक फकीर था। सम्राट जब भी मुसीबत में पड़ता था, उस फकीर के पास गया था। अपने सेनापति को लेकर फिर गया। उस फकीर ने कहा कि पहला काम तो यह करें कि इस सेनापति को छुट्टी कर दें और दूसरा काम यह करें कि इसे तत्काल कारागृह में डाल दें जब तक युद्ध समाप्त न हो जाए। यह आदमी खतरनाक है। जब कोई सेनापति कहता है हार निश्चित है, तो हार निश्चित हो जाती है। इसे बंद कर दें, यह खतरनाक है। अगर सैनिकों तक यह खबर पहुंच गई कि हार निश्चित है, तो फिर हार को बदलना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
लेकिन सम्राट ने कहा, इसे मैं बंद कर दूं तो युद्ध का क्या होगा? तो उस फकीर ने कहा, मैं सैनिकों को कल सुबह युद्ध पर लेकर चला जाऊंगा। सम्राट डरा तो बहुत। अनुभवी सेनापति कह रहा था, हार निश्चित है। और फकीर तो तलवार पकड़ना भी नहीं जानता था। यह खतरा है, लेकिन कोई उपाय न था। फकीर के हाथ में फौजें दे देनी पड़ीं। वह फकीर सुबह गीत गाता घोड़े पर सवार होकर फौजों को ले चला। एक-एक आदमी की श्वास, सैनिकों के प्राण डरे हुए। फकीर के साथ मौत निश्चित है, लेकिन कोई उपाय नहीं।
दुश्मन की सीमा जहां थी, नदी के इस पार एक मंदिर के पास वह फकीर रुका और उसने कहा कि मैं युद्ध में जाऊंगा बाद में, जरा इस मंदिर के देवता से पूछ लूं कि जीत होगी या हार? अक्सर मैं पूछ लेता हूं और देवता जो कह देता है वही होता है। उन सैनिकों ने कहा, हमें कैसे पता चलेगा कि देवता क्या कह रहा है? उस फकीर ने कहा, तुम्हारे सामने ही पूछूंगा। सामने ही उसने खीसे से एक सोने का चमकता हुआ रुपया निकाला, आकाश की तरफ फेंका और कहा कि हे मंदिर के देवता, अगर हम जीतते हों तो रुपया सीधा गिरे और अगर हारते हों तो उलटा गिरे। उलटा गिरा हम वापस लौट जाएंगे, सीधा गिरा तब जीत कर ही लौटना है।
रुपया सीधा गिरा! सैनिकों की श्वासें रुक गइ! देखा, रुपया सीधा था। फकीर ने कहा, अब फिक्र छोड़ दो। अब युद्ध में जाओ और जीत कर लौटो। वे युद्ध में कूद पड़े। आठ दिन बाद वे जीत कर वापस लौटते थे उसी मंदिर के पास से, सैनिकों ने फकीर को याद दिलाया, मंदिर के देवता को धन्यवाद तो दे दें। उस फकीर ने कहा, छोड़ो, इसमें मंदिर के देवता का कोई हाथ नहीं! उन्होंने कहा, कैसी आप बात करते हैं! मंदिर के देवता से पूछ कर ही हम गए थे। भूल गए आप। उस फकीर ने कहा, अब तुम पूछते हो तो मैं तुम्हें सच बात बता दूं। उसने रुपया निकाल कर उनके हाथ में दे दिया। वह रुपया दोनों तरफ सीधा था। उसमें कोई उलटा पहलू न था।
हमारा मन क्या पकड़ लेता है, वे परिणाम हो जाते हैं। हमारा मन हमारा भविष्य, हमारा मन हमारा जीवन। इस देश का मन सदा से यह पकड़े हुए है कि आगे अंधेरा है, आगे पतन है, आगे बुराई है, आगे विनाश है। यह बड़ी खतरनाक दृष्टि है। इससे खतरनाक और कोई दृष्टि नहीं हो सकती। इसलिए हम पांच हजार साल से पतन कर रहे हैं।
उस फकीर के सिक्के में दोनों तरफ सीधा था। हमने जो सिक्का लिया है वह दोनों तरफ उलटा है। उसे कैसा भी फेंको वह उलटा ही गिरने वाला है। हमने हार अपने हाथ से तय कर रखी है। हमने गुलामी अपने हाथ से तय कर रखी है। हमने दरिद्रता, दीनता, दुख अपने हाथ से तय कर रखा है। हम जिम्मेवार हैं। हमारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं हैं।
लेकिन यह जिम्मेवारी हमारी फिलासफी में है, हमारे सोचने के ढंग में है, हमारे देखने के ढंग में है। हमारी जिंदगी का जो रवैया है वह रवैया हारने वाले का है, जीतने वाले का नहीं है। इस रवैये में पहली बात है कि

हमने जो समय की धारणा की है उसमें अच्छा पीछे हो चुका और बुरा आगे होने को। और यह धारणा बदलनी पड़ेगी, हमें पीछे से आगे की जिंदगी को सुखद, आने वाले भविष्य को सूर्य से भरा हुआ, आने वाले भविष्य के सपने को हमें कुछ अच्छे रंग देने पड़ेंगे। और अगर यह काम हम पूरा न कर पाए, तो इस जमीन पर हमारी कोई जगह रह जाने को नहीं है। आज भी कोई जगह रह नहीं गई है। उटोपिया चाहिए भविष्य में। हर रोज आने वाला दिन बेहतर होने वाला है यह हमारे मन के गहरे में बैठ जाना चाहिए। क्योंकि उस दिन को बनाएगा कौन? उस दिन को हम बनाएंगे।

हर आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी से बेहतर होने वाली है, यह हमारी धारणा होनी चाहिए। लेकिन हमारी धारणा बहुत अजीब है। हमारी धारणा है कि पीछे सब अच्छा है। उस धारणा को भी थोड़ा विचार लेना चाहिए, क्योंकि तोड़ना है, तो बिना विचारे तोड़ा नहीं जा सकता। यह धारणा इसलिए भी गलत है कि भविष्य सुंदर न हो तो सुंदर नहीं बन सकेगा, इसलिए भी गलत है कि यह तथ्य भी नहीं, यह यथार्थ भी नहीं। अतीत सुंदर नहीं था। लेकिन अतीत के सुंदर होने का खयाल हमारे मन में जरूर है। उसके कारण हैं।

हम अतीत में जो सबसे अच्छा आदमी हुआ है उसे आज के सबसे बुरे आदमी से तौलते हैं। बड़ी अजीब बात है! राम को, बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को, क्राइस्ट को हम अपने पड़ोसी से तौलते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि राम उस जमाने का सबसे बेहतर आदमी है और अखबार में जो खबर छपती है वह हमारे जमाने के सबसे रद्दी आदमी की है। हम उन दोनों को तौल लेते हैं। हम अतीत के बेहतर आदमी से आज के आखिरी आदमी को तौलते हैं। इसलिए हमेशा कठिनाई हो जाती है। यह तौल गलत है। यह तौल बिलकुल ही बेहूदी है। आज का सामान्य आदमी अतीत के किसी भी सामान्य आदमी से बेहतर है। और आज का महापुरुष भी अतीत के किसी महापुरुष से पीछे नहीं हैं।

लेकिन अतीत के महापुरुष से हम सामान्य आदमी को तौलने लगते हैं। और हम सामान्य आदमी को भूल गए हैं पिछले, हमें पता नहीं कि राम के वक्त भी सामान्य आदमी कैसा था। राम का पता है, राम से हम सोचते हैं कि रामराज्य बड़ा सुंदर रहा होगा। राम के आधार से हम सोचते हैं। आज से हजार साल बाद, दो हजार साल बाद आपका नाम किसी को याद नहीं रहेगा, मेरा नाम किसी को याद नहीं रहेगा। गांधी का नाम याद रह जाएगा। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे, गांधी का युग बहुत अच्छा था। गांधी जैसा आदमी पैदा हुआ। यह झूठी बात होगी। गांधी का युग गांधी जैसे आदमियों का युग नहीं था। गांधी का युग गांधी से बिलकुल उलटे आदमियों का युग था।

और यह भी ध्यान रहे कि अगर गांधी के युग में गांधी जैसे लोग बहुत होते तो गांधी को पूछता कौन? राम को पूछा लोगों ने क्योंकि लोग राम से उलटे थे। राम न्यून रहे होंगे, बहुत कम रहे होंगे, संख्या में बहुत थोड़े रहे होंगे। इसलिए पूजे गए। बहुत ज्यादा लोग पूजे नहीं जा सकते हैं। कृष्ण बहुत अकेले रहे होंगे, बुद्ध और महावीर भी अकेले रहे होंगे। अकेले होने की वजह से उन्हें पूजा मिली। अगर बुद्ध के जमाने में दस-पच्चीस बुद्ध भी होते, तो गौतम बुद्ध कभी के भूल गए होते। पच्चीस बुद्धों को याद रखना बहुत मुश्किल हो जाता है।

लेकिन उस जमाने के अच्छे आदमी से हम सोचते हैं सारा जमाना अच्छा रहा होगा। इससे भ्रांति पैदा होती है। इससे खतरनाक तुलना पैदा होती है, इससे एक गलत कंपेरिजन पैदा होता है। और यह भी ध्यान रहे कि

महापुरुष सिर्फ बुरे समाज में दिखाई पड़ते हैं, अच्छे समाज में दिखाई नहीं पड़ते। असल में महापुरुष अगर बनना हो तो बुरा समाज बहुत जरूरी है। इसलिए जितना बुरा समाज होता है उतने महापुरुष पैदा हो सकते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि अच्छे समाज में महापुरुष पैदा नहीं होते। होते हैं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ते।

ऐसा है जैसे स्कूल का शिक्षक ब्लैकबोर्ड पर लिखता है सफेद खड़िया से, सफेद दीवाल पर भी लिख सकता है, लिख तो जाएगा, लेकिन पढ़ा नहीं जा सकेगा। सफेद खड़िया से लिखे गए अक्षर काले तख्ते पर दिखाई पड़ते हैं। सफेद तख्ते पर दिखाई नहीं पड़ेंगे। समाज का काला तख्ता हो तो महापुरुष दिखाई पड़ते हैं, अन्यथा दिखाई नहीं पड़ते। अगर जिस दिन समाज अच्छा हो जाएगा उस दिन महापुरुषों की कहानी खत्म। उस दिन महापुरुष पैदा नहीं हो सकेंगे। महापुरुषों के लिए बुरा समाज बिलकुल नेसेसिटी है। उसके बिना महापुरुष नहीं दिखाई पड़ता। होगा पैदा लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगा। अगर चारों तरफ अच्छे लोग हों, तो अच्छा आदमी अलग से दिखाई नहीं पड़ सकता, काला तख्ता चाहिए समाज का।

हिंदुस्तान ने सबसे ज्यादा महापुरुष पैदा किए, क्योंकि हिंदुस्तान के पास सबसे रद्दी समाज है। दुनिया ने इतने अच्छे महापुरुष पैदा नहीं किए, इतने बड़े महापुरुष पैदा नहीं किए। उसका कारण है। दुनिया ने अच्छा समाज पैदा करने की कोशिश की है। जहां-जहां अच्छा समाज बनता जाता है बड़ा आदमी तिरोहित होने लगता है, खो जाता है, दिखाई नहीं पड़ता, उसका पता नहीं चलता, उसको खोजना बहुत मुश्किल हो जाता है। चोरों के समाज में साधु आदर पाता है। साधुओं के समाज में साधु को कौन पूछे? इसलिए साधु के लिए जरूरी है कि चोर बने रहे, नहीं तो साधु मर जाएगा। साधु के लिए जरूरी है कि बेईमान रहे, साधु के लिए जरूरी है कि बुरा आदमी चारों तरफ मौजूद रहे। हमारा मुल्क बहुत साधु पैदा करता है, क्योंकि उससे हजार गुने बेईमान और चोर पैदा करता है। नहीं तो साधु दिखाई नहीं पड़ेगा।

अतीत के अच्छे आदमी भी इस बात की गवाह है कि अतीत का समाज अच्छा नहीं रहा होगा। बड़े मजे की बात, और वह यह है कि हम सोचते हैं कि पहले के लोग सब अच्छे थे, लेकिन अगर हम पहले के बड़े लोगों की शिक्षाएं देखें तो यह भ्रम टूट जाएगा। बुद्ध सुबह से उठ कर सांझ तक एक ही बात लोगों को समझाते हैं, चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, दूसरे की स्त्री को बुरे भाव से मत देखो। लोग जरूर देखते रहे होंगे। अन्यथा इन शिक्षाओं की जरूरत नहीं है।

आज मैं स्वर्ण मंदिर में गया। तो वहां संगमरमर के पत्थर पर एक वचन लिखा हुआ है कि पराई स्त्री को देखना महा पाप है। पराई स्त्री को देखने वाला कुत्ते की मौत मरता है। पराई स्त्री को जरा सा भी बुरा विचार किया कि तुम नरक के गड्ढे में गए। जिन्होंने लिखा है और जिनके लिए कहा गया होगा उनकी दृष्टि पराई स्त्री के संबंध में अच्छी नहीं रही होगी। यह कोई अच्छे समाज में कही गई बात नहीं हो सकती। और इस बात को संगमरमर पर लिखना पड़ता है, यह सबूत है कि समाज बहुत गंदा रहा होगा।

अच्छी दुनिया में ऐसे पत्थर हमें अलग करने पड़ेंगे। कि कोई कहेगा, यह क्या पागलपन की बात है! यह कोई अच्छा लक्षण नहीं है। लेकिन समाज की गवाही देता है। महावीर लोगों को समझा रहे हैं, चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, ब्रह्मचर्य साधो। लोग नहीं साधते रहे होंगे। दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब भी लोगों को

जो शिक्षाएं देती हैं वे वही हैं जिनकी हमें आज भी जरूरत है। इससे पता चलता है आदमी ऐसा ही रहा होगा। बल्कि इससे भी बदतर रहा होगा।

ये खबरें हैं। वैसे कहानियां तो ये कहती हैं कि एक जमाना था भारत में कि लोगों के घर में ताले नहीं लगते थे। हेनसान ने लिखा है कि भारत में ताले नहीं लगते। जब मैं इसको पढ़ता हूं तो मुझे बड़ी हैरानी होती है! हैरानी मुझे यह होती है, तो हम सोचते हैं कि शायद लोग चोरी नहीं करते होंगे, लेकिन यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। क्योंकि हेनसान के पहले ही बुद्ध और महावीर बिहार में ही लोगों को समझा रहे हैं कि चोरी महापाप है, चोरी मत करना, नरक में सड़ाए जाओगे, चोरी बहुत बुरी चीज है। बुद्ध और महावीर समझा रहे हैं, चोरी महापाप है। और अगर ताले नहीं लगते तो फिर दो ही कारण हो सकते हैं, या तो चोरी के योग्य सामान न रहा होगा लोगों के पास या फिर ताला बनाने की अकल न रही होगी, और कोई कारण नहीं है।

चोर तो जरूर थे। नहीं तो चोरी के खिलाफ समझाने की कोई जरूरत नहीं थी। या फिर बुद्ध और महावीर का दिमाग खराब रहा होगा कि जो लोग चोरी नहीं करते उनको समझा रहे हैं कि चोरी मत करो! जो लोग बेईमान नहीं हैं उनको समझा रहे हैं कि बेईमानी मत करो!

मैंने सुना है, एक चर्च में एक फकीर को कुछ लोग ले गए और उस चर्च के लोगों ने उस फकीर से कहा कि हमें सत्य के संबंध में कुछ समझाएं। तो उस फकीर ने कहा, चर्च में आए हुए लोगों को सत्य के संबंध में समझाना अपमानजनक है, इनसल्टिंग है। क्योंकि चर्च में जो लोग आए हैं वे सत्य बोलते ही होंगे। लेकिन लोग नहीं माने। उस फकीर ने कहा, तुम नहीं मानते हो तो मुझे समझाना पड़ेगा। लेकिन मैं यह सोचता हूं कि सत्य के संबंध में किसी जेलखाने में समझाना चाहिए, चर्च में नहीं।

उस फकीर को पता नहीं होगा कि जेलखाने के भीतर जो हैं और चर्च के भीतर जो हैं, इनमें सिर्फ दीवालों का फर्क है और कोई बहुत फर्क नहीं है। उसने खड़े होकर समझाना शुरू किया। उसने कहा, इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, मैं एक सवाल पूछना चाहता हूं। उसने उस चर्च में आए हुए लोगों से पूछा कि आप सारे लोग बाइबिल तो पढ़ते हैं न? तो सारे लोगों ने हाथ ऊपर उठा दिए। उसने पूछा कि आपने ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय भी कभी पढ़ा है? सारे लोगों ने हाथ उठा दिए कि हमने पढ़ा है, सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर। उस फकीर ने कहा कि अब मुझे बोलना पड़ेगा, क्योंकि ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई अध्याय बाइबिल में है ही नहीं। और आप सब कहते हैं कि आपने पढ़ा है। तब मैं समझ गया कि मुझे सत्य के संबंध में कुछ बोलना चाहिए।

लेकिन उस फकीर ने कहा कि मैं एक आदमी के लिए हैरान हूं जिसने हाथ नहीं उठाया! उसने उससे जोर से पूछा कि मेरे भाई तुम ईमानदार और सच बोलने वाले आदमी इस चर्च में कैसे आ गए?

तो उस आदमी ने कहा कि असल में मुझे कम सुनाई पड़ता है, आप क्या कह रहे हैं मुझे सुनाई नहीं पड़ा। क्या उनहत्तरवां अध्याय पूछ रहे हैं आप? मैं भी पढ़ता हूं। लेकिन जरा सुनाई कम पड़ता है इसलिए मैंने हाथ नहीं उठाया।

सत्य के संबंध में चर्चों में चर्चा चलती है, क्योंकि चर्चों में असत्य बोलने वाले लोगों की भीड़ है। असल में पापियों को छोड़ कर मंदिर की तरफ बहुत कम लोग आकर्षित होते हैं, बहुत कम लोग। तीर्थों की तरफ

आकर्षित होने वाला भीतर से गुनाह से भरा होता है। असल में गिल्टी कांसियंस तीर्थ की तरफ ले जाती है। वह जो अपराध से भरा हुआ चित्त है वह कहता है चलो तीर्थ, वह कहता है चलो मंदिर, वह कहता है चलो साधु के पास। यह जो हमारी धार्मिकता है जिसके लिए हम सारी दुनिया में ढिंढोरा पीटते हैं कि हम धार्मिक हैं, वह हमारी धार्मिकता नहीं है। हमारे भीतर अपराध का प्रकटन है। वह जो गिल्ट है हमारे भीतर उसकी वजह से हम धार्मिक होने के हजार उपाय करते हैं। धार्मिक हम बिलकुल नहीं हैं। अब तक दुनिया में कोई समाज धार्मिक नहीं बन सका। कुछ व्यक्ति धार्मिक हुए हैं इंडिविजुअल, सोसाइटी कोई धार्मिक पैदा नहीं हो सकी है।

लेकिन हिंदुस्तान के समाज को यह खयाल है कि हमारा धार्मिक समाज है। क्यों? क्योंकि हम एक कृष्ण को पैदा कर लेते हैं, एक नानक को पैदा कर लेते हैं, एक कबीर को पैदा कर लेते हैं। ये व्यक्ति हैं, और हम इन सबका मजा लेते हैं कि हमारा पूरा समाज धार्मिक हो गया। हम धार्मिक नहीं हैं। लेकिन यह भ्रम हमारा न टूटे तो हम धार्मिक कभी हो भी न सकेंगे। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन समाजों को हम कहते हैं अधार्मिक, वे हमसे ज्यादा धार्मिक सिद्ध हो रहे हैं। और हम अपने को कहते हैं धार्मिक, और हमसे ज्यादा इस समय अनैतिक समाज पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। हमसे ज्यादा करप्टेड आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। और हमारे करप्शन का, हमारे व्यभिचार का, हमारी अनीति का पहला आधार यह है कि हम सबने मान रखा है कि हम धार्मिक हैं। इसलिए हमें अधार्मिक होने की जितनी सुविधा मिल गई उतनी किसी को भी नहीं मिली। अगर कोई बीमार आदमी समझ ले कि मैं स्वस्थ हूं तो वह इलाज भी बंद कर देगा। बीमार के इलाज के लिए यह जरूरी है कि वह समझे कि मैं बीमार हूं, और जितनी तीव्रता से समझे कि गहरी बीमारी है, उतने जल्दी इलाज का इंतजाम करेगा।

हम ऐसे बीमार हैं जो अपने को स्वस्थ मान कर बैठे हुए हैं। इसलिए इलाज की भी कोई जरूरत नहीं है। जब भी हम इलाज की बात करते हैं तो हम ऐसा करते हैं कि दुनिया को सिखाना है। हिंदुस्तान भर का यह खयाल है कि हमें दुनिया को सिखाना है, सारी दुनिया हमारी तरफ देख रही है। और हमारे पास देखने को क्या है यह हम कभी सोचते भी नहीं है। सारी दुनिया हमसे उपदेश लेने को तैयार मालूम पड़ती है हमको। और हम कहां खड़े हैं हमें कोई खयाल भी नहीं। लेकिन ये सारी की सारी बातें हमारी बीमारी को बचाने का कारण बन जाती हैं।

तो दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं वह यह, अतीत के लोग हमसे बेहतर थे भी नहीं। और अगर बेहतर होते तो हम उनसे ही पैदा हुए हैं। हम उनकी गवाहियां हैं। किताबें गवाहियां नहीं हैं, हम गवाहियां हैं। आदमी गवाह होता है, किताबें गवाह नहीं होती हैं। हम गवाही देते हैं, हर बेटा अपने बाप की गवाही देता है। और हर बेटा अपने बाप के ऊपर प्रमाण बन जाता है कि बाप कैसा रहा होगा।

जब हम किसी फल को देखते हैं वृक्ष के, तो बीज के संबंध में पता चल जाता है। जानते हैं फल को देख कर कि बीज कैसा रहा होगा। और फल हो सड़ा हुआ और कहें कि हम बहुत स्वस्थ बीज से पैदा हुए हैं, तो कौन उसका भरोसा करेगा। हम बताते हैं कि पीछे का समाज कैसा रहा होगा—हम उससे ही पैदा हुए हैं, हम उससे ही आए हैं। हम अपने को देख कर भी समझ सकते हैं कि पीछे का समाज बेहतर नहीं रहा होगा।

यह एक बार हमें साफ हो जाए तो हम बेहतर समाज को पैदा करने की कोशिश में लग जाएं। लेकिन अगर हमने यह मान रखा है कि बेहतर समाज हो चुका, तो अब पैदा करने की कोई जरूरत नहीं, सिर्फ पुराने समाज

का गुणगान करना काफी है। अतीत का यश हम गाते रहें। अतीत के इतिहास की हम बातें करते रहें और मरते जाएं। भविष्य में हो मौत और अतीत की हो कहानी यह हमारी स्थिति हो गई है।

इसलिए दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं, अतीत के यथार्थ को समझ लेना जरूरी है। वह इतना सुंदर नहीं था जैसा हम सोचते हैं। लेकिन हमारे मन के अहंकार को तृप्ति मिलती है। भिखमंगे को यह मान कर बहुत आनंद मिलता है उसके बाप-दादे सम्राट थे। इससे उसके बाप-दादे सम्राट थे या नहीं यह सिद्ध नहीं होता, इतना जरूर सिद्ध होता है कि वह भिखमंगा है। भिखमंगे के मन को बड़ी राहत मिलती है कि कोई फिक्र नहीं, अगर हम भीख भी मांग रहे हैं तो कोई बात नहीं, बाप-दादे सम्राट थे। बाप-दादे हमारे सम्राट थे या नहीं, इससे भिखमंगेपन में कोई फर्क नहीं पड़ता। हां, एक फर्क पड़ता है वह यह कि भिखमंगा अपने भिखमंगेपन में भी अकड़ जाता है।

आज हम जमीन पर भिखारी की हालत में हैं। लेकिन हमारी अकड़ का कोई हिसाब नहीं। आज सारी जमीन से हम भीख मांग रहे हैं। लेकिन हमारी अकड़ का कोई हिसाब नहीं। यह अकड़ हमें कहां ले जाएगी, कहना बहुत मुश्किल है। इस अकड़ ने हमें अतीत में भी बहुत मुसीबतों में डाला। हजार साल हम गुलाम न रहते अगर हम अकड़े हुए लोग न होते। लेकिन हम इतने अकड़े हुए लोग थे कि हमें कभी पता ही नहीं चला कि हमारे पास ताकत कितनी है। अकड़ बहुत ताकत बताती है। लेकिन जब मौका आता है तो अकड़ की असलियत खुल जाती है। हमें खयाल था हम महाशक्तिशाली हैं, वह हमारी अकड़ टूट गई। हमें खयाल था कि हम सोने की चिड़िया हैं, वह अकड़ भी हमारी टूट गई। अब भी हमको न मालूम क्या-क्या खयाल हैं—कि हम आध्यात्मिक हैं, धार्मिक हैं, यह हमारी अकड़ बहुत महंगी और खतरनाक है।

मैंने सुना है, सोमनाथ के ऊपर जब हमला हुआ, तो सोमनाथ में पांच सौ पुजारी हैं। बड़ा मंदिर था वह, करोड़ों की संपत्ति थी उसके पास। राजस्थान के बहुत से राजपूत सरदारों ने पत्र लिखे कि हम मंदिर की रक्षा के लिए आएं। तो मंदिर के पुजारियों ने जवाब दिया, जवाब दिया कि जो भगवान सबकी रक्षा करता है, उसकी रक्षा तुम करोगे! जवाब बिलकुल ठीक था, तर्कयुक्त था, समझ में पड़ता था, क्योंकि हमारी पुरानी बुद्धि से मेल खाता था। जो भगवान सबकी रक्षा करता है, उसकी रक्षा तुम करोगे! राजपूत भी डर गए, उन्होंने माफी मांग ली। उन्होंने कहा कि हमसे भूल हो गई। भगवान की रक्षा हम कैसे कर सकते हैं, जो सबकी रक्षा करने वाला है। फिर वह गजनी उस मूर्ति को तोड़ सका जो सबकी रक्षा करती थी। और जब वह मूर्ति चारों खाने टूट कर पड़ गई तब हमें पता चला। लेकिन तब बहुत देर हो गई थी। अकड़ टूट जाए तब पता चले तो बहुत देर हो जाती है। वह टूटने के पहले पता चलनी चाहिए तो बदली जा सकती है।

अभी हिंदुस्तान इसी तरह की अकड़ में जी रहा है कि हम आध्यात्मिक हैं, हम फलां हैं, हम ढिकां हैं। सारी दुनिया हमसे बेहतर नैतिक हो गई। लेकिन हम अपनी अकड़ में जिंदा हैं। और हमारी बेईमानी का कोई हिसाब नहीं।

मेरे एक मित्र हैं, प्रोफेसर हैं पटना यूनिवर्सिटी में। गए हुए थे स्वीडन, जिस होटल में ठहरे हुए थे, वेजिटेरियन हैं, शाकाहारी हैं। उन्होंने सुबह ही उठ कर कहा कि मुझे दूध चाहिए और बैरा को बुला कर उन्होंने कहा कि शुद्ध दूध चाहिए, प्योर मिल्क चाहिए। उस बैरा ने कहा कि हम सुना नहीं कभी प्योर मिल्क क्या होता है? प्योर

मिल्क क्या बला है? कंडेंस मिल्क सुना है, पैश्चुराइज्ड मिल्क सुना है, प्योर मिल्क क्या बला है? मैं मैनेजर को बुला लाता हूं।

वे बड़े हैरान हुए! मैनेजर आया उसने पूछा कि यह शुद्ध दूध क्या है?

तो उन्होंने कहा, आप समझे नहीं, मेरा मतलब यह है कि दूध में पानी न मिला हो। उन्होंने कहा, वह तो मिलाएंगे ही हम क्यों? यह सवाल ही क्यों उठा आपके मन में? कोई ऐसी जगह भी है जहां कोई दूध में पानी मिलाता हो?

तो उन्होंने कहा कि मेरा देश है!

मैं उनके घर में मेहमान था, वे मुझे कहने लगे तो मैंने कहा कि आपने गलत कहा, वह जमाना गया जब हमारा देश दूध में पानी मिलाता, अब हम पानी में दूध मिला रहे हैं। वह वक्त गए, अब कोई दूध में पानी नहीं मिलाता। अब तो पानी में हम दूध मिला लेते हैं। आपने गलत कहा। मैंने कहा, वापस लिख दो एक पत्र क्षमायाचना का कि थोड़ी गलती हो गई।

जिन्हें हम भौतिकवादी कहें उन्हें समझना मुश्किल है कि शुद्ध दूध क्या होता है? शुद्ध घी क्या होता है? और हमारी दुकान पर लगा हुआ है कि यहां शुद्ध घी मिलता है। और जहां अशुद्ध मिलता हो वहां हमें बोर्ड लगाना पड़ता है शुद्ध का। नहीं तो कभी लगाने की जरूरत नहीं पड़ती।

हमारी यह मनोदशा! हमारी यह चित्त-स्थिति! अभी मेरे एक डाक्टर मित्र कह रहे थे कि दूध में पानी मिलाओ वह ठीक है, इंजेक्शन में भी पानी मिल रहा है। मरीज को इस भरोसे पर इंजेक्शन दिया जा रहा है कि वह बच जाएगा। न मरीज को पता है, न डाक्टर को पता है कि इंजेक्शन में कुछ भी नहीं है, सिर्फ पानी है। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है कि इतना करप्टेड माइंड हो सकता है कि एक मरते हुए मरीज को—जिसकी जिंदगी इंजेक्शन पर निर्भर होगी—उसको पानी दिया जा रहा है।

हम आध्यात्मिक लोग हैं। हम जो न करें वह थोड़ा है। हमारी यह अकड़ कैसे टूटेगी? यह अकड़ तोड़नी पड़ेगी। और जो जिंदगी के सीधे तथ्य हैं उनको समझना पड़ेगा। हम धीरे-धीरे ऐसी अकड़ से भर गए हैं कि जिंदगी का जो नग्न सत्य है, उसको देखते ही नहीं। उससे आंख चुराए चले जाते हैं, आंख बंद किए चले जाते हैं, और ऊंची बातें करते रहते हैं।

कई बार मुझे लगता है कि ऊंची बातें करना कहीं जिंदगी के नीचे तथ्यों से एस्केप करने की तरकीब तो नहीं है? अक्सर ऐसा होता है। अक्सर ऐसा हो जाता है। अक्सर आदमी जब मरने लगता है, मौत के करीब पहुंचने लगता है तो आत्मा की अमरता की बात करने लगता है। उसका कारण यह नहीं होता कि उसे पता चल गया आत्मा अमर है, वह मौत को झुठलाना चाहता है। अब वह जो मौत सामने दिखाई पड़ रही है वह उससे बचना चाहता है।

तो अब किताब पढ़ने लगता है, जहां लिखा है: न हन्यते न हन्यमाने शरीरे। वह गीता पढ़ने लगता है कि आत्मा अमर है, कोई मरता नहीं। इसलिए नहीं कि गीता से कोई मतलब है, इसलिए भी नहीं कि आत्मा से कोई मतलब है। मतलब एक है कि यह मौत सामने खड़ी है अब इससे कैसे बचें? इसको कैसे झुठलाएं? तो अपने मन में कहता है, आत्मा अमर है, आत्मा अमर है और भीतर जानता है कि मरना करीब आ रहा है। अब वह मरने को

झुठला रहा है। हम ठीक उलटी तरकीबों से अपने को झुठलाने की कोशिश करते हैं। दिखाई पड़ता है कि अनैतिक है, दिखाई पड़ता है पाप से भरे हैं, लेकिन भीतर कहते हैं आत्मा शुद्ध-बुद्ध है। आत्मा न कोई पाप करती, न कोई बुरा करती, आत्मा ने कभी कोई विकार किया ही नहीं। इसलिए जो साधु-संन्यासी लोगों को समझाते हैं आत्मा ब्रह्म है, परम पवित्र है, उनके आसपास सब तरह के पापी इकट्ठे हो जाते हैं। वे कहते हैं, आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं, आत्मा बिलकुल शुद्ध है। क्योंकि वे भी यह मानना चाहते हैं कि आत्मा बिलकुल शुद्ध होना चाहिए। क्योंकि उनकी अशुद्धियों का फिर क्या होगा?

एक दफे जब साधु समझाता है सब संसार माया है। तब चोर समझता है कि चोरी भी माया है। कोई हर्जा नहीं है। माया में क्या हर्जा है? सपने में चोरी करने में और सपने में साधु होने में कोई फर्क हो सकता है। जिंदगी सब सपना है। इसलिए हम चोर होने की सुविधा पा जाते हैं। जिंदगी के सपने होने से, जिंदगी के माया होने से। हमने अजीब गोरखधंधा पैदा किया हुआ है। हम अपने चारों तरफ एक ऐसा जाल बुन लिए हैं, जो हमारे व्यक्तित्व को निखरने नहीं देता, ईमानदार नहीं होने देता, आनेस्ट नहीं होने देता। हमने सामने के सब दरवाजे बंद कर दिए हैं। और सब तरफ से हमें पीछे के दरवाजे खोलने पड़े हैं।

अभी डाइनवी ने पश्चिम में एक वक्तव्य दिया और उसने कहा कि पश्चिम की जो सभ्यता है वह सिनसेट है, सिनसुअल है, पश्चिम की सभ्यता जो है वह ऐंद्रिक है। तो हिंदुस्तान भर के साधु-संन्यासियों का मन बड़ा प्रसन्न हुआ। एक बड़े संन्यासी मुझे मिल रहे थे, उन्होंने कहा, आपने सुना, डाइनवी कहता है कि पश्चिम की सभ्यता ऐंद्रिक है। तो मैंने कहा कि वह सुन कर आप बहुत खुश न हों, ऐंद्रिक होना फिर भी एक सच्चाई है। अगर पश्चिम की सभ्यता सिनसेट है तो हमारी सभ्यता हिपोक्रेट है। वह उससे भी बदतर है। अगर पश्चिम की सभ्यता ऐंद्रिक है तो हमारी सभ्यता पाखंडी है। और पाखंडी होना ऐंद्रिक होने से बुरा है। क्योंकि इंद्रियां तो परमात्मा ने हमें दी हैं, पाखंड हमारी ईजाद है।

पश्चिम की सभ्यता एक तरह की सिनसिअरिटी को उपलब्ध हो रही है, एक तरह की ईमानदारी को। चीजें जैसी हैं, उनको वैसा देखने की एक वृत्ति पैदा हो रही है। और चीजें जैसी हैं, उनको वैसा देख कर बदला जा सकता है। लेकिन चीजें जैसी नहीं हैं, वैसी कल्पना कर लेने से बदलाहट बहुत मुश्किल हो जाती है। और एक अजीब स्थिति पैदा होती है जो पीछे के दरवाजे वाली है।

मैंने सुना है कि एक नगर में एक नाटक चल रहा था। नाटक की बड़ी प्रशंसा थी। उस गांव का जो बड़ा पादरी था उसे भी प्रशंसा सुनाई पड़ी। शेक्सपियर का नाटक है। बड़ी प्रशंसा है। लेकिन पादरी देखने कैसे जाए? उसके मित्रों ने भी कहा कि बहुत सुंदर है। पादरी ने कहा, नरक जाओगे। जितना लोगों ने कहा, बहुत अच्छा है, उतना पादरी ने कहा कि नरक में भटकोगे। नाटक में मत पड़ो, नाटक में कुछ भी नहीं है।

लेकिन रात उसको भी नींद न आती, उसे भी लगता कि पता नहीं नाटक में क्या हो रहा है? और लोगों को कहता है, नरक जाओगे। तब भी लोग नहीं डरते और नाटक जाते हैं और नरक की फिक्र नहीं करते। जरूर नाटक में कुछ होगा जो नरक के भय से भी ज्यादा आनंदपूर्ण मालूम पड़ता होगा, मन में भरता गया। आखिर उसने एक दिन मैनेजर को एक चिट्ठी लिखी, आखिरी दिन था नाटक का, उसने चिट्ठी लिखी कि मैं भी नाटक

को देखने आना चाहता हूं। लेकिन मैं चाहता हूं कि नाटक देखने वाले मुझे न देख सकें। पीछे का कोई दरवाजा आपके थियेटर में है या नहीं?

उस मैनेजर ने छपा हुआ उत्तर वापस भेजा। जिसमें छपा हुआ था कि आप आएं, हर गांव में जहां भी हमारा थियेटर जाता है हमें पीछे का दरवाजा रखना ही पड़ता है, क्योंकि सज्जन सामने के दरवाजे से आने को राजी नहीं होते, सज्जन पीछे का दरवाजा मांगते हैं। उनके लिए भी सुविधा बनानी पड़ती है। पीछे दरवाजा है, आप बिलकुल आ जाएं। यह छपा हुआ कार्ड था, क्योंकि हर जगह जरूरत पड़ती है, लिखने की जरूरत नहीं थी। नीचे लाल स्याही से हाथ से उसने लिखा था कि इतना तो हम भरोसा देते हैं कि कोई आपको देख न सकेगा, लेकिन यह भरोसा हम नहीं दे सकते कि परमात्मा आपको देख सकेगा या नहीं देख सकेगा।

हम सब पीछे का दरवाजा खोज लिए हैं। जहां सामने के दरवाजे बंद हो जाते हैं, अवरुद्ध हो जाते हैं, वहां आदमी पीछे का दरवाजा खोजना शुरू कर देता है। हमने धन को गाली दी, इसलिए हमसे ज्यादा कंजूस आज जमीन पर कोई भी नहीं है। हमने धन को हजारों साल गाली दी, लेकिन धन पर जैसी हमारी पकड़ है, ऐसी आज किसी की भी नहीं। यह बड़ा चमत्कार है! यह बड़ा मिरेकल है! यह सोचने जैसा मामला है जो कौम हजारों साल से धन को गाली दे रही है, वह कौम धन से इतने जोर से क्यों चिपटती है? जिस कौम ने सदा कहा कि धन मिट्टी है, वह कौम धन को मिट्टी की तरह छोड़ नहीं पाती। एक पैसा नहीं छोड़ पाती। एक पैसे पर हमारी पकड़ इतनी गहरी है जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। तो मुझे लगता है कि हम धोखा दे रहे हैं। धन को गाली दे रहे हैं, पीछे के रास्ते से धन को पकड़ते चले जा रहे हैं।

मैं एक घर में ठहरता था। उस घर के ऊपर दो पश्चिमी परिवार, दो इंजीनियर, वहां कुछ दिन के लिए रुके हुए थे। जिनका मकान था उनके घर में मैं रुकता था। वे जब भी मैं वहां जाता था, तो जरूर उनके बाबत कुछ न कुछ कहते थे कि खाने-पीने में ही लगे रहते हैं, नाचने-गाने में ही लगे रहते हैं। कुछ धर्म नहीं है इनके जीवन में। रात बारह बजे तक नाचते हैं, खाते हैं, पीते हैं, बस यही जिंदगी समझ रखी है इन लोगों ने। जब भी जाता था, वे कोई निंदा करते थे।

मैंने उनसे कहा कि मालूम होता है आपके खाने-पीने की वृत्ति तृप्त नहीं हो पाई। पर उनकी समझ में नहीं पड़ा। जब भी जाता था, वे कहते थे, बस पैसा उड़ाते रहते हैं। तो मैंने कहा कि वे अपना पैसा उड़ाते हैं, आपका पैसा नहीं उड़ाते। लेकिन हम इस हालत तक पैसे के पकड़ने वाले हो गए हैं कि दूसरे को पैसा उड़ाता देख कर भी हमको कष्ट होता है। हमारा पैसा भी कोई नहीं उड़ा रहा है। फिर वे चले गए।

जब मैं तीसरी बार उनके घर मेहमान था तो मैंने देखा कि वे ऊपर के अतिथि चले गए थे।

मैंने उनसे पूछा कि क्या वे लोग चले गए?

उन्होंने कहा कि हां, वे लोग चले गए। लेकिन बड़े अजीब लोग थे। जाते वक्त वे अपनी सब चीजें यहीं बांट गए। जो नौकरानी उनके घर में बर्तन साफ करती थी उसको सारे स्टेनलेस स्टील के बर्तन दे गए। बड़े अजीब लोग थे। स्टेनलेस स्टील बहुत अच्छा था उनके पास, वे सारे बर्तनों को दे गए हैं उन्हीं को।

मैंने उनसे कहा, लोभ आपके मन में भी उन बर्तनों को पाने का रहा होगा। लेकिन बड़े भौतिकवादी लोग थे, बर्तन कैसे दे गए?

उन्होंने कहा, आप कहते हैं कि बर्तन, रेडियो और अपना सामान भी यहां उनके जो मित्र थे सब बांट गए हैं, यहां से कोई सामान नहीं ले गए।

मैंने कहा, भौतिकवादी लोग थे और आप अध्यात्मवादी लोग हैं। आपको कुछ दे गए हैं?

उन्होंने कहा, नहीं, हमें क्या जरूरत है, हमारे पास सब है। तभी उनके छोटे लड़के ने कहा कि नहीं, एक चीज हमारे पास भी है। रस्सी छोड़ गए हैं, कपड़ा सुखाने के लिए रस्सी थी ऊपर, वह मम्मी छोड़ लाई है। क्योंकि वह रस्सी बहुत प्लास्टिक की अच्छी बनी हुई रस्सी यहां मिल भी नहीं सकती। वह हमारे पास है।

आध्यात्मिक आदमी रस्सी छोड़ लाया है। वह रस्सी भी उन्होंने बांधी नहीं है, क्योंकि रस्सी कीमती है। उसे उन्होंने सम्हाल कर रख लिया है।

यह हमारा चित्त ऐसा विकृत, ऐसा परवर्टेड, ऐसा कुरूप क्यों हो गया? इसके होने का क्या कारण है? इसके होने के कारण हैं। वह मैं तीसरी बात मैं आपसे कहूं, हमने जिंदगी के तथ्यों को स्वीकार नहीं किया। जिंदगी में धन की जरूरत है। धन मिट्टी नहीं है। और अगर धन मिट्टी होता, तो हम मिट्टी से ही काम चला लेते, फिर धन की कोई जरूरत न होती।

नहीं, हम झूठ बोल रहे हैं, धन मिट्टी नहीं है। और जिन मंदिरों में यह समझाया जाता है कि धन मिट्टी है, वे मंदिर भी धन की ही कामना किए चले जाते हैं। जो साधु-संन्यासी समझा रहे हैं कि धन मिट्टी है, वे भी धन की ही कामना किए जाता है।

मैं एक संन्यासी के आश्रम में रुका हुआ था। वे समझा रहे हैं लोगों को कि सब असार है और लोग उनके पास पैसे लाकर रखते हैं तो वे असार होने की बात छोड़ कर पहले पैसे पैर के नीचे सरका लेते हैं, फिर बैठ कर शुरू कर देते हैं कि सब असार है। मैं बहुत हैरान हुआ कि ये असार को पैर के नीचे क्यों सरका रहे हैं?

जिंदगी के सहज तथ्यों की अस्वीकृति आदमी को बेईमान कर देती है। हमारे यहां एक-एक आदमी अलग-अलग बेईमान नहीं है, हमारा संस्कृति बेईमान है। अगर एक-एक आदमी अलग-अलग बेईमान होता तो हम एक-एक आदमी को जिम्मेवार ठहराते। नहीं, हमारा समाज बेईमान है। इसलिए इस समाज में जीना तक मुश्किल है ईमानदार होकर।

यानी जिस समाज में हजारों साल तक ईमान की बात की, उस समाज में ईमानदार आदमी का जीना असंभव है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। और एक बेईमान समाज में ईमानदार आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। उसका जिंदा रहना असंभव हो जाता है। सब तरफ बेईमानी है। और सबसे बड़ी बेईमानी जो मैं आपसे कहना चाहूं वह यह है कि हमने जिंदगी को ही झुठला दिया है। जिंदगी की सारी सच्चाइयों को ही इंकार कर दिया है। हम किसी जिंदगी के सत्य को स्वीकार नहीं करते। हम सत्यों की जगह सिद्धांतों को स्वीकार करते हैं।

सिद्धांत, अजीब से सिद्धांत जो हमने आदमी के ऊपर बिठा दिए हैं बिना आदमी की फिक्र किए। हमने भौतिकवाद को स्वीकार नहीं किया। वह हमारे अनाचार में उतर जाने का कारण बन गया। भौतिकवाद जिंदगी का आधार है, अध्यात्म जीवन का शिखर है। लेकिन भौतिकवाद जीवन की बुनियाद है। और अगर कोई मकान बनाना हो, या कोई मंदिर बनाना हो और कोई कहता है कि हम बिना बुनियाद के मंदिर बनाएंगे, और हम सिर्फ

सोने का शिखर चढ़ाएंगे, पत्थर की बुनियाद न रखेंगे। तो वह पागल है, मंदिर कभी नहीं बनेगा। यह बड़े मजे की बात है, शिखर बिना बुनियाद के नहीं हो सकता, लेकिन बुनियाद बिना शिखर के भी हो सकती है।

बिना जड़ के फूल नहीं हो सकता, लेकिन बिना फूलों के भी जड़ हो सकती है। जिंदगी का जो निम्न है वह बिना ऊंचे के हो सकता है, लेकिन ऊंचा बिना नीचे के नहीं हो सकता। हम इस भूल में पड़ गए हैं। हम कहते हैं, हम सिर्फ ऊंचे को बचाएंगे। हम कहते हैं, हम सिर्फ आत्मा को बचाएंगे, शरीर से हमें कोई प्रयोजन नहीं। इसलिए आत्मा तो बची ही नहीं, शरीर भी नहीं बचा है। शरीर आधार है, उसे बचाना पड़ेगा। वह बचे तो आत्मा के बचने की संभावना शुरू होती है। जगत आधार है, वह बचे तो परमात्मा की खोज भी हो सकती है। लेकिन इस सारे जीवन को, जगत को, पदार्थ को, शरीर को, इस सबके हम दुश्मन हैं। इस दुश्मनी ने हमें मुश्किल में डाल दिया। क्योंकि जिस शरीर में जीना है उसकी दुश्मनी अगर आप करेंगे तो आप बेईमान हो जाएंगे।

जीना पड़ेगा शरीर में, श्वास लेनी पड़ेगी, भोजन करना पड़ेगा, कपड़े पहनने पड़ेंगे, और चौबीस घंटे इन्हीं की निंदा भी करनी पड़ेगी। जीवन की निंदा एक तरह की रिक्त पैदा कर देती, और एक तरह का आदमी पैदा करती है जो स्किजोफ्रेनिक हो जाता है, जिसके मन में दोहरे हिस्से हो जाते हैं, जिसके भीतर स्प्लिट हो जाते हैं, टुकड़े टूट जाते हैं, खंड-खंड हो जाते हैं। एक हिस्सा एक तरफ जीने लगता है, दूसरा हिस्सा उसके विरोध में बोलता चला जाता है।

जब आप खाना खा रहे हैं तब भी आपके मन में खाने की निंदा है, जब आप अपनी पत्नी को प्रेम कर रहे हैं तब भी आप जानते हैं कि पाप कर रहे हैं, जब आप अपने बेटे को आप खिला रहे हैं तब भी आप जानते हैं कि यह माया-मोह है, आसक्ति है, बहुत बुरा है। अजीब बात है! बेटे का प्रेम भी विषाक्त हो जाएगा। पति और पत्नी के बीच का संबंध भी पायज़नस हो जाएगा। सारी जिंदगी जहरीली हो जाएगी, क्योंकि जहां जीना है उसकी ही निंदा है, उसका ही कंडमनेशन है।

ऐसे नहीं हो सकता। अगर कोई माली फूलों को गाली देता हो तो उसके हाथ खाद डालने में कमजोर हो जाएंगे। अगर कोई माली फूलों की निंदा करता हो तो फूलों को सम्हालने में उसकी हिम्मत अधूरी हो जाएगी। अगर फूल में खाद देनी है और पानी देना है तो फूल को प्रेम ही करना पड़ेगा, अनकंडीशनल, बेशर्त प्रेम करना पड़ेगा। और मेरी अपनी समझ यह है कि परमात्मा जगत का विरोध नहीं है जैसा हमने समझा, परमात्मा का अगर जगत से विरोध होता जैसा महात्माओं का है, तो जगत को वह कभी का मिटा सकता था, जरूरत क्या है?

मेरी समझ में तो महात्मा परमात्मा के पक्के दुश्मन हैं। क्योंकि वे कहते हैं, जगत को मिटाओ। वे कहते हैं, आवागमन से मुक्ति चाहिए, जन्म-मरण से छुटकारा चाहिए। वह परमात्मा भेजे ही चला जा रहा है, वह इन महात्माओं की सुनता नहीं, वह जगत को बनाए ही चला जा रहा है। और महात्मा जगत को उजाड़ने के लिए लगे हुए हैं। पता नहीं शैतान इनके दिमाग में खयाल देता है, या कौन इनके दिमाग में खयाल देता है।

नहीं, परमात्मा जब इस प्रकृति को बनाता है, और परमात्मा के बिना सहारे के तो यह जीवन नहीं टिकेगा, तो इस प्रकृति को प्रेम करना पड़ेगा, इस शरीर को भी प्रेम करना पड़ेगा, इस जीवन को भी प्रेम करना पड़ेगा। यही प्रेम इतना गहरा हो जाए कि परमात्मा तक उठ सके। यही प्रेम इतना ऊंचा उठ जाए कि जड़ों में न रह जाए, फूलों तक पहुंच सके। यह प्रेम इतना बड़ा हो जाए कि बुनियाद ही नहीं, शिखर भी इससे आ सकें। लेकिन वह हमसे

नहीं हो सका, क्योंकि हमने बुनियादी रूप से जीवन को दो हिस्सों में तोड़ लिया। भौतिक और आध्यात्मिक, ऐसे दो जीवन नहीं हैं। शरीर और आत्मा, ऐसी दो चीजें नहीं हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व इकट्ठा है। और मनुष्य का जो व्यक्तित्व है वह साइकोसोमेटिक है, वह शरीर भी है और आत्मा भी है। बल्कि अच्छा होगा यह कहना कि मनुष्य का व्यक्तित्व एक्स है। जिसका एक रूप शरीर में प्रकट होता है और एक रूप आत्मा में प्रकट होता है। मनुष्य दोनों का जोड़ है यह कहना भी गलत है। क्योंकि इसमें हम दो को मान लेते हैं। ये मनुष्य के दो अभिव्यक्तियां हैं, ये दो रूप हैं मनुष्य के, जो एक तरफ शरीर बनता है और एक तरफ आत्मा की तरफ प्रकट होता है। यह जगत और परमात्मा दो नहीं, यह जगत और परमात्मा एक है। जिस दिन हम ऐसा देख पाएंगे, और जिस दिन हम ऐसा देख कर एक स्वस्थ, बीमार संस्कृति नहीं, स्वस्थ, ऐसी संस्कृति जो जीवन को स्वीकार करती है, उसके आधार रख पाएंगे। जो भौतिकवाद को स्वीकार करती है और अध्यात्म को भी। जो शरीर को स्वीकार करती है और आत्मा को भी। और जो धन को स्वीकार करती है और धर्म को भी। जो निंदा नहीं करती, इंकार नहीं करती, जिसकी धारा में सभी कुछ आत्मसात हो जाता है, ऐसी सर्वग्राही, टोटल एक्सेप्टबिलिटी वाली संस्कृति को अगर हम जन्म न दे पाए तो इस पृथ्वी पर हमारे चरण बहुत दिन तक टिके नहीं रहेंगे। अभी भी टिके नहीं हैं, हजारों साल से भटक रहे हैं। हमारे पैर मजबूती से जमीन पर खड़े नहीं हैं। खड़े हम हो नहीं पा रहे हैं। गिरते हैं रोज। इतने गिरे हैं कि धीरे-धीरे हमने मान लिया कि हमारा भाग्य है, इसलिए हमने प्रयास भी छोड़ दिया है अब कुछ करने का। यह हमारा भाग्य है। गुलाम होते हैं तो भाग्य है, गरीब होते हैं तो भाग्य है। सारी दुनिया बदली जा रही है, हम भाग्य को पकड़ कर बैठे हुए हैं।

अभी पिछले दिनों बिहार में अकाल पड़ा था। अंदाज था कि उस अकाल में एक करोड़ से लेकर दो करोड़ तक लोग मर सकते थे। लेकिन मरे भूख में केवल चालीस लोग। क्योंकि सारी दुनिया सहायता के लिए दौड़ पड़ी। अगर दुनिया न आती तो एक करोड़ आदमी मरते। हम कहते, भाग्य। चालीस मरे तो हमने यह न कहा कि एक करोड़ लोग सारी दुनिया ने बचाए। हमने दुनिया को कोई धन्यवाद भी नहीं दिया। हमने कहा, भाग्य। बच गए तो भाग्य है, मर जाते तो भाग्य है। असल में जब कोई कौम सारी तरह की हिम्मत खो देती है तो भाग्यवादी हो जाती है, फैटेलिस्ट हो जाती है।

आखिरी बात आपसे कह रहा हूं, अतीत से मुक्त हों, भविष्य के निर्माण के लिए अतीत से स्वर्ण युग को हटाएं। स्वर्णयुग आगे है, बीत नहीं गया, आएगा, आएगा नहीं लाना पड़ेगा। जिंदगी को पूरा का पूरा स्वीकार करें, अधूरा नहीं। अधूरी जिंदगी जैसी कोई चीज नहीं होती, जिंदगी है तो पूरी है, अपने सब रूपों में ग्रहण करनी पड़ेगी। ऐसा न करें कि संगीत को स्वीकार करें और वीणा को इंकार करें। कहें कि वीणा तो भौतिक है, संगीत आध्यात्मिक है। तो संगीत तो हम स्वीकार करते हैं, वीणा का इंकार करते हैं। वीणा के बिना संगीत पैदा नहीं होगा।

वीणा ही संगीत पैदा कर सकेगी। वह जो भौतिक है अध्यात्म को पैदा होने की पासिबिलिटी है। वह जो शरीर है वह आत्मा के फूल के खिलने की भूमि है। वह जो प्रकृति है वह परमात्मा के प्रकट होने का अवसर है। समग्र जीवन को स्वीकार करें और भाग्य शब्द को भारत के शब्दकोश से अलग करने की कोशिश करें। उसने हमें डुबाया है, उसने हमें मारा है, उसने हमें नष्ट किया है। भाग्य नहीं, हम, और हम का मतलब हमारे भीतर छिपा

परमात्मा। कोई निर्णायक नहीं है हमसे बाहर, हम ही निर्णायक हैं। हम जो करते हैं वही हमारा निर्णय हमारा भाग्य बन जाता है।

लेकिन हमारा पढ़ा-लिखा आदमी भी, इंजीनियर भी, डाक्टर भी, सड़क के किनारे बैठे चार आने की फीस में हाथ देखने वाले आदमी को हाथ दिखा रहा है। पूछ रहा है भविष्य क्या है? भविष्य पूछना नहीं पड़ता कि क्या है भविष्य बनाना पड़ता है। यह कौम सदा से पूछ रही है भविष्य क्या है? जैसे भविष्य कोई रेडीमेड चीज है, जिसको हम पा लेंगे। मिल जाएगा, बस आ जाएगा, भविष्य कुछ रेडीमेड नहीं है, भविष्य निर्माण करना होता है।

अमेरिका आज तीन सौ वर्षों की कौम है केवल। तीन सौ वर्ष किसी कौम के इतिहास में बहुत ज्यादा नहीं होते। लेकिन तीन सौ वर्ष में अमेरिका ने सारी दुनिया की सर्वाधिक संपत्ति और समृद्धि पैदा की है। और हम कोई दस हजार वर्ष पुरानी कौम हैं और भूखे मर रहे हैं। सोचने जैसा है कि बात क्या है? हमारे पास जमीन अमेरिका से बुरी नहीं। और अमेरिका में भी तीन सौ वर्ष पहले जो लोग रह रहे थे, अमेरिकी, असली अमेरिकी, रेड इंडियन वे तो गरीब ही थे, वे आज भी गरीब हैं। उसी जमीन पर गरीब थे, उसी जमीन पर दूसरे लोगों ने आकर इतनी संपत्ति पैदा कर ली।

काउंट केसरलिंग हिंदुस्तान आया। एक जर्मन विचारक था। लौट कर उसने एक किताब लिखी और उस किताब में उसने एक वाक्य लिखा। वह मैं पढ़ता था तो मैं बहुत हैरान हुआ। उसने लिखाः इंडिया इज़ ए रिच लैंड, व्हेयर पुअर पिपुल लिव। हिंदुस्तान एक अमीर देश है, जहां गरीब लोग रहते हैं। मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने कहा, अगर देश अमीर है तो गरीब लोग कैसे रहते होंगे? और अगर गरीब लोग रहते हैं तो अमीर कहने का क्या मतलब है? क्या मजाक है? लेकिन बात उसने ठीक ही कही है। देश तो अमीर है लेकिन रहने वाले भाग्यवादी हैं। और भाग्यवादी कभी अमीर नहीं हो सकते।

देश के पास तो अनंत संभावना है। उसके साथ नदियां हैं, पहाड़ हैं, आकाश है, जमीन है, समुद्र है, सब है। इतनी विविध रूप से प्रकृति जमीन में किसी देश को उपलब्ध नहीं है। इतने विस्तार में इतने गहरे स्रोत वाला संभावना किसी के पास नहीं। लेकिन इतना गरीब आदमी जैसा हमारे पास है ऐसा भी किसी को उपलब्ध नहीं। भगवान ने खूब मजाक किया है। इतनी समृद्ध संभावनाएं दी थीं, तो इतना भाग्यवादी आदमी क्यों दिया? लेकिन वह भाग्यवादी आदमी अनंत संभावनाओं को ऐसा ही रिक्त छोड़ देता है और भूखा मर रहा है।

अभी घोषणाएं कर रहे हैं समझदार लोग कि उन्नीस सौ अठहत्तर तक हिंदुस्तान में एक बड़ा अकाल पड़ सकता है। अगर सारी दुनिया ने गेहूं नहीं दिया तो उन्नीस सौ अठहत्तर में हिंदुस्तान में इतना बड़ा अकाल पड़ सकता है जितना मनुष्य के इतिहास में कभी भी कहीं नहीं पड़ा। उस अकाल में जो लोग सोचते हैं, समझते हैं, उनका अंदाज है कि बीस करोड़ लोग भी मर सकते हैं।

दिल्ली में मैं एक बड़े नेता से कह रहा था, उन्होंने कहा, उन्नीस सौ अठहत्तर बहुत दूर है। अभी तो उन्नीस सौ बहत्तर पड़ा है। अभी तो इलेक्शन उन्नीस सौ बहत्तर का हो जाए फिर सोचेंगे। उन्नीस सौ अठहत्तर बहुत दूर है, और फिर उन्होंने कहा, जो भाग्य में होना होगा।

भाग्य को भारत के शब्दकोश से उखाड़ कर फेंक देना है। वह भारत के शब्दकोश में नहीं रह जाना चाहिए। तो हम एक नया समाज, एक नई दुनिया, और एक नया आदमी, जो संपन्न हो, सुखी हो, शांत हो और प्रभु को प्रेम भी दे सके, पैदा कर सकते हैं।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, ये पुराने चर्च को गिराने के लिए कहीं। और नये चर्च को बनाना हो तो पहले पुराने को गिरा देना पड़े। और पुराना गिर जाए तो फिर नया बनाना ही पड़ता है। और पुराना न गिरे तो हम सोचते हैं एक रात और गुजार दो, एक सांझ और गुजार दो, थोड़ा कहीं टीम-टाम कर लो, कोई दीवाल टूट गई है तो सुधार लो, कोई दरवाजा खराब हो गया है तो रंग पोत लो, कुछ थोड़ा सा बदल लो और इसी में जीए चले जाओ। यह पूरा का पूरा समाज का हमारा ढांचा सड़ गया है, पूरा ढांचा सड़ गया है। और यह आज नहीं सड़ गया, यह बहुत दिनों से सड़ा हुआ है। यह हमें सड़ा हुआ ही मिलता रहा है। इसलिए चूंकि हमें सड़ा हुआ ही मिलता है इसलिए खयाल भी नहीं आता कि यह सड़ गया।

अगर यह हमको अच्छा मिले और फिर सड़ जाए तो हमें खयाल भी आए। वह तो हम बूढ़े अगर पैदा हों तो हमको कभी पता भी न चले कि हम बूढ़े कब हो गए। पता कैसे चले? वह तो हम बच्चे पैदा होते हैं इसलिए पता चलता है कि बुढ़ापा आ गया है। यह समाज पांच हजार साल से बूढ़ा है। इसलिए अब हमें यह भी पता चलना बंद हो गया है कि हम बूढ़े हो गए, कि हम मर गए, कि हम सड़ गए हैं। यह बोध आ सके इसलिए सोचने के लिए कुछ सूत्र मैंने आपसे कहे।

जरूरी नहीं कि मेरी बातें मान लें। किसी की बातें माननी जरूरी नहीं हैं। वह भी भारत की एक बीमारी है कि वह किसी की भी बातें मान लेता है। नहीं, मेरी बात मानने की जरूरत नहीं। सोचें, मैंने कहा उस पर संदेह करें, विचार करें। हो सकता है कि सब गलत हो, हो सकता है कुछ ठीक हो। अगर आपके सोचने से कुछ उसमें ठीक आपको दिखाई पड़े तो फिर वह मेरा नहीं रह जाता, वह आपका अपना सत्य हो जाता है। और वे ही सत्य काम में आते हैं जो हमारे अपने विचार का फल हैं। और कोई सत्य काम में नहीं आते हैं।

उधार सत्य, असत्य से भी बदतर होते हैं। और हमारे पास सिवाय उधार सत्यों के और कुछ भी नहीं हैं। बारोड, हजारों साल से उधार है। हमें अपने सत्य खोजने पड़ेंगे। हर युग को, हर समाज को, हर व्यक्ति को, अपना सत्य खोजना पड़ता है। सत्य की खोज के साथ ही जीवन की ऊर्जा जगती है और सृजन की संभावना खुलती है।

मेरी इन बातों को इतने शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

भारत का भविष्य

मेरे प्रिय आत्मन्!

यह देश शायद अपने इतिहास के सबसे ज्यादा संकटपूर्ण समय से गुजर रहा है। संकट तो आदमी पर हमेशा रहे हैं। ऐसा तो कोई भी क्षण नहीं है जो क्राइसिस का, संकट का क्षण न हो। लेकिन जैसा संकट आज है, ठीक

वैसा संकट मनुष्य के इतिहास में कभी भी नहीं था। इस संकट की कुछ नई खूबियां हैं, पहले हम उन्हें समझ लें तो आसानी होगी।

मनुष्य पर अतीत में जितने संकट थे, वे उसके अज्ञान के कारण थे। जिंदगी में बहुत कुछ था जो हमें पता नहीं था और हम परेशानी में थे। वह परेशानी एक तरह की मजबूरी थी, विवशता थी। नये संकट की खूबी यह है कि यह अज्ञान के कारण पैदा नहीं हुआ है, ज्यादा ज्ञान के कारण पैदा हुआ है। जैसे दुनिया में नालेज एक्सप्लोजन हुआ है, ज्ञान का विस्फोट हुआ है। हमेशा आदमी आगे था और ज्ञान बहुत पीछे सरकता था, छाया की तरह। अब ज्ञान आगे हो गया है और आदमी को पीछे सरकना पड़ रहा है, छाया की तरह। अज्ञान से जितनी तकलीफें हुई थीं, उससे बहुत ज्यादा तकलीफें ज्ञान से हो गई हैं।

असल में अज्ञान से जो तकलीफ है, वह मजबूरी की तकलीफ है। क्योंकि अज्ञान एक कमजोरी है। और ज्ञान से जो तकलीफ होती है वह ज्यादा ताकत की तकलीफ है। जैसे बच्चे के हाथ में तलवार दे दी जाए और बच्चा अपने को नुकसान पहुंचा ले। आदमी के पास जितना ज्ञान आज है, वह ज्ञान ही उसे नुकसान पहुंचाने वाला सिद्ध हो रहा है। दो कारणों से। एक तो आदमी उस ज्ञान के साथ आगे नहीं बढ़ पा रहा है। दूसरा, आदमी के पुराने जिंदगी के अनुभव और आदतें उस नये ज्ञान के इंप्लीमेंटेशन में, उसके प्रयोग में बाधा बन रही हैं। दूसरा इस संकट की एक विशेष खूबी है और वह यह है कि पुराने सारे संकट ऐसे संकट थे कि हम अपने अतीत के अनुभव से उन्हें हल करने के लिए कोई रास्ता खोज सकते थे। हमारे पास एक्सपीरिएंसेज उनके लिए रास्ता बन जाते थे। नये संकट की दूसरी खूबी यह है कि पुराना कोई भी अनुभव काम का नहीं है। क्योंकि जो संकट पैदा हुआ है वह नये ज्ञान से पैदा हुआ है। और पुराने मनुष्य-जाति के अनुभव में उससे मुकाबला करने के लिए कोई उत्तर नहीं है। और हमारी सदा की आदत यह रही है कि जब भी हम नई परिस्थिति से जूझते हैं तो पुराने अनुभव के आधार पर जूझते हैं।

यह हमेशा ठीक था, पुराना अनुभव सदा काम दिया था, अब काम नहीं देगा। क्योंकि जो ज्ञान हमारे सामने है, जिससे संकट उत्पन्न हुआ है वह इतना नया है कि उसका कोई मिसाल, उसका कोई मुकाबला मनुष्य के अतीत में नहीं था। लेकिन मनुष्य के सोचने का ढंग हमेशा पास्ट ओरिएनटेड होता है, वह पीछे से बंधा होता है।

जैसे उदाहरण के लिए दो-तीन बातें मैं कहूं, तो आपके खयाल में आ सकें। आज भी हम स्कूल में सात साल के बच्चे को भरती करते हैं। कोई भी यह नहीं बता सकता कि सात साल के बच्चे को भरती करने की क्या जरूरत है? सात साल कैसे तय किया गया है स्कूल में बच्चे को भरती करने के लिए? कौन सा वैज्ञानिक कारण है? लेकिन सारी दुनिया सात साल के बच्चे को स्कूल में भरती करे जाती है।

हमें यह खयाल में ही नहीं है कि जब हमने आज से कोई चार सौ या पांच सौ साल पहले सात साल के बच्चे को स्कूल में भरती किया था, तो जिन कारणों से किया था वे कारण अब कहीं भी नहीं रह गए हैं। असल में स्कूल इतने दूर थे कि सात साल से छोटा कम का बच्चा उतने दूर के स्कूल में नहीं भेजा जा सकता था। उसका बच्चे से कोई भी संबंध नहीं है सात साल की उम्र का। लेकिन अब स्कूल बिलकुल पड़ोस में तो भी सात साल के बच्चे को हम स्कूल भेजे चले जाते हैं।

आज कोई भी जरूरत नहीं है कि हम सात साल तक बच्चे को रोकें स्कूल भेजने से। लेकिन पुरानी आदत काम किए चली जाती है। जब कि समस्त नई खोजें यह कहती हैं कि बच्चा अपनी चार साल की उम्र में जितना सीख लेता है, वह पूरी जिंदगी में जितना सीखेगा उसका आधा है। चार साल की उम्र में बच्चा अपनी जिंदगी का पचास प्रतिशत, फिफ्टी परसेंट ज्ञान पा लेता है। फिर बाकी अगर वह अस्सी साल जीएगा तो बाकी पचास प्रतिशत अस्सी साल में सीखेगा। जिंदगी के पहले चार साल सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। लेकिन वे शिक्षा के बाहर हैं। क्योंकि हम सात साल के बच्चे को स्कूल भेजने की पुरानी आदत से मजबूर हैं।

दूसरा आपको उदाहरण देना चाहूंगा कि आपने शायद ही कभी सोचा होगा कि हमने सारी दुनिया में, गणित के लिए दस के अंक ही क्यों तय किए हैं? दस तक के फिगर क्यों तय किए हैं? कोई गणितज्ञ उत्तर नहीं दे सकता कि उसका कारण क्या है। पांच से भी काम चल सकता है, छह से भी काम चल सकता है। हमने दस ही क्यों तय किए हैं? वह दस तय करना हो गया कोई लाखों साल पहले, क्योंकि आदमी ने सबसे पहले गिनती अंगुलियों से शुरू की, और सारी दुनिया में आदमियों के पास दस अंगुलियां थीं, इसलिए दस पर गिनती ठहर गई। फिर सारी संख्या हमने दस के ऊपर ही फैला ली।

लीबनीज नाम के एक बड़े वैज्ञानिक ने तीन के आंकड़े से पूरा काम चला लिया। सारे गणित हल कर लिए। लेकिन कोई राजी ही नहीं। हम दस से ही हिसाब चलाए चले जाएंगे। जब कि जितने कम आंकड़े हों उतना गणित आसान और सरल हो सकता है। लेकिन वह दस अंगुलियों ने हमें उलझा दिया है। अब दस अंगुलियों से कोई संबंध नहीं रहा है। लेकिन दस का आंकड़ा तय हो गया, वह हमको पकड़े हुए है।

एक तीसरा आपको उदाहरण दूं ताकि आपके खयाल में आ सके। हमने कपास से कपड़े बनाए, कोई आज से छह हजार साल पहले, इजिप्त में। कपास को तो धागा बनाना पड़ता है पहले, फिर कपड़ा बुनना पड़ता है। अब हमने एक तरह के सिंथेटिक मैटीरियल विकसित कर लिए हैं जिनके धागे बनाने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन हम टेरीलीन हो कि नाइलोन हो, उन सबको भी पहले धागा बनाते हैं, फिर धागे को बुनते हैं। यह भी कोई पागलपन की बात है!

अब नई जो वस्तु सामग्री है उससे सीधा ही कपड़ा बनाया जा सकता है। उसको अलग धागे बना कर फिर कपड़ा बनाने की कोई जरूरत नहीं है। पुरानी दुनिया में आदमी को अपने कपड़े काट कर और दर्जी से सिलवाना पड़ते थे। अब हम पूरी की पूरी कमीज ढाल सकते हैं, अब उसको दर्जी से कटवा कर सिलवाने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन छह हजार साल पुरानी आदत दिमाग में बैठी है। तो पहले हम धागे बनाएंगे, फिर धागों को बुनेंगे, फिर उनको काटेंगे, फिर दर्जी उनको सिएगा। अब यह सब निपट नासमझी की बात हो गई है।

लेकिन पुरानी आदत हमें पकड़े हुए है। अब तो कमीज और पैंट को ढाला जा सकता है। यह बड़े मजे की बात है कि आदमी इतना विकसित हो गया है, फिर भी पक्षियों के मुकाबले हमारे पास कपड़े नहीं हैं। असल में, आपने कभी खयाल किया, एक पक्षी, वर्षा हो जरा से पर फड़फड़ाते और पानी अलग हो गया। आपको अभी भी चौबीस घंटे कपड़ा सुखाने में खर्च करने पड़ रहे हैं। अब कोई जरूरत नहीं है। अब हम ऐसे कपड़े विकसित कर सकते हैं जिनको आप पानी गिरे तो आप सिर्फ छिड़क दें और पानी अलग हो जाए। लेकिन पुरानी आदत

सूती कपड़े की हमारे दिमाग को परेशान किए हुए है। अब सौ-सौ पचास-पचास जोड़ी कपड़े घर में रखने की कोई जरूरत नहीं रह गई है। लेकिन फिर भी एक बड़ा सूटकेस लेकर हमको सफर करनी पड़ती है।

हमारी पुरानी आदतें पीछा नहीं छोड़तीं। नया ज्ञान आ जाता है तब भी हम पुरानी आदतों से ही जीए चले जाते हैं। नये संकट की सबसे बड़ी जो खूबी है वह यह है कि नये ज्ञान का संकट है और पुराना आदमी इसके साथ तालमेल नहीं बिठा पा रहा। आदमी पुराना पड़ गया है और ज्ञान बहुत नया है। यह ज्ञान इतना नया है कि इसे समझ लेना थोड़ा जरूरी है।

जीसस के मरने के बाद साढ़े अठारह सौ वर्षों में दुनिया में जितना ज्ञान पैदा हुआ था, उतना ज्ञान पिछले डेढ़ सौ वर्षों में पैदा हुआ है। और जितना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में ज्ञान पैदा हुआ है, उतना ज्ञान पिछले पंद्रह वर्षों में पैदा हुआ है। और जितना ज्ञान पिछले पंद्रह वर्षों में पैदा हुआ है, उतना पिछले पांच वर्षों में पैदा हुआ है।

अब दुनिया जब पहले साढ़े अठारह सौ वर्ष में जितना ज्ञान पैदा करती थी, उतना पांच वर्ष में पैदा कर रही है। यह भी ज्यादा दिन नहीं चलेगा, आने वाले दिनों में ढाई वर्ष में उतना ज्ञान पैदा हो जाएगा। असल में दुनिया को साढ़े अठारह सौ वर्ष में जितना ज्ञान मिलता था, अगर पांच वर्ष में मिल जाएगा तो नालेज एक्सप्लोजन हो जाएगा। ज्ञान बहुत आगे निकल जाएगा, आदमी बहुत पीछे छूट जाएगा। अठारह सौ साल में हम एडजेस्ट हो जाते थे उससे। अनेक पीढ़ियां बदल जाती थीं तब ज्ञान बदलता था।

सच्चाई तो यह है कि एक आदमी की जिंदगी में करीब-करीब दुनिया में कुछ भी नहीं बदलता था। जैसी दुनिया थी वैसी होती थी। जैसा आदमी जन्म के वक्त दुनिया को पाता था, करीब-करीब वैसी की वैसी मरते वक्त दुनिया को छोड़ता था। इसलिए उसके लिए एडजेस्टमेंट का सवाल नहीं था, वह एडजेस्टेड ही पैदा होता था और मरता था। अब एक बार आदमी की जिंदगी में पच्चीस बार सब बदल जाता है। असल में हमें पुराना खयाल छोड़ देना चाहिए एक जन्म का। अब एक आदमी जिंदगी में पच्चीस बार जन्म ले रहा है। क्योंकि उसके आस-पास की दुनिया हर पांच-दस साल में बदल जाती है। उसको फिर से एडजेस्ट होना पड़ता है।

इसलिए जो कौमें नये एडजेस्टमेंट नहीं खोज सकती हैं वे कौमें बहुत मुसीबत में पड़ जाती हैं। भारत के अधिकतम सवाल, भारत की अधिकतम समस्याएं भारत की पुरानी आदत की समस्याएं हैं। हम पुरानी आदत से मजबूर हैं। हम जिंदगी को फिर मानने की आदत लिए बैठे हैं। जब कि जिंदगी अब तालाब नहीं रह गई, नदी हो गई है। वह रोज बदली जा रही है। तालाब को अपने तट का परिचय होता है, सदा एक ही तट होता है। वह उसे जानता है भलीभांति। वे ही दरख्त होते हैं, वे ही पक्षी होते हैं, वे ही लोग स्नान करने आते हैं। नदी रोज तट बदल लेती है, रोज वृक्ष बदल जाते हैं, रोज पक्षी बदल जाते हैं, रोज स्नान करने वाले बदल जाते हैं। नदी को रोज नई दुनिया के साथ राजी होना पड़ता है।

हिंदुस्तान अब तक एक तालाब था। वह पहली दफा एक नदी बना है। उसे बहुत मुसीबत हो रही है। और जब जिंदगी में एक बार नहीं पच्चीस बार सारा ज्ञान बदल जाता हो तो हम बहुत मुश्किल में पड़ जाते हैं। वह मुश्किल कई तरह की है। पहली मुश्किल तो यह है कि पुरानी दुनिया में पिता हमेशा बेटे से ज्यादा जानता था। नई दुनिया में जरूरी नहीं रह गया। लेकिन बाप की पुरानी अकड़ नहीं जाती। पुरानी दुनिया में बाप अनिवार्य रूप से ज्यादा जानता था। इसमें कोई शक की बात ही नहीं थी कभी, इसमें बेटा सवाल ही नहीं उठा सकता था।

क्योंकि बाप ज्यादा जीया था, इसलिए जो थिर जिंदगी थी उससे वह ज्यादा परिचित हो गया था। बेटा कम जीया था, इसलिए वह कम परिचित था।

असल में पुराना ज्ञान अनुभव से ही आता था, और कोई रास्ता ही नहीं था। बाप अनुभवी था, बेटा गैर-अनुभवी था। गुरु अनुभवी था, शिष्य गैर-अनुभवी था। इसलिए शिष्य अगर गुरु के चरणों में सिर रखता था तो इसमें कोई आश्चर्य न था। आज शिष्य को गुरु के चरणों में सिर रखवाना मुश्किल है। क्योंकि आमतौर से आज गुरु और शिष्य के बीच एक पीरियड से ज्यादा का फासला नहीं होता ज्ञान का। वह एक घंटे पहले जो तैयारी करके शिक्षक आया होता है उतना ही फासला होता है। अब इतने से फासले के लिए पैर नहीं छुआ जा सकता। और अगर विद्यार्थी थोड़ा बुद्धिमान हो तो शिक्षक से ज्यादा जान सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गई।

लेकिन पुरानी दुनिया में विद्यार्थी कभी शिक्षक से ज्यादा नहीं जान सकता था। अगर बेटा थोड़ा होशियार हो तो बाप से ज्यादा जान ही लेगा। असल में पिता तीस साल पहले यूनिवर्सिटी में पढ़ा था, बेटा तीस साल बाद पढ़ेगा। तीस साल में दुनिया हजारों साल में जितना बदलती है उतना ज्ञान बदल जाएगा। जब बेटा घर लौटेगा तो बेटा ज्यादा जान कर लौटेगा बाप से। लेकिन बाप अपनी पुरानी अकड़ को कायम रखना चाहे तो नुकसानदायक है। सच बात यह है कि स्थिति बदल गई है। जब पहले बेटा सदा बाप से पूछता था। अब ऐसा नहीं है। अब बाप को अक्सर बेटे से पूछने के लिए तैयार होना पड़ेगा। और अगर हम इसके लिए राजी न होंगे तो हम बहुत बेचैन हो जाएंगे, बहुत परेशान हो जाएंगे। जब ज्ञान इतने जोर से बदलता है तो पुराने थिर संबंध बदल जाते हैं। वह जो स्टेटिक रिलेशनशिप होती है वह बदल जाती है।

इस समय भारत के सामने जो समस्याओं की जटिलता है उसमें एक कारण यह भी है कि पिता सोचता है कि वह ज्यादा जानता है, गुरु सोचता है कि वह ज्यादा जानता है, क्योंकि हमारी उम्र ज्यादा है। असल में उम्र पहले ज्यादा होती थी तो ज्यादा ज्ञान होता था। अब यह सच नहीं रहा है। अब उम्र के ज्यादा होने से ज्ञान के ज्यादा होने का कोई भी संबंध नहीं रह गया। क्योंकि आप तीस साल पहले पढ़े थे, तीस साल में इतनी घटनाएं घट गई हैं, चीजें इतनी बदल गई हैं कि आप करीब-करीब आउट ऑफ डेट होंगे। आपका जो ज्ञान है वह करीब-करीब गलत हो चुका होगा। उस ज्ञान को थोपने का आग्रह बेटों में बगावत पैदा करेगा। हिंदुस्तान में बेटे बगावत कर रहे हैं। उस बगावत का आधा जिम्मा हिंदुस्तान के बाप पर है, आधा जिम्मा हिंदुस्तान के शिक्षक पर है। क्योंकि हम बेटों पर पुराने ढंग से चीजों को थोप रहे हैं।

नहीं, बेटे और बाप के बीच का फासला बहुत कम हो गया है। वह दो पीढ़ियों का फासला नहीं रहा है अब, वह ज्यादा से ज्यादा बड़े भाई और छोटे भाई का फासला हो गया है। और उस फासले में भी छोटे भाई के जानने की संभावनाएं बड़े भाई से ज्यादा हो गई हैं। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच बाप-बेटे का नाता था, वह बदल गया, अब शिक्षक और विद्यार्थी के बीच बाप-बेटे का नाता नहीं; क्योंकि बाप-बेटे के बीच भी बाप-बेटे का नाता नहीं रह गया है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच अब बड़े और छोटे भाई का संबंध रह गया है। जो दो कदम आगे है, और वह जो दो कदम आगे है उसे दो कदम आगे रहने के लिए निरंतर श्रम करना पड़ेगा। सिर्फ उम्र से

आगे नहीं रह सकता। और अगर जरा भी पिछड़ गया तो जो दो कदम पीछे है वह आगे हो जाएगा। इसलिए फासले गिर गए हैं। लेकिन आदतें गिरने में वक्त लेती हैं।

ज्ञान बढ़ जाता है, आदमी बदलने में समय लेता है। आदमी की आदतें बड़ी मुश्किल से बदलती हैं। उन आदतों की न बदलाहट हमारे लिए बहुत तरह की समस्याएं पैदा करती हैं। अब जैसे हिंदुस्तान के सामने एक समस्या बड़ी से बड़ी जो है वह यह है कि हिंदुस्तान की पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच संबंध कैसे निर्मित हों? संबंध टूट गए हैं।

मैं हजारों घरों में ठहरता हूं, मैं किसी बाप और बेटे को बोलचाल की स्थिति में नहीं देखता, कोई कम्युनिकेशन नहीं है। बाप और बेटे बैठ कर बातचीत करते हों, एक-दूसरे की समस्याएं समझते हों, ऐसी बात नहीं है। हां, कभी-कभी बात होती है, जब बेटे को बाप से कुछ पैसे हथियाने होते हैं या बाप को बेटे को कुछ उपदेश देना होता है, तब कभी-कभी कुछ बातचीत होती है। लेकिन वह बातचीत एक तरफा होती है, वन वे ट्रैफिक होता है। जब बाप बोल रहा होता है तब बेटा बचने की कोशिश में होता है कि कब निकल भागे और जब बेटा बोल रहा होता है तब बाप बचने की कोशिश में होता है कि कब निकल भागे। उसमें कम्युनिकेशन नहीं है।

हिंदुस्तान की दो पीढ़ियां इस तरह से टूट कर खड़ी हो गई हैं कि उनके बीच एक गैप, एक एबिस हो गई है। हिंदुस्तान की अधिकतम समस्याओं के लिए यह गैप, यह अंतराल, यह खाई जिम्मेवार हो रही है। और यह सब बात इतनी अजीब होती जा रही है कि करीब-करीब बेटे बाप की भाषा नहीं समझ पा रहे हैं, बाप बेटे की भाषा नहीं समझ पा रहे हैं। यह नासमझी मुल्क को बहुत गहरे गड्ढे में गिरा देगी। यह इसलिए गड्ढे में गिरा देगी कि बेटों के पास ताकत बहुत, बेटों के पास नये ज्ञान का अंबार भी है। लेकिन बेटों के पास विज़डम जैसी चीज आज भी नहीं है और कभी भी नहीं होगी। विज़डम और नालेज में थोड़ा सा फर्क है। नालेज तो आज बेटे के पास बाप से ज्यादा है, लेकिन विज़डम आज भी बेटे के पास बाप से ज्यादा नहीं है। विज़डम सदा ही अनुभव से आती है। ज्ञान शिक्षण से भी आ जाता है। विज़डम तो जीवन को जीने से आती है। ज्ञान तो किताब से भी आ जाता है, इनफार्मेशन से भी आ जाता है, ज्ञान तो स्कूल की परीक्षा से भी आ जाता है। पुरानी दुनिया में ज्ञान और प्रज्ञा, नालेज और विज़डम दोनों ही अनुभव से आते थे। नई दुनिया में ज्ञान शिक्षा से आता है और विज़डम प्रज्ञा अनुभव से आती है।

बाप के पास प्रज्ञा तो है, विज़डम तो है, नालेज में वह बेटे से पिछड़ गया है। बेटे के पास नालेज है और ताकत है। और इन दोनों के बीच कोई संबंध नहीं रह गया है। हालत करीब-करीब ऐसी है जैसे आपने एक कहानी सुनी होगी कि जंगल में आग लग गई और एक अंधा और लंगड़ा उस जंगल में फंस गए हैं। अंधा भागता है, भाग सकता है, उसके पास ताकतवर पैर हैं, लेकिन भागने से भरोसा नहीं है कि जंगल के बाहर निकल जाएगा। डर यही है कि जोर से भागेगा तो और जल्दी आग में गिर जाएगा। चारों तरफ आग बढ़ती जा रही है। लंगड़ा देख सकता है, उसके पास आंखें हैं, उसे दिखाई पड़ रहा है कि कहां से निकल सकता है, लेकिन उसके पास पैर नहीं हैं कि दौड़ सके। उस अंधे और लंगड़े ने जितनी बुद्धिमत्ता दिखाई, अगर हिंदुस्तान के बाप और बेटों ने भी उतनी बुद्धिमत्ता दिखाई तो हम इस देश को बचा लेंगे, अन्यथा यह डूब जाएगा।

उस जंगल में लगी हुई आग के बीच अंधे और लंगड़े ने एक समझौता कर लिया। एक बड़ा कीमती समझौता कर लिया। वह समझौता यह था कि अंधा चले और लंगड़ा चलाए। वह समझौता यह था कि लंगड़ा अंधे के कंधों पर सवार हो जाए। तब वे दो आदमी एक आदमी की तरह काम करने लगें। जिसके पास पैर हैं वह पैर दे दे और जिसके पास आंख हैं वह आंख दे दे। करीब-करीब आज हिंदुस्तान ऐसी हालत में है। नई पीढ़ी के पास पैर हैं, ताकत है, ज्ञान से मिली हुई नई ताकत है, क्योंकि आज तो ज्ञान ही बड़ी से बड़ी ताकत है।

बेकन ने कभी कहा था कि नालेज इज़ पावर। उस दिन यह बात सच न थी, आज यह बात सच हो गई है। आज तलवार उतनी बड़ी ताकत नहीं है और न मसल्स की ताकत उतनी बड़ी है। और ये सब पिछड़ी हुई ताकतें हैं जिनका कोई अर्थ नहीं रह गया। आज ज्ञान सबसे बड़ी ताकत है। तो बेटों के पास ज्ञान है, ताकत है, लेकिन बेटों के पास आंख नहीं हो सकती। आंख आज भी अनुभव से मिलती है। आंख आज भी जीवन को गुजरने से पता चलती। वह जो विज़डम की आंख है वह आज भी बूढ़े के पास है, वह आज भी बाप के पास है, वह आज भी शिक्षक के पास है। लेकिन इन दोनों के बीच तालमेल, हार्मनी टूट गई है।

अगर भारत की दोनों पीढ़ियों ने समझौता नहीं किया और अगर दोनों के बीच कोई संयोग, कोई संवाद, कोई डायलाग नहीं संभव नहीं हो सका, तो भारत इतने बड़े खतरे में पड़ जाएगा जितने बड़े खतरे में वह कभी भी नहीं पड़ा था। हालांकि बहुत खतरे भारत ने देखे हैं। बहुत तरह की गुलामियां, बहुत तरह की गरीबियां, बहुत तरह की परेशानियां। लेकिन जो भविष्य हमारे सामने आएगा वह सबसे खतरनाक होगा। क्योंकि उसमें सबसे बड़ी जो विघटन, जो डिसइंटिग्रेशन मुल्क में पड़ रहा है, वह यह है कि जिनके पास आंख हैं वे अलग टूट गए हैं और जिनके पास ताकत है वे अलग टूट गए हैं।

तो पहली समस्या तो मुझे, इस समस्या से बहुत सी समस्याएं पैदा हो रही हैं। चाहे उस समस्या का नाम नक्सलाइट हो, चाहे उस समस्या का कोई और नाम हो, यह बाप और बेटे के बीच पैदा हुई खाई का परिणाम है। चाहे स्कूल-कालेजों में पत्थर फेंके जा रहे हों और चाहे स्कूल-कालेजों में बसें जलाई जा रही हों, यह समस्या कोई भी हो, लेकिन इस समस्या की बहुत बुनियाद में एक डायलाग खो गया है। बाप और बेटे के बीच कोई बातचीत, कोई तालमेल नहीं रह गया। बेटे कुछ और भाषाएं बोल रहे हैं, बाप कुछ और भाषाएं बोल रहे हैं और दोनों एक-दूसरे को सुनने में असमर्थ हो गए हैं।

जुंग ने एक संस्मरण लिखा है। उसने लिखा है कि मेरे पागलखाने में एक बार दो प्रोफेसर पागल होकर आ गए। ऐसे भी प्रोफेसर पागलखानों में बड़ी संख्या में पहुंचते हैं। कई बार तो ऐसा लगता है कि जो प्रोफेसर एकाध दफे पागल न हो वह ठीक अर्थों में प्रोफेसर नहीं है। वे दो प्रोफेसर जुंग के पागलखाने में गए हैं। जुंग उनका अध्ययन करता है। क्योंकि वे दोनों बड़े बुद्धिमान लोग हैं। कभी-कभी बुद्धि की अति भी पागलपन बन जाती है। वे बहुत ज्ञानी हैं। लेकिन कभी-कभी बहुत ज्ञान व्यक्तित्व को तोड़ जाता है।

जैसे ज्यादा भोजन न पच पाए तो नुकसान हो जाता है, वैसे ज्यादा ज्ञान भी न पच पाए तो नुकसान हो जाता है। और करीब-करीब हमारी सदी ज्यादा ज्ञान के अपच से पीड़ित हैं। ज्ञान रोज चला आता है और पचाने का, खून बनाने का, हड्डी-मांस बनाने का मौका ही नहीं मिलता। जब तक पुराना ज्ञान हड्डी-मांस बने तब तक नया ज्ञान

भीतर प्रवेश कर जाता है। और इतने जोर से हो रही ये बौछार कि कठिनाई हो गई है। वह दोनों प्रोफेसर का जुंग अध्ययन करता रहा। वह खिड़की में छुप कर उनकी बातें सुनता था। वह बड़ा हैरान हुआ।

हैरानी दो तरह की थी। एक तो हैरानी यह थी कि वे दोनों जो बातें करते थे, वे अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्ण थीं, उनकी बातें सुन कर कोई भी नहीं कह सकता था कि वे पागल हो गए हैं। उनकी बातें तर्कयुक्त थीं। उनकी बातों में बराबर ग्रंथों के उद्धरण होते थे, उनकी बातों में। उसने ग्रंथ भी उठा कर देखे तो पाया कि उनके उद्धरण बिलकुल सही हैं। वे शब्द-शब्द ठीक बोलते हैं। एक तो हैरानी की बात थी कि पागल होकर वे इतने तर्कपूर्ण हैं। हालांकि हैरान होने की कोई जरूरत नहीं। पागल अक्सर तर्कपूर्ण होते हैं। असल में पागलों के अपने तर्क होते हैं। दे हैव देयर ओन लाजिक। लेकिन और दूसरी हैरानी की बात यह थी कि वे दोनों पागल इतनी सुव्यवस्थित बात तो करते थे, लेकिन एक-दूसरे की बातचीत में कोई संबंध नहीं होता था। जो एक बोल रहा था वह आकाश की बोलता था, दूसरा पाताल की बोलता था। उन दोनों के बीच कोई संबंध ही नहीं था। लेकिन यह भी स्वाभाविक है कि दो पागलों के बीच बातों में संबंध न हो, यह स्वाभाविक है।

तीसरी बात और भी हैरानी की थी कि जब एक बोलता था तब दूसरा चुप रहता था और जब दूसरा बोलना शुरू करता तो पहला चुप हो जाता। इससे जुंग बहुत हैरान हुआ कि जो पागल एक-दूसरे से असंबंधित बातें बोल रहे हैं, वे भी इतना खयाल क्यों रखते हैं कि दूसरा चुप हो तब हम बोलें!

उसने जाकर उनसे पूछा कि मैं और सब तो समझ गया, यह बात मैं नहीं समझ पा रहा कि जब एक बोलता है तो दूसरा चुप क्यों रहता है? वे दोनों हंसने लगे। उन्होंने कहा, आप भी बड़े पागल हैं। क्या आप समझते हैं हमें कनवरसेशन का नियम नहीं मालूम? हमें कनवरसेशन का नियम मालूम है। जब एक बोल रहा है तब दूसरे को चुप रहना चाहिए।

जुंग ने कहा, जब तुम्हें इतना पता है तो तुम्हें इतना पता नहीं जो एक बोल रहा है उसी संबंध में दूसरे को बोलना चाहिए। वे दोनों बहुत खिलखिला कर हंसने लगे। उन दोनों ने कहा कि खैर हम तो पागल हैं, लेकिन हमने दुनिया में दो गैर-पागल लोगों को भी ऐसी बात करते नहीं देखा जिसमें कोई संबंध हो।

पता नहीं यह जुंग को कहां तक बात जंची या नहीं जंची, लेकिन इस मुल्क में ऐसी घटना घट रही है। यहां दो आदमी की बातचीत में कोई संबंध नहीं रह गया। और तो दो पीढ़ियों के बीच में तो कोई संबंध नहीं रह गया है। और अगर दो ही पीढ़ियां होतीं तब भी ठीक था, कई पीढ़ियां हो गई हैं, क्योंकि एक पीढ़ी बीस साल में बदल जाती है। तो तीन-चार पीढ़ियां हैं। जो अस्सी साल का है वह कुछ और भाषा बोल रहा है, उसका बेटा जो साठ साल का है वह भी यह भाषा नहीं बोलता, उसका जो बेटा चालीस साल का है वह कुछ और बोल रहा है, उसका जो बेटा बीस साल का है वह कुछ और बोल रहा है। और जो बेटे दस-पंद्रह साल के हो रहे हैं वे कोई और भाषा बोल रहे हैं जिनका अस्सी साल के बाप से कहीं कोई संबंध नहीं रह गया। इनके बीच के सब ब्रिज गिर गए हैं।

मुल्क करीब-करीब एक मैड हाउस, एक पागलखाना मालूम पड़ता है। जब शिक्षक कुछ विद्यार्थियों से कहता है तो विद्यार्थियों की समझ के बाहर होता है कि कौन सी फिजूल बातें कही जा रही हैं। अब तो शिक्षक को भी शक होने लगा है कि वह शायद फिजूल की बातें कह रहा है। क्योंकि चारों तरफ की आंखें उसे दिखाई पड़ती हैं

जिनसे उसे पता लगता है। नेता जनता को समझा रहा है और पूरे वक्त जान रहा है कि कोई नहीं समझ रहा और जनता भी पूरे वक्त सुन रही है और समझ रही है कि नेता जो कह रहा है इसका इसकी जिंदगी से कोई संबंध नहीं है। बाप बेटे को समझा रहा है, बेटे समझ रहे हैं कि बेईमान है, पाखंडी है। बेटे बाप को आश्वासन दे रहे हैं, बाप जान रहा है यह सब धोखे की बात है, यह पीछे जाकर अभी आश्वासन तोड़ देगा।

जब किसी मुल्क की जिंदगी में ऐसी घटना घट जाए, जहां कि हमें किसी एक-दूसरे की भाषा पर भी भरोसा न रह जाए, तो उस मुल्क को हमें सेन नहीं मानना चाहिए, वह इनसेन हो गया, एक पागलपन पकड़ गया है। इस पागलपन को तोड़ना जरूरी है। अन्यथा हम बड़ी अजीब हालतों में रोज उलझते चले जाएंगे। समस्याएं जिनको दिखाई पड़ती हैं उन्हें समाधान नहीं दिखाई पड़ता, जिन्हें समाधान दिखाई पड़ता है उन्हें कोई समस्याएं दिखाई नहीं पड़तीं। बूढ़ों के पास समाधान है लेकिन उन्हें समस्याएं दिखाई नहीं पड़तीं। बच्चों के पास समस्याएं हैं लेकिन उन्हें समाधान दिखाई नहीं पड़ते। किन्हीं के पास पैर हैं, किन्हीं के पास आंखें हैं, दोनों के बीच कोई सेतु नहीं है।

इससे हम अनेक तलों पर मल्टी डायमेंशनल न मालूम कितने आयामों में कितनी दिशाओं में कितने सवाल खड़े कर लिए हैं। इन सारे सवालों को मिटाने के लिए एक तो सुझाव मैं देना चाहता हूं वह यह है और मैं समझता हूं कि वह युवकों को ही सुझाव शुरू करना पड़ेगा। क्योंकि बूढ़े कई अर्थों में रिजिड हो जाते हैं। स्वभावतः जब हम भी बूढ़े हो जाएंगे तो हम भी रिजिड हो जाएंगे। आज जो बच्चे हैं कल जब बूढ़े हो होंगे वे भी रिजिड हो जाएंगे। बुढ़ापा रिजिडिटी लाता है। असल में बुढ़ापे का मतलब ही रिजिडिटी है। हड्डियां ही सख्त नहीं होतीं दिमाग की नसें भी सख्त हो जाती हैं। हाथ-पैर ही कड़े नहीं हो जाते, विचार भी कड़े हो जाते हैं। शरीर ही मरने के करीब नहीं पहुंच जाता, भीतर का सारा व्यक्तित्व भी सख्त हो कर सूख जाता है और मरने के करीब पहुंच जाता है। इसलिए बूढ़े आदमी से बहुत ज्यादा आशा नहीं की जा सकती है।

अगर जिस डायलाग की मैं बात कर रहा हूं उसको अगर पैदा करना है तो हिंदुस्तान के युवकों को ही उसको फेस करना पड़ेगा। हिंदुस्तान के युवक को ही कोशिश करके हिंदुस्तान के बूढ़े से संबंध स्थापित करना पड़ेगा। और एक बात तो यह भी ठीक है कि बूढ़े को चिंता भी ज्यादा नहीं हो सकती, क्योंकि भविष्य बूढ़े का नहीं है, भविष्य जवानों का है। अगर चिंता भी होनी चाहिए तो जवानों को होनी चाहिए, क्योंकि कल उनको जीना होगा इस मुल्क में, कल इस मुल्क में बूढ़ों को नहीं जीना होगा। वे अपने कब्रिस्तानों में और अपने कब्रगाहों में चले गए होंगे। उनके लिए बहुत चिंता का कारण भी नहीं है।

चिंता का कारण होना चाहिए युवकों के लिए। लेकिन बड़े मजे की बात है कि युवक बिलकुल चिंतित मालूम नहीं पड़ते, बूढ़े बहुत चिंतित मालूम पड़ते हैं। युवक ऐसे निश्चिंत जी रहे हैं जैसे कि बूढ़ों का कोई भविष्य है, उनको परेशान होने की कोई जरूरत है। विद्यार्थी इस तरह जी रहे हैं जैसे कि शिक्षकों की सारी मुसीबत है।

नहीं, पिछली पीढ़ी की कोई भी मुसीबत नहीं है, पिछली पीढ़ी विदा हो जाएगी। आने वाली सारी मुसीबतें नई पीढ़ी पर होंगी। और अगर नक्सलाइट ढंग से सोचने वाले युवक सोचते हों कि हम बूढ़ों से लड़ रहे हैं, तो वे गलती में हैं। वे अपने ही भविष्य को नष्ट करने के लिए लड़ रहे हैं। क्योंकि बूढ़ों से लड़ने का क्या मतलब है?

वे तो मरने के करीब हैं वे विदा हो जाएंगे। उनकी जिंदगी गई, उनकी समाज की व्यवस्था भी गई। जिनको जीना होगा इस मुल्क में उनके लिए सवाल उठेगा।

लेकिन कुछ ऐसी भूल हो रही है कि ऐसा लगता है कि हम पिछली पीढ़ी से लड़ कर कुछ बड़ी कामयाबी हासिल कर रहे हैं। लड़के सोचते हैं कि शिक्षकों से लड़ कर कामयाबी हासिल कर रहे हैं। उन्हें पता नहीं कि शिक्षकों से लड़ कर कामयाबी हासिल करने का कोई मतलब नहीं है।

असल में हम जो भी लड़ रहे हैं, उपद्रव कर रहे हैं, उसमें हम अपने ही पैरों को पंगु कर रहे हैं। कल जिसको इसको इस देश में जीना होगा उसी के लिए यह सवाल है। लेकिन शायद जवान को इतनी समझ नहीं होती कि इतनी दूर तक देख सके। शायद वह बहुत दूर तक नहीं देख पाता। भविष्य उसका है, लेकिन भविष्य में देखने की क्षमता जवान के पास नहीं होती। असल में जवान वर्तमान में जीता है। आज काफी मालूम पड़ता है। लेकिन अगर आज हम गलत जीएं तो कल हमारा गलत हो जाएगा। इसलिए मैं कहना चाहता हूं कि यह जो सवाल है, यह जो समस्या है कि हम दोनों पीढ़ियों के बीच भारत के अतीत और भारत के भविष्य के बीच अगर कोई सेतु, कोई ब्रिज बनाना चाहते हैं, तो यह काम भारत के जवानों को अपने हाथों में उठाना पड़ेगा। यह सवाल उन्हीं का है। और हिंदुस्तान की पुरानी पीढ़ियों को साफ जवानों से कह देना चाहिए कि सवाल तुम्हारे हैं, सवाल हमारे नहीं हैं। और अगर तुम आत्महत्या करने पर उतारू हो तो तुम आत्महत्या कर लो, हमें चिंता नहीं है। क्योंकि हम तो मर जाएंगे।

हिंदुस्तान के जवान को यह बात साफ हो जानी चाहिए कि वह जो भी कर रहा है उसका अच्छा या बुरा परिणाम उसके ही ऊपर होने वाला है। यह बहुत साफ बात मालूम नहीं दिखाई पड़ती। ऐसा मालूम पड़ता है कि सब सवाल बूढ़ों के हैं। परेशानी बूढ़ों को हो रही है और जवान उनको परेशान करने में आनंदित मालूम हो रहा है। उसका आनंद बहुत महंगा पड़ेगा। और उसका आनंद बहुत अज्ञानपूर्ण है। उसके आनंद में बहुत प्रज्ञा नहीं है, उसके आनंद में बहुत विज़डम नहीं है। वह अपने हाथ से अपने आगे के रास्ते तोड़ रहा है और खराब कर रहा है। और ध्यान रहे कि जो वह अपने बूढ़ों के साथ कर रहा है वह अपने बच्चों से अपेक्षा कर ले कि उससे भी ज्यादा उनके साथ किया जाएगा। क्योंकि बच्चे वही सीखते हैं जो किया जाता है।

मैं एक घर में मेहमान था, और मैं हैरान हुआ उस घर में एक घटना को देख कर। उस घर में तीन पीढ़ियां थीं, जैसे कि आमतौर में परिवारों में होती हैं। मैं दूसरे नंबर की पीढ़ी का मेहमान था। उस पीढ़ी के बेटे भी थे, उस पीढ़ी के बाप भी थे। उस पीढ़ी के सज्जन अपने बाप के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करते थे जिसका कोई हिसाब नहीं। तीन दिन देख कर मैं तो हैरान हो गया। मैं तो अपरिचित मेहमान था, लेकिन तीन दिन देख कर मैं तो हैरान हो गया। लेकिन वे सज्जन अपने बेटे से बहुत अच्छे व्यवहार की अपेक्षा भी करते थे।

मैंने एक दिन रात चलते वक्त उनसे कहा कि आप बड़े गलत खयालों में पड़े हैं। आपका बेटा भलीभांति देख रहा है कि आप अपने बाप के साथ क्या कर रहे हैं। तो आप यह भूल कर भी मत सोचें कि आपका बेटा आपसे कमजोर निकलेगा। आपका बेटा आपसे भी मजबूत निकलेगा। और जो आप अपने बाप के साथ कर रहे हैं वह बेटा आपको ठीक से उत्तर दे जाएगा। आप बड़ी गलत अपेक्षा कर रहे हैं कि आप अपने बाप के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं और अपने बेटे से सदव्यवहार की अपेक्षा कर रहे हैं।

अधिक लोग दुनिया में यह भूल करते हैं। चाहे उनके लोगों की कोई भी व्यवस्था हो। हम सब अपने से पिछली पीढ़ी के साथ दुर्व्यवहार करते हैं और अपने से आने वाली पीढ़ी के साथ अच्छे व्यवहार की आशा रखते हैं। यह असंभावना है।

असल में अगली पीढ़ी हमारे व्यवहार को देख कर ही सीखती है कि हम क्या कर रहे हैं। अगर हिंदुस्तान के आज के जवानों को अपनी पुरानी पीढ़ी से सेतु बनाने से असमर्थता है, तो वे ध्यान रखें, यह खाई उनके बच्चों और उनके बीच और भी बड़ी हो जाएगी। अभी तो हम भाषा ही नहीं समझ रहे हैं, फिर हम बोलचाल भी नहीं कर सकेंगे। अभी तो हम बोलते हैं कम से कम, भाषा समझ में नहीं आती। फिर हम बोलना भी बंद कर देंगे। क्योंकि बोलना भी फिजूल है, बेकार है। बोलने का कोई मतलब न रह जाएगा।

हिंदुस्तान में दोनों पीढ़ियों से मैं संबंधित हूं और बहुत हैरानी से देखता हूं कि वे दोनों एक-दूसरे को समझने में असमर्थ मालूम पड़ते हैं। कौन सी कठिनाई हैं? पहली कठिनाइयां तो यह है कि जवान आदमी कभी भी यह नहीं समझ पाता कि बूढ़ा रिजिड हो जाता है। यह स्वभाव है। वह ठहर जाता है, जम जाता है, फ्रोजन हो जाता है। उसने जिंदगी में जो भी जाना है वह धीरे-धीरे ठहर कर सख्त हो जाता है। और बूढ़े को बदलना बहुत असंभव है। असल में बूढ़े का मतलब ही यह है कि जो बदलने की सीमा के पार चला गया, जिसको अब नहीं बदला जा सकता। इसलिए बूढ़े को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई भी मार्ग नहीं होता। सुसंस्कृत कौम उसे कहा जाता है, जो इस सत्य को स्वीकार करके अपने बूढ़ों के प्रति उनकी इस असमर्थता को जान कर भी सदभाव रख पाती है वह सुसंस्कृत कौम है। सुसंस्कृति का एक ही अर्थ है कि हम स्थितियों को देख कर उनकी फैक्टिसिटी को, उनके तथ्यों को समझ कर वैसा जीने की कोशिश करें।

लेकिन सारे बच्चे अपने मां-बाप के प्रति क्रोध से भरे हुए हैं। एंग्री जेनरेशन, हम कह रहे हैं, क्रोध से भरी हुई पीढ़ी है। सब बच्चे अपने मां-बाप के प्रति क्रोध से भरे हुए हैं। विद्यार्थी शिक्षक के प्रति क्रोध से भरे हुए हैं। छोटे भाई बड़े भाई के प्रति क्रोध से भरे हुए हैं। यह क्रोध बहुत असंगत है, अमानवीय है, इनह्यूमन है, असंस्कृत है, अनकल्चर्ड है। और यह क्रोध जवान आदमी के योग्य, शोभा के योग्य नहीं है। यह बताता है कि जवान आदमी नहीं समझ पा रहा कि बुढ़ापे की अपनी परेशानियां हैं, अपनी मजबूरियां हैं। अगर जवान को यह साफ दिखाई पड़ जाए तो बुढ़ापा दया योग्य मालूम पड़ेगा। और यह भी उसे खयाल रखना चाहिए कि वह भी रोज बूढ़ा होता जा रहा है। और कल इसी दया की अपेक्षा उसे दूसरी पीढ़ी से हो जाएगी।

दूसरी बात खयाल रखनी जरूरी है कि जवान को ही हाथ बढ़ाना पड़ेगा। अभी उसके हाथ बढ़ने योग्य हैं, बड़े हो सकते हैं, अभी ठहर नहीं गए। और जवान को ही समझदारी दिखानी पड़ेगी, क्योंकि उसकी समझ लोचपूर्ण है, फ्लेक्जीबल है, अभी वह बदल सकती है और नई हो सकती है। और ध्यान रहे कि बूढ़े ने जो भी जाना है, बूढ़े ने जो भी जीया है, अतीत की पीढ़ी ने जो भी अनुभव किया है, वह अगर जवान उसे समझ ले तो निश्चित ही उसे उसके जिंदगी में रिचनेस और समृद्धि में बढ़ावा मिलेगा। अगर वह उसे नासमझी से तोड़ दे तो हो सकता है उसकी जिंदगी की जड़ें कट जाएं, वह अपरूटेड हो जाए और भविष्य में फूल आने असंभव हो जाएं।

इसलिए पहली बात तो मैं यह कहना जानना चाहता हूं कि हिंदुस्तान के जवान को हिंदुस्तान की समस्याओं के संबंध में अपने ताकत और अपने ज्ञान का उपयोग करना है, लेकिन पुरानी पीढ़ी की समझ, प्रज्ञा और विज़डम

का सहयोग अत्यंत आवश्यक है। वह सहयोग टूट जाए तो हमारी शक्ति आत्मघातक हो जाएगी। अगर समझ न हो तो शक्ति अक्सर स्युसाइडल हो जाती है। उसे फिर अपने को ही विनाश करने में काम में ले आते हैं। ऐसा हो रहा है, ऐसा रोज फैलता जा रहा है और चीजें रोज विकृत होती जा रही हैं।

दूसरी बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूं वह मैं यह कहना चाहता हूं कि हिंदुस्तान के सवाल हमारे हजारों साल के पैदा किए हुए सवाल हैं। उन्हें हम एक दिन में नहीं तोड़ सकते हैं। कोई उपाय नहीं है उन्हें एक दिन में तोड़ देने का। और उन्हें एक दिन में तोड़ने की कोशिश में सिर्फ यही हो सकता है कि हम और सवाल पैदा कर लें।

हिंदुस्तान की कठिनाइयां एक दिन की नहीं हैं, पांच हजार साल का पूरा इतिहास हिंदुस्तान की कठिनाइयों का इतिहास है। हिंदुस्तान की जड़ें पांच हजार साल से पीड़ित, रुग्ण और विकृत हो गई हैं। अगर कोई आदमी चाहे कि इन्हें एक दिन में बदलने की जल्दबाजी दिखाए तो वह जल्दबाज आदमी जड़ों को सुधार पाए इसकी संभावना कम है, जड़ों को मिटा डाले, तोड़ डाले इसकी संभावना ज्यादा है।

हिंदुस्तान की आने वाली युवा पीढ़ी को यह भी समझ लेना चाहिए कि सवाल जितने पुराने होते हैं उतने धीरज से उनके साथ मुकाबला करना पड़ता है। लेकिन क्रांतिकारी कभी भी धैर्यवान नहीं होता। क्रांतिकारी अधैर्यवान होता है। वह बहुत शीघ्रता से कुछ करना चाहता है इसकी बिना फिक्र किए कि कुछ चीजें शीघ्रता से की ही नहीं जा सकतीं।

एक बच्चा मां के पेट में नौ महीने लेता है तब मैच्योर होता है, तब वह जन्म लेता है। जल्दी की और अगर पांच महीने में गर्भपात कर लिया, तो बच्चा तो मरेगा ही, मां भी मर सकती है। हिंदुस्तान में मुझे ऐसा लगता है कि हमारी समस्याएं पुरानी हैं और हमारे हल करने की जल्दी बहुत अधैर्यपूर्ण है। हम प्रत्येक चीज को आज हल करना चाहते हैं, जो कि नहीं हल हो सकती। अगर हिंदुस्तान को ठीक से प्रौढ़ता पानी हो, और बुद्धिमत्ता पानी हो तो अपनी समस्याओं की गहराई...और यह भी समझ लेनी चाहिए कि वह वक्त लंबा लेंगी, वह जल्दी नहीं तोड़ी जा सकती हैं।

न तो गरीबी आज मिटाई जा सकती है। चाहे हम जमीन छीन कर बांट दें, और चाहे हम सारी फैक्ट्रीस पर कब्जा कर लें, और चाहे हम सारे मुल्क की संपत्ति वितरित कर दें। गरीबी आज नहीं मिट सकती। क्योंकि गरीबी के पीछे पांच हजार साल की लंबी कहानी है। यह गरीबी पांच हजार साल की गरीबी है। इस गरीबी को जो आज मिटाने की कोशिश करेगा, मैं मानता हूं वह मुल्क को और भी गरीब हालत में छोड़ जाएगा। क्योंकि इस गरीबी को जल्दी में मिटाने की कोशिश उस इंतजाम को भी तोड़ सकती है जो इंतजाम इस मुल्क को थोड़ी-बहुत संपत्ति दे रहा है।

लेकिन हम बहुत जल्दी में भरे हैं। हमारा जवान चाहता है, सब आज हल हो जाए, हर आदमी को आज नौकरी मिल जाए। यह नहीं हो सकता। नेता मुल्क के बेईमान हैं वे झूठे आश्वासन दिए चले जाते हैं। वे आश्वासन दिए चले जाते हैं कि नहीं, यह हो जाएगा, यह जल्दी हो जाएगा। यह जल्दी हो सकेगा कि सबको नौकरी मिल जाए।

यह नहीं हो सकेगा। इस मुल्क में सबको नौकरी नहीं मिल सकती। नहीं मिल सकती इसलिए कि इस मुल्क के पास उतना काम नहीं है जितने लोग हैं; नहीं मिल सकती इसलिए कि इस मुल्क के पास जितने लोगों को हमने

शिक्षित कर लिया है उतना भी काम नहीं है और जितने लोगों को हम शिक्षित कर रहे हैं उनके लिए भविष्य में कोई काम नहीं होगा। लेकिन यह मजबूरी है और यह हम सबकी मजबूरी है। अगर इसको हमने जल्दबाजी की तो शायद जितना काम मिल सकता है वह भी न मिल पाए। और अगर हम धैर्य से प्रयोग करें तो शायद हम मार्ग नये कामों की दिशाओं को खोजने में समर्थ हो सकते हैं।

असल में हिंदुस्तान के जवान को पुराने किस्म के काम मांगने की बात छोड़ देनी चाहिए, अगर हिंदुस्तान की समस्याओं को हल करना हो। हिंदुस्तान के जवान को अपनी जवानी का बड़े से बड़ा प्रयोग हिंदुस्तान में नये काम पैदा करने में दिखाना चाहिए। उसे पुराने ढंग के काम मांगना बंद कर देना चाहिए। जैसे कि हम एक कवि को ओरिजिनल कहते हैं अगर वह नई कविता लिखे। अगर वह कालिदास जैसी कविता लिखे तो उसको कोई कवि नहीं मानता। और अगर वह शेक्सपियर जैसी कविता कितनी ही अच्छी लिख ले तब भी हम कहेंगे चोर है। कोई मौलिक नहीं, कोई ओरिजिनल नहीं। जैसे कविता भी नई करता है आदमी, जैसे लेख भी नया लिखता है, विज्ञान में नई खोज करता है, वैसे हिंदुस्तान के जवान को नये काम की खोज पर निकलना पड़ेगा।

हजार तरह के नये काम खोजे जा सकते हैं। लेकिन हिंदुस्तान के सब जवान पुराने दरवाजों पर दस्तक दे रहे हैं। उन पुराने दरवाजों से काम चुक गए हैं। सच तो यह है कि पुराने दफ्तरों में जरूरत से ज्यादा आदमी हैं। और ध्यान रहे, जहां दो आदमी काम कर सकते हैं अगर वहां छह आदमी हो गए, तो जो काम दो आदमी करते थे वे छह आदमी और बिगाड़ देंगे, वे छह नहीं कर पाएंगे।

हिंदुस्तान में मजबूरी यह है कि हर जगह ज्यादा आदमी हैं। और जहां भी जरूरत से ज्यादा आदमी होते हैं वहां इफिशिएंसी कम हो जाती है, वहां कुशलता कम हो जाती है। अंग्रेज जिन दफ्तरों में एक क्लर्क से काम चला रहे थे वहां आज दस क्लर्क हैं। और अंग्रेज का एक क्लर्क जितना काम कर रहा था उतने दस क्लर्क नहीं कर रहे हैं। असल में दस क्लर्क कर ही नहीं सकते उतना काम। एक जितना काम कर सकता है वह दस नहीं कर सकते। अगर एक के लायक ही काम है तो दस सिर्फ उसको बिगाड़ने वाले सिद्ध होंगे और इस तरह काम को फैलाएंगे कि वह दस के योग्य मालूम होने लगेगा। और काम इस भांति फैलता हुआ दिखाई पड़ेगा, लेकिन होता हुआ दिखाई नहीं पड़ेगा।

हिंदुस्तान की पूरी नौकरशाही काम को फैलाने का काम कर रही है, काम को हल करने का काम नहीं कर रही। क्योंकि काम जितना फैलता है उतनी जगह बनती है। लेकिन यह जगह बोगस, इनसे कोई मुल्क को उत्पादन और मुल्क को नई दिशाएं नहीं मिलतीं। लेकिन क्या वजह है कि हिंदुस्तान में हम नये काम न खोज सकें? कितने नये काम अधूरे पड़े हैं जो हमें पुकारते हैं। लेकिन जैसा मैंने कहा, हमारी पुरानी आदतें दिक्कत देती हैं।

अब हिंदुस्तान में कितने इंजीनियर हैं जो बेकार हैं। लेकिन कोई इंजीनियर इसकी फिक्र नहीं करता कि जमीन के नीचे मकान बनाने के लिए नई योजनाएं दें। कोई इंजीनियर इस बात की फिक्र नहीं करता कि समुद्र पर मकान बनाएं। अब यह जान कर आपको हैरानी होगी कि अभी एक अमेरिकन इंजीनियर सुलर ने समुद्र पर मकान बनाने का बहुत सस्ता सुझाव दिया है। योजना भी दी है, मकान का माडल भी दिया है।

सीमेंट-कांक्रीट के मकान, जिनमें एक मकान में बीस हजार आदमी रह सकें, समुद्र पर तैर सकते हैं, डूबेंगे नहीं, क्योंकि वे चारों तरफ से बंद होंगे। उनके भीतर हवा का जितना वाल्यूम होगा वही उनको समुद्र के ऊपर

तैराने का कारण बन जाएगा। वे जमीन पर बनने वाले मकानों से सस्ते होंगे और जमीन को घेरेंगे नहीं। और हिंदुस्तान को तो जमीन की जरूरत है।

हिंदुस्तान पर जमीन जितनी घिर जाएगी उतना भोजन मुश्किल में पड़ जाएगा। हिंदुस्तान के इंजीनियर को फिक्र करनी चाहिए कि पानी पर मकान बनाए। हवा में भी मकान बनाए जा सकते हैं। एक दूसरे ब्रिटिश इंजीनियर ने हवा में मकान बनाने का माडल दिया। लेकिन हिंदुस्तान के बच्चे कब इस दिशाओं में सोचेंगे? सीमेंट-कांक्रीट का मकान हवा में भी हवा के वाल्यूम के आधार पर तैर सकता है, उड़ सकता है। और वह जमीन पर बनाए हुए मकान से सस्ता मकान सिद्ध होगा। लेकिन हिंदुस्तान का इंजीनियर जमीन पर ही मकान बनाता चला जाएगा।

मकान भी वह उस ढंग से बना रहा है जिस ढंग से पांच हजार साल पहले हमारे बाप-दादा ही बनाते थे। अब किसी को इ□ट बनाने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। इ□ट तब बनती थी जब हम पूरी दीवाल सीधी नहीं बना सकते थे। अब हम पहले इ□ट बनाएंगे, फिर इ□ट को हम जोड़ेंगे, फिर आखिर दीवाल बनाएंगे। अब तो दीवाल सीधी बन सकती है। अब इतनी मोटी दीवालों की भी जरूरत नहीं है। अब हम बहुत और ढंग से जिंदगी को जीने की व्यवस्था करने की खोज कर सकते हैं।

अब जो इंजीनियर जमीन पर छोड़ कर हवा में या पानी में मकान बनाएगा उसके लिए काम नहीं होगा? उसके लिए खुद तो काम होगा, वह अपने जैसे हजारों इंजीनियरों के लिए नये काम की दिशा खोल देगा। लेकिन नहीं, वह इंजीनियर अपनी दरख्वास्त लिए खड़ा हुआ है पी.डब्लयु.डी. के दफ्तर के सामने कि हमको नौकरी चाहिए।

नहीं, हिंदुस्तान का जवान अपने को जवान सिद्ध नहीं कर रहा। जवानी का पहला लक्षण यह है कि वह मौलिक खोजें करें। उसे जानना चाहिए कि उसके माता-पिताओं ने उसे जहां पहुंचा दिया है वहां उनकी सामर्थ्य चुक गई है। सैचुरेसन आ गया है, चीजें चुक गई हैं, उसके आगे अब चीजें नहीं जा सकती हैं। हमेशा जिंदगी में जवानों को नई चीजें खोजनी पड़ती हैं।

हिंदुस्तान के सामने बड़ी से बड़ी समस्या यह है कि हम नई दिशाएं कैसे तोड़ें?

नई दिशाएं तोड़ी जा सकती हैं। कोई कारण नहीं है। जमीन के नीचे मकान बन सकते हैं। और जब से एयरकंडीशनिंग की सुविधा हो गई, तब से हम जमीन के नीचे बहुत मकान फैला सकते हैं।

असल में हिंदुस्तान में अब कोई फैक्ट्री जमीन के ऊपर नहीं बननी चाहिए। क्योंकि उतनी जमीन छिन जाएगी पैदावार से। अब तो हमें सारी फैक्ट्रियां जमीन के नीचे डाल देनी चाहिए। हिंदुस्तान में कोई रेल का मार्ग अब जमीन के ऊपर नहीं होना चाहिए। क्योंकि उतनी जमीन हम नहीं खो सकते, वह जमीन हमें पैदावार के लिए चाहिए।

लेकिन नहीं, हम जमीन खोए चले जा रहे हैं। जमीन के नीचे हमारी कोई दिशा नहीं कि हम जमीन के नीचे प्रवेश कर जाएं। हवा में उठ जाएं, समुद्र पर चले जाएं। अब हिंदुस्तान में कितने लड़के केमेस्ट्री पढ़ रहे हैं, कितने लड़के केमेस्ट्री में पी.एच.डी. कर रहे हैं। लेकिन बड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है कि हिंदुस्तान की केमेस्ट्री का पी.एच.डी. भी आखिर एक कालेज में नौकरी के लिए खड़ा हो जाता है।

हिंदुस्तान को तो बहुत बड़े रसायनज्ञों की जरूरत है, जो हिंदुस्तान को ऐसा भोजन दे सकें जो जमीन में पैदा नहीं होता। सिंथेटिक फूड की जरूरत है। रोज संख्या बढ़ती चली जाएगी। अब आपको पुराने भोजन करने की आदतें छोड़नी पड़ेंगी कि आप रोज एक किलो भोजन पेट में डालें। यह पागलपन अब आगे नहीं चल सकता। अब आपको एक गोली पर राजी होना पड़ेगा। लेकिन मैं मानता हूं कि एक गोली स्वास्थ्यपूर्ण हो सकती है एक किलो भोजन की बजाय। क्योंकि एक किलो भोजन करना बहुत ही अनुत्पादक पुराना ढंग है। एक किलो भोजन करके पचाते तो एक गोली के लायक ही हैं। बाकी फिर शरीर को बाहर भी फेंकना पड़ता है। वह फिजूल की मेहनत है। उस मेहनत से मुल्क को बचाने की जरूरत है। लेकिन हिंदुस्तान के लड़के उस दिशा में कोई फिक्र नहीं करेंगे। वह पुराना ढंग जारी रहेगा।

हिंदुस्तान का लड़का भी पुराने ढंग से ही खाने की मांग करता रहेगा। यह अब नहीं चल सकता है। हिंदुस्तान के लड़के को नये ढंग के खाने खोजने चाहिए। समुद्र के पानी को हम खाना बना सकते हैं। सूरज की किरणों को भी खाना बना सकते हैं। हवा से भी खाना खींचा जा सकता है। लेकिन हिंदुस्तान के लड़के जब इन दिशाओं में मेहनत करेंगे।

हम हमेशा जमीन से खाना नहीं पाते थे। आज से पांच हजार साल पहले आदमी जंगल में जानवर को मारता था और खाना पाता था। एक दिन जानवर कम हो गए और लोग बढ़ गए, तब उन लोगों में से कुछ जवानों ने जमीन के फल खाने शुरू किए। लेकिन फिर फल भी कम पड़ गए, तब फिर फलों को बोना शुरू किया। अब बोना भी बेकार हो गया, अब जमीन ही कम पड़ गई। अब हमें नई दिशा में खोज करनी चाहिए। अब हमें आकाश में, पाताल में, पानी में, हवा में, सूरज की किरणों में भोजन की फिक्र करनी चाहिए। वह सारी फिक्र की जा सकती है।

लेकिन हिंदुस्तान के लड़के पुराने ढांचे में ही अपने दरवाजे खटखटाए चले जाते हैं। अगर हिंदुस्तान में कोई भी लड़का यह कहता है कि मैं अनएंप्लाइड हूं और एंप्लाइमेंट नहीं खोज पाता है, तो हमें मानना चाहिए कि उसकी शिक्षा ठीक से नहीं हुई। क्योंकि हिंदुस्तान जैसे मुल्क में जिसकी इतनी आवश्यकताएं हैं, अगर एंप्लाइमेंट न खोजा जा सके तो और एंप्लाइमेंट कहां खोजा जा सकेगा?

जहां इतनी आवश्यकताएं हैं जो पूरी नहीं हो रही, वहां तो हम हजार दिशाएं खोज सकते हैं। लेकिन हमारे मन में खोज का भाव नहीं है। हम जिसे वैज्ञानिक कहते हैं अपने मुल्क में, वह भी ज्यादा से ज्यादा विज्ञान का विद्यार्थी होता है, वैज्ञानिक नहीं होता। वैज्ञानिक होने का मतलब ही यह है कि हम जिंदगी को नये रास्ते दें, हम जिंदगी को नई दिशाएं दें, हम जिंदगी को नये पहलू दिखाएं, हम जिंदगी को समृद्धि के नये उपाय सुझाएं। लेकिन हिंदुस्तान में बच्चे यह नहीं करेंगे। बच्चे क्या कर रहे हैं? वे बसें तोड़ रहे हैं, यूनिवर्सिटीज के कांच फोड़ रहे हैं, वे शिक्षकों पर पत्थर फेंक रहे हैं, वे हड़ताल कर रहे हैं, वे घेराव कर रहे हैं। ये सब आप करते रहें। ये सब अनुत्पादक काम ही नहीं हैं, विध्वंसक काम हैं, इससे मुल्क की जिंदगी अच्छी नहीं हो सकेगी। और मुल्क का जो पुराना आदमी है वह क्रोध से भर गया है इन हरकतों को देख कर। और इन दोनों के बीच कोई संबंध नहीं रह गया।

मैं हिंदुस्तान के जवान को कहना चाहता हूं कि चुनौती है तुम्हारे लिए। और ऐसी चुनौती बहुत मुश्किल से आती है। और जिनकी जिंदगी में आती है उनको सौभाग्यशाली मानना चाहिए अपने को कि परमात्मा ने उन्हें मौका दिया है जहां वे नई जमीन तोड़ें। लेकिन शायद हम बैलगाड़ी में बैठे रहने के आदी हैं। हमने कहीं भी नई जमीन नहीं तोड़ी बहुत सैकड़ों वर्षों से, इसलिए हमारी आदत टूट गई है नई जमीन तोड़ने की।

लेकिन सारी दुनिया नई जमीन तोड़ रही है। सारी दुनिया में बहुत कुछ नया हो रहा है, जो कभी नहीं हुआ था। ऐसे फल पैदा किए गए हैं जो कभी पैदा नहीं किए गए थे। ऐसा गेहूं पैदा कर लिया गया है जो कभी पैदा नहीं किया गया था। तो हमारे बच्चे क्या करेंगे? वे एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी में पढ़ कर सिर्फ परीक्षाएं देते रहेंगे और परीक्षाएं देकर ज्यादा से ज्यादा एग्रीकल्चर दफ्तर में क्लर्क बन कर बैठ जाएंगे। क्या करेंगे?

एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी अगर ऐसे बच्चों को नहीं निकाल पाती है जो मुल्क को नये भोजन दे सकें, अगर ऐसे बच्चे नहीं निकाल पाती है जो गेहूं के ऐसे वृक्ष दे सकें जो हर साल फसल दे और हर साल उनको काटना न पड़े और साल में दो बार फसल दे, तो हम बहुत...

इस बड़ी दुनिया में जहां आदमी चांद पर उतर गया है, अगर हम आदमी को जमीन पर पेट भरने के योग्य नहीं बना सकते, तो हमारा सारा ज्ञान और हमारी सारी खोजें नासमझी से हैं और बेकार हैं। मैं नहीं मान सकता हूं कि आदमी को भूखे मरने की अब कोई जरूरत है, और मैं नहीं मान सकता हूं कि आदमी को नंगे रहने की कोई जरूरत है, और मैं नहीं मान सकता हूं कि कोई भी आदमी अब बिना मकान के रहे। लेकिन हमारी जवानी कमजोर है, और हमारी जवानी साइंटिफिक नहीं है, और हमारे जवान के पास नई दिशाओं का खयाल नहीं है।

मैं तो चाहूंगा, प्रत्येक यूनिवर्सिटी को, सच में ही अगर वह यूनिवर्सिटी है, तो उसे इस बात की दिशा में ही सर्वाधिक चेष्टा में लग जानी चाहिए कि उसके बच्चे पुराने किस्म के काम न मांगें।

जिस यूनिवर्सिटी के बच्चे हिंदुस्तान में वापस लौट कर गांव में, शहर में पुराना काम मांगते हैं, वह यूनिवर्सिटी ने अपना काम पूरा नहीं किया, वह यूनिवर्सिटी बेकार है। वहां सिर्फ हम थोथा काम कर रहे हैं। विश्वविद्यालय से निकला हुआ लड़का भी वही काम मांगे जो पुराने लोग मांग रहे थे, जो इस विश्वविद्यालय से कभी नहीं निकले थे, तो इस विश्वविद्यालय ने किया क्या? छह साल हमने क्या किया? लेकिन नहीं, हम यहां दूसरे तरह के कामों में लगे हैं।

विद्यार्थी पढ़ने में उत्सुक नहीं हैं, शिक्षक पढ़ाने में उत्सुक नहीं हैं। शिक्षक अपनी सिनियारिटी में उत्सुक है, वह अपनी पोलिटिक्स में उत्सुक है, वह अपनी यात्रा में लगा हुआ है। कई मौके-बे-मौके थोड़ी-बहुत फुरसत मिल जाती है तो वह लड़कों की तरफ देख लेता है। अन्यथा उसकी आंखें आगे लगी हैं कि कौन वाइसचांसलर हो गया है, कौन डीन हो गया है। वह अपनी यात्रा पर लगा हुआ है।

विद्यार्थी अपनी यात्रा पर लगे हुए हैं कि वे कितना तोड़ रहे हैं, कितना मिटा रहे हैं। वे किस तरह बिना पढ़े पास हो जाएं, वे किस तरह चोरी से पास हो जाएं, वे किस तरह, उन्हें कोई मेहनत न करनी पड़े और सर्टिफिकेट मिल जाएं। इसके लिए हड़ताल कर रहे हैं, इसके लिए उपद्रव कर रहे हैं। यह मुल्क मर जाएगा। अगर यही हाल है तो यह मुल्क बच नहीं सकता। क्योंकि ध्यान रहे, मुल्क के बचने की सारी संभावनाएं उसकी इंटेलिजेंसिआ पर निर्भर होती हैं।

इस मुल्क को हिंदुस्तान के ग्रामीण से कोई आशा नहीं है। हालांकि ग्रामीण ही पेट भर रहा है। इस मुल्क को हिंदुस्तान के अशिक्षित से कोई आशा बांधनी उचित नहीं है, क्योंकि वह बेचारा बहुत पुरानी दुनिया में जीया है, नई दुनिया की खोज उसे मुश्किल है। लेकिन हमारे बच्चे तो सारी नई दुनिया में जी रहे हैं। वे क्या नया कर रहे हैं? वे कुछ नया करते हैं थोड़ा-बहुत। वे कमीज का ढंग बदल लेते हैं, वे पतलून की थोड़ी सी चौड़ाई कम कर लेते हैं, वे जूते पर ज्यादा पालिश करने लगते हैं। इन सब बातों से जवान आदमी का कोई भी पता नहीं चलता। इन सब बातों से कोई पता नहीं चलता कि आप जिंदगी को नया करने की कोशिश में लगे हैं। न तो नये कपड़े बदल लेने से, न जूते की रौनक बदल लेने से, न थोड़ा ढंग से बोलना सीख लेने से कोई आदमी जवान होता है।

जवानी का एक लक्षण है कि जहां पुरानी पीढ़ी ने छोड़ा था दुनिया को, हम उसे आगे ले जाएं। जहां पुरानी समस्याएं थीं वे वहीं न रह जाएं, हम उन्हें हल करें। लेकिन हम समस्याओं को हल करने में उत्सुक नहीं हैं। पूरे मुल्क का जवान यह कहता है, हमारी समस्याएं हल करो। कौन हल करे? कौन जिम्मेवार है? सारे हिंदुस्तान के लड़के यह कहते हैं हमारी समस्याएं हल करो। जैसे कि पुरानी पीढ़ी का कोई जिम्मा है सारी समस्याएं हल करने का।

पुरानी पीढ़ी आपकी समस्याएं हल नहीं करेगी। नहीं कर सकती है। अगर बोले और आश्वासन दे तो झूठे आश्वासन है। आपकी समस्याएं आपको हल करनी पड़ेंगी। जिम्मेवारी आपकी है। यह शिकायत किसी और से नहीं हो सकती। अगर नहीं हल कर पाएंगे तो हम भूखे मरेंगे, परेशान होंगे, दुखी होंगे। और अगर हल करेंगे तो हम सुखी हो सकेंगे, हम मुल्क को समृद्ध कर सकेंगे, संपन्न कर सकेंगे, शक्ति दे सकेंगे। सारी दुनिया संपन्न होती जा रही है, हम क्यों गरीब होते चले जा रहे हैं?

आज अमेरिका, या स्वीडन, या स्विटजरलैंड, या नार्वे में सवाल यह है कि उनके पास इतनी संपत्ति है उसका वे क्या करें? और हमारे सामने सवाल यह है कि हमारे पास इतने आदमी हैं इनके लिए हम कहां से संपत्ति दें? आखिर उनके पास भी हमारे जैसे ही मन हैं, बुद्धियां हैं। हमारे पास कोई कम बुद्धि नहीं है किसी से। लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है हमारी बुद्धि लड़ने-झगड़ने में व्यय हो जाती है। हमारी सारी बुद्धि लड़ने-झगड़ने में व्यय हो जाती है। हम इतने लोग यहां बैठे हुए हैं, अगर हम सब आपस में लड़ने लगें, तो इस हाल की सारी ताकत नष्ट हो जाएगी। लेकिन अगर हम सारे संयुक्त होकर किसी सृजन में लग जाएं तो हम शायद कुछ बना पाएंगे। और जिन चीजों के लिए हम लड़ रहे थे, वे सहयोग से निर्मित हो सकती हैं। और जिन चीजों के लिए हम लड़ रहे थे अगर लड़ते ही रहे तो वे कभी भी निर्मित न होंगी और जो निर्मित है वह भी टूट जाएगा।

इस समय हिंदुस्तान को सहयोग की एक फिलासफी चाहिए, एक कोआपरेशन की फिलासफी चाहिए। लेकिन हिंदुस्तान में जितनी फिलासफीज आज प्रचलित हैं—चाहे कम्युनिज्म, चाहे सोशलिज्म और चाहे जनसंघ और चाहे कांग्रेस और चाहे कोई भी—वे सभी कांफ्लिक्ट की फिलासफी हैं। वे सब यह सिखा रही हैं कि लड़ो! वे सब यह सिखा रही हैं कि दूसरा जिम्मेवार है। हिंदुस्तान में आज कोई भी इतनी कहने की हिम्मत नहीं जुटाता कि तुम जिम्मेदार हो, दूसरा जिम्मेदार नहीं है। और कोई भी यह कहने की हिम्मत नहीं जुटाता कि लड़ने से कुछ हल न होगा।

इस समय जरूरत है कि हिंदुस्तान की सारी शक्तियां पुल्ड हो जाएं। हिंदुस्तान की सारी शक्तियां इकट्ठे होकर अगर श्रम करें, तो कोई कारण नहीं कि बीस साल में इस मुल्क में भी समृद्धि का सूरज निकल सके। और कोई कारण नहीं कि हम भी आदमी की जैसी जिंदगी बसर करने के योग्य हो सकें। और कोई कारण नहीं कि हम जानवर की तरह भूखे और प्यासे और नंगे और जमीन पर भिखारी की तरह हाथ फैलाए हुए फिरते रहें।

हमारे देश के नेता सारी दुनिया में भीख मांगने के सिवाय और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। वे भीख मांग कर इस मुल्क को कब तक बचा सकते हैं? और हमें जो थोड़ी सी रौनक दिखाई पड़ती है, खयाल रखना, वह रौनक हमारी नहीं है, वह अमेरिका गेहूं की है। वह ज्यादा देर नहीं चलने वाली। आज अमेरिका में चार किसान जितना काम कर रहे हैं उनमें से एक किसान की मेहनत हिंदुस्तान को मिल रही है। लेकिन अमेरिकन के इकोनॉमिस्ट परेशान हो गए हैं। अभी वहां के बहुत विचारशील लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया है कि अब हिंदुस्तान को और सहायता देनी गलत है। क्योंकि यह सहायता हम कब तक देंगे? और जिस दिन यह सहायता बंद होगी उस दिन हिंदुस्तान में इतना भयंकर अकाल पड़ेगा कि सब जिम्मेवारी हम पर आएगी कि इन्होंने सहायता देनी बंद कर दी इसलिए ये ही जिम्मेवार हैं। इसलिए अमेरिका का वैज्ञानिक तो सलाह दे रहा है, अर्थशास्त्री सलाह दे रहा है कि अब सहायता बंद कर दो, अब यह सहायता आगे खींचनी उचित नहीं है।

तो ठीक भी नहीं है। मैं भी मानता हूं, हिंदुस्तान को सहायता अब नहीं दी जानी चाहिए। क्योंकि सहायता की बहुत आदत भी शायद नुकसान पहुंचा सकती है। हम अपनी मुसीबतों में छोड़ दिए जाने चाहिए। अगर हम अपनी मुसीबतों में संघर्ष कर सकते हैं मुसीबतों से। लेकिन हम अपने से संघर्ष करने से बचें, तो हम मुसीबतों से संघर्ष करें। दो ही रास्ते हैंः या तो हम लड़ें या हम मुसीबतों से लड़ें। लेकिन हम आपस में लड़ेंगे, तो हम संघर्ष मुसीबतों से नहीं कर सकते हैं। लेकिन पूरा मुल्क आपस में लड़ने में बड़ा आतुर है। और हम अपने को लड़ कर नष्ट करते रहे हजारों साल तक, आगे भी हम अपने को लड़ कर नष्ट करते रहेंगे। और हम ऐसी फिजूल की बातों पर लड़ते हैं जिनका कोई अर्थ नहीं है। कहीं भाषा पर लड़ेंगे, कहीं धर्म पर लड़ेंगे, कहीं मंदिर-मस्जिद पर लड़ेंगे, कहीं हजरत मोहम्मद का बाल चोरी चला जाएगा तो लड़ेंगे, कहीं किसी शंकर जी की पिंडी टूट जाएगी तो लड़ेंगे।

हम इतनी फिजूल की बातों पर लड़ रहे हैं कि सारी दुनिया भविष्य में हम पर हंसेगी कि हमारे सामने बड़े-बड़े सवाल थे, उनको छोड़ कर हम इन पर लड़ते रहते हैं। बड़े सवाल हैं मुल्क के सामने! शायद मरने और जिंदा होने का सवाल है! शायद जिंदगी और मौत का सवाल है!

अगर हम बीस साल में मुल्क की सारी शक्तियों को क्रिएटिव मोड़ नहीं दे सकते, तो हम बीस साल में जमीन पर रहने के योग्य नहीं रह जाएंगे। उन्नीस सौ अठहत्तर और उन्नीस सौ पिचासी के बीच हिंदुस्तान में इतने बड़े अकाल की संभावना है जिसमें दस करोड़ लोगों से लेकर बीस करोड़ लोग तक मर सकते हैं। लेकिन हम बैठ कर सुन लेंगे। शायद हम कहेंगे, भगवान की मरजी होगी तो बचा लेगा और मरजी नहीं होगी, तो भगवान की मरजी के खिलाफ पत्ता नहीं हिलता, हम क्या करेंगे? ऐसे नहीं चलेगा। हमने भगवान की मरजी बहुत जगह से तोड़ दी है। हमने जन्म दर कम कर ली है, हमने बीमारियों का इलाज कर लिया है, हमने मृत्यु दर तोड़ डाली है और उधर हम बच्चे पैदा किए जा रहे हैं।

अभी हैलसिलासी ने इथोपिया में एक अमेरिकन कमीशन बुलाया। क्योंकि इथोपिया में बहुत बीमारियां हैं और बहुत मृत्यु दर है। तो एक अमेरिकन मेडिकल कमीशन को बुला कर उसने जांच-पड़ताल करवाई। और फिर हैलसिलासी को उन्होंने अपनी रिपोर्ट दी और अपनी रिपोर्ट में उन्होंने कहा कि आपके मुल्क में जो पानी है वह रुग्ण है और आपके मुल्क में जो पानी पीने का जो ढंग है वह बीमारी फैलाने वाला है और आप गंदा पानी पीते हैं। इथोपिया में सड़कों के किनारे जो पानी भर जाता है और जानवर जिसमें घूमते रहते हैं, उस पानी को भी लोग पीने के काम में ले आते हैं। तो उस कमीशन ने कहा कि आप यह गंदगी और पानी को बदलने की कोशिश करें और शुद्ध पानी लोगों को पीने का इंतजाम कर दें, तो आपके मुल्क में बड़े पैमाने पर मृत्यु दर कम हो जाएगी। हैलसिलासी हंसा और उसने कहा कि मैंने आपकी बात सुन ली और समझ गया। लेकिन यह मैं कभी करूंगा नहीं। उस कमीशन के लोगों ने कहा, आप पागल हो गए हैं! आप कहते हैं यह आप कभी करेंगे नहीं! हैलसिलासी ने कहा कि अगर मैं उनकी मृत्यु दर कम कर दूंगा तो फिर मुझे दीवालों पर लिखना पड़ेगा कि दो बच्चे होते हैं अच्छे! और वे कोई मानेंगे नहीं।

हैलसिलासी की बात कठोर मालूम पड़ती है। लेकिन हिंदुस्तान में यही हो गया है। मैं आपसे यही कहना चाहता हूं कि या तो हिंदुस्तान के जवान तय करें कि हम पचास साल, आने वाले पचास सालों में हिंदुस्तान की संख्या को वापस ले जाएंगे। और या फिर हमें हिंदुस्तान में बीमारियों को मुक्त छोड़ने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जाएगा। फिर हमें महामारियां बुलानी पड़ेंगी, भगवान से प्रार्थना करनी पड़ेगी कि हैजा भेजो, प्लेग भेजो। हमें अस्पताल बंद करने पड़ेंगे। और हो सकता है कि हमें कंपलसरी बूढ़े आदमियों को मरने के लिए मजबूर करना पड़े। यह बात आज अजीब लगती है। लेकिन यह बीस साल में मजबूरी बन सकती है कि हमें तय करना पड़े। जैसे हम तय करते हैं कि अट्ठावन साल में हम रिटायर करेंगे, वैसे हमें तय करना पड़े कि साठ साल में हम बिलकुल रिटायर करेंगे। क्योंकि अब कोई उपाय नहीं है।

या तो बच्चे कम करिए या बूढ़े कम करने पड़ेंगे। या तो बर्थ कंट्रोल को कंपलसरी करिए, या तो हिंदुस्तान के जवानों को तय कर लेना चाहिए कि हम देर से शादी करेंगे, तय कर लेना चाहिए शादी के बाद जितने दूर तक बच्चे से बच सकेंगे बचेंगे, तय कर लेना चाहिए कि बच्चा नहीं होगा तो सबसे बेहतर। और यह भी हमें तय कर लेना चाहिए मुल्क को चिंतनपूर्वक कि हम बच्चों को जबरदस्ती नहीं रोकेंगे तो रुक नहीं सकते, हमें सख्ती से, कंपलसरी। कंपलसरी एजुकेशन नहीं होगी तो चल सकता है, लेकिन कंपलसरी बर्थ कंट्रोल नहीं होगा तो नहीं चल सकता है।

लेकिन हिंदुस्तान के बच्चों को इनसे कोई मतलब नहीं है। अभी भी बैंडबाजा बज जाता है, घर में दसवां बच्चा हो रहा है और बैंडबाजा बज रहा है। अजीब बातें हैं! अब तो कोई आदमी मरे तो चाहे बैंडबाजा बजाइए, लेकिन कोई आदमी पैदा हो तो बैंडबाजा मत बजाइए। हालतें बदल गई हैं। जिंदगी बहुत और दूसरी मुसीबत में है।

अब मैं एक आदमी को अपने गांव में लिखते देखता था, वह यह बर्थ कंट्रोल का नारा लिखता फिरता है। वह लिखता रहता है दीवालों पर। बहुत अच्छे अक्षर हैं। एक दिन मैं गाड़ी रोक कर उसके पास रुका और मैंने कहा, तेरे अक्षर बहुत अच्छे हैं। तेरे खुद के कितने बच्चे हैं? उसने कहा, आपकी कृपा से सात बच्चे हैं, दो लड़कियां हैं और पांच लड़के हैं और अभी आठवां होने वाला है। और मैंने कहा, तू यह सब लिखता फिर रहा है दीवालों

पर कि सुखी परिवार का रहस्य दो या तीन बच्चे! उसने कहा, साहब, यह तो मेरी नौकरी है, मुझे इससे क्या मतलब! इसलिए मैं लिख रहा हूं।
नेता की नेतागिरी है, वह समझा रहा है। दीवाल पर लिखने वाले की नौकरी है, वह लिख रहा है। न कोई सुन रहा है, न कोई समझ रहा है। मुल्क रोज बड़ा होता जा रहा है। समस्याएं रोज बड़ी होती जाएंगी। और हम सिर्फ नारेबाजी करेंगे, हड़तालें करेंगे, घेराव करेंगे। नहीं, अगर हिंदुस्तान के बच्चे समझदार हैं तो हड़ताल नहीं होनी चाहिए, पचास साल तक अब घेराव की जरूरत नहीं है। अब पचास साल तक हिंदुस्तान की सारी शक्ति सृजनात्मक हो, सारी शक्ति क्रिएटिव हो, हम कुछ निर्माण करने में लग जाएं, तो शायद पचास साल में हम इस मुल्क को सौभाग्य के दिन दे सकते हैं। इस मुल्क ने बहुत लंबी कठिनाइयां देखीं—गुलामी, गरीबी, दीनता। क्या हम भविष्य में भी इस मुल्क को कोई स्वर्ण दिन नहीं दिखाएंगे?
आप सबको देख कर आशा नहीं बंधती। क्योंकि जो हम कर रहे हैं उससे कोई आशा नहीं बंधती। और जब मैं ये सारी बातें कहता हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि शायद यह सब अरण-रोदन हो सकता है।
लेकिन फिर भी एक आशा है कि जब आपसे मैं कुछ कह रहा हूं तो आप सोचेंगे, हो सकता है सोचना आपके भीतर कोई दिशा का परिवर्तन बन जाए। मेरी बात मानने की जरूरत नहीं है। मैं न कोई नेता हूं न कोई गुरु, न मैं किसी को अनुयायी बनाता हूं, न किसी से मुझे कोई वोट की जरूरत है। मेरी सिर्फ एक ही आकांक्षा है कि इस मुल्क के नौजवान सोचने लगें और अगर वे सोच कर कोई कदम उठाएं तो मैं मानता हूं कि खतरा नहीं रहेगा और मुल्क के हित में और मंगल में कुछ हो सकता है।

मैंने ये थोड़ी सी बातें कहीं। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं)

यह सवाल एकदम जरूरी और महत्वपूर्ण है। यह बात ठीक है कि एक इंजीनियर के पास रोटी न हो, कपड़ा न हो, खोज की सुविधा न हो, काम न हो, तो वह क्या करे? लेकिन अगर पूरे देश के पास ही रोटी न हो, रोजी न हो, कपड़ा न हो, तो देश क्या करे? और इंजीनियर को कहां से रोटी-रोजी और कपड़ा दे?
जब हम यह बात कहते हैं कि अगर मेरे पास रोटी-रोजी-कपड़ा नहीं तो मैं कैसे कुछ करूं। तो हमें यह भी जानना चाहिए, इस पूरे मुल्क के पास भी रोजी-रोटी-कपड़ा नहीं है। ये आपको कहां से दे? यह हल कहां होगी बात? इसको कहां से हम तोड़ें? अगर मुल्क का हर आदमी यह कहता हो कि जब मेरे पास रोटी-रोजी-कपड़ा होगा तब मैं कुछ करूंगा, तो यह रोटी-रोजी-कपड़ा आएगा कहां से? क्योंकि मुल्क का पूरा आदमी कहता है कि जब कुछ होगा तब मैं करूंगा। और पूरा मुल्क ऐसा कहता है तो यह आएगा कहां से?

यह मामला ऐसा है कि पूरा मुल्क कोई आसमान में बैठी हुई चीज नहीं, हम सब हैं। और जब हम यह कहते हैं कि पहले हमें रोटी-रोजी-कपड़ा चाहिए तो हम यह कह रहे हैं जैसे हमें रोटी-रोजी-कपड़ा देने के लिए कोई आसमान से उतरेगा। नहीं।

हिंदुस्तान के इंजीनियर को समझ लेना चाहिए कि उसको बिना रोटी-रोजी-कपड़े के रोटी-रोजी-कपड़ा खोजने की कोशिश करनी है। इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। और यह इंजीनियर का ही सवाल नहीं है, डाक्टर का भी यही है, शिक्षक का भी यही है, मजदूर का भी यही है। लेकिन मैं यह मानता हूं कि अगर बुद्धिमत्ता है आदमी के पास तो बुद्धिमत्ता का एक ही मतलब होता है कि जब जिंदगी चीजें नहीं दे पाती तो बुद्धि चीजों को पैदा करने की दिशा में फिर भी मार्ग खोज लेती है।

हम सबकी आदत यह हो गई है जैसे किसी और की जिम्मेवारी है कि पूरा करे। लेकिन कौन जिम्मेवारी पूरा करेगा? और जब एक इंजीनियर को हम पढ़ाते हैं, लिखाते हैं, बीस या चौबीस साल की उम्र का उसे मुल्क कर देता है, तो ऐसा नहीं है कि उसे रोटी नहीं दी गई, कपड़े नहीं दिए गए, शिक्षा नहीं दी गई। उसको सब दिया गया है। चौबीस साल कुछ कम नहीं होते। उसको सारी शिक्षा दे दी गई है। अब हम उससे आशा करते हैं कि जहां कुछ भी नहीं है वहां वह कुछ पैदा करने की फिक्र करे।

यह मैं जानता हूं कि समुद्र पर मकान बनाना हो तो नंगे खाली हाथ से नहीं बन जाएगा। लेकिन समुद्र पर मकान बनाने की योजना नंगे खाली हाथ भी बना सकते हैं। और अगर एक बार योजना बन जाए तो वे हाथ भी खोजे जा सकते हैं जो श्रम कर सकें और वे लोग भी खोजे जा सकते हैं जो पैसा दे सकें। जिस आदमी ने पहली दफा मोटर की डिजाइन बनाई उसके पास एक पैसा नहीं था और खाने को रोटी भी नहीं थी। और वह जिन लोगों के पास मोटर की डिजाइन लेकर गया, उन सबने कहा, तुम पागल हो। क्योंकि मोटर उसके पहले दुनिया कभी थी नहीं, कार कभी थी नहीं। जब उसने लोगों से कहा कि बिना घोड़े के और बिना बैल के यह गाड़ी चलेगी, तो उन्होंने कहा, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।

लेकिन वह आदमी घूमता रहा नंगा, भूखा और प्यासा। आखिर उसे एक आदमी मिल गया, जिसमें तैयार हो गया, उसने कहा कि एक प्रयोग कर लेने में कोई हर्ज नहीं है। तुम आदमी बुद्धिमान मालूम पड़ते हो, हालांकि काल्पनिक हो। सभी बुद्धिमान आदमी काल्पनिक होते हैं। लेकिन दुनिया से कल्पना में ही सृजन होता है। एक आदमी मिल गया जिसने पैसा लगाया।

जिसने पैसा लगाया उसके घर के लोगों ने भी कहा कि तुम पागल तो नहीं हो! कहीं दुनिया में कभी कोई गाड़ी चली जिसमें हाथी, घोड़ा, बैल कोई भी न जुता हो! उसने कहा, अब तक तो नहीं चली है, लेकिन दुनिया में बहुत सी चीजें कल हो सकती हैं जो कल तक नहीं हुइ।

पैसे वाला भी मिल जाता है, हाथ से मजदूरी करने वाला भी मिल जाता है। एक बार हमारे सोचने का ढंग और एप्रोच बदलनी चाहिए।

हम निरंतर यह सोचते हैं कि कोई पहले हमें दे। फिर मैं आपसे यह पूछता हूं, अगर यह सच है कि इंजीनियर को काम मिल जाए तो वह बहुत कुछ करेगा, जिनको काम मिल गया है वे क्या कर रहे हैं? जिनको नौकरी मिल गई है वे क्या कर रहे हैं? ऐसा तो नहीं है कि सभी इंजीनियर नौकरी के बाहर हैं। लाखों इंजीनियर नौकरी के

भीतर हैं, वे क्या कर रहे हैं? लाखों डाक्टर नौकरी के भीतर हैं, वे क्या कर रहे हैं? बाहर जो खड़ा है वह कहता है कि मुझे भीतर ले लो, फिर मैं कुछ करूंगा। लेकिन भीतर जो हैं वे कोई सबूत नहीं देते करने का।

नहीं, हमारी एप्रोच गलत है, हमारे सोचने का ढंग गलत है। और फिर सवाल यह है कि काम नहीं है मुल्क के पास। तो मुल्क आसमान से काम पैदा नहीं कर सकता। यह हमें समझ लेना चाहिए कि जितने लोग हैं हमारे पास, उतना काम नहीं है हमारे पास। और यह भी हमें समझ लेना चाहिए कि जितने लोगों को हमने शिक्षित कर दिया है, उतने लोगों को हम काम नहीं दे सकते हैं। यह है नहीं। इसलिए इसमें जो बहुत हिम्मतवर हों, उन्हें काम लेने से इंकार कर देना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे हिम्मत का प्रयोग करें और नंगे हाथों दिशाएं खोजें। यह तो कमजोरों के लिए दफ्तर छोड़ देने चाहिए। एंप्लाइमेंट जो है वह हिंदुस्तान में बुद्धिहीनों के लिए छोड़ देना चाहिए। बुद्धिमानों को एंप्लाइमेंट के बाहर हो जाना चाहिए।

जो एंप्लाइमेंट के बिना कुछ नहीं कर सकते और उनके लिए एंप्लाइमेंट छोड़ देना चाहिए। जिनकी थोड़ी भी हिम्मत है, और जिनमें थोड़ी भी ताकत है, उन लोगों को एंप्लाइमेंट का मोह छोड़ कर बाहर हो जाना चाहिए। और मैं मानता हूं कि अगर मुल्क में, यह ध्यान रहे कि सारा मुल्क दुनिया में नई चीजें नहीं खोज लेता, थोड़े से लोग खोजते हैं।

आज यह बिजली आपको हवा दे रही है, रोशनी दे रही है। यह कोई सारी दुनिया की खोज नहीं है। मॉसज ने दुनिया में कुछ नहीं खोजा है। लेकिन एक आदमी बिजली खोज लेता है, सारी दुनिया के काम आ जाती है। लेकिन जो आदमी बिजली खोज लेता है, वह अगर पहले से ही मान कर चलता हो कि उसे ये-ये शर्तें पूरी होंगी तब वह खोज पाएगा, तो शायद दुनिया में कभी खोज न हो।

यह बड़े मजे की बात है कि दुनिया में आमतौर से अब तक जितनी खोजें की हैं ये उन लोगों ने की हैं जो खोजों की दुनिया से बिलकुल बाहर थे। दुनिया के सत्तर परसेंट वैज्ञानिक नॉन-प्रोफेशनल हैं। जो आदमी केमेस्ट्री का प्रोफेसर है वह केमेस्ट्री में कभी खोज नहीं करता देखा जाता। कोई और आदमी, जो केमेस्ट्री की दुनिया से संबंधित नहीं, केमेस्ट्री की खोज करता है। जो आदमी फिजिक्स का प्रोफेसर है, वह फिजिक्स में खोज नहीं करता। जितनी नोबल-प्राइज है वह आमतौर से उस विषय के प्रोफेशनल प्रोफेसर्स को नहीं मिलती, वह किन्हीं और को मिलती है।

इसका कारण क्या है? अगर एंप्लाइमेंट से कुछ काम बन जाता हो तब तो बात और होती है। नहीं, ऐसा नहीं है। और आमतौर से यूनिवर्सिटी जो है वह मोस्ट आर्थाडाक्स जगह होती है—जहां कि हमें सोचना चाहिए ज्ञान की नई खोज होगी, वहां कुछ नहीं होता। ज्ञान की सारी नई खोजें यूनिवर्सिटी के बाहर होती हैं। और अक्सर यूनिवर्सिटीज इंकार करती हैं खोजों को स्वीकार करने से।

दुनिया में बहुत सी खोजें हैं जो तीस-तीस, चालीस-चालीस साल रुक कर पड़ी रहीं। क्योंकि बुद्धिमान वर्गों ने उनको स्वीकार नहीं किया। उनको किन्हीं ऐसे लोगों ने खोजा जिनके पास कोई पदवी नहीं थी, कोई उपाधि नहीं थी। जिंदगी में जो खोज है वह एक दिशा और एक एप्रोच और एक ढंग की बात है। शर्त से कोई खोज नहीं होती। शर्त सदा न खोजने वाले की होती है। खोज सदा बेशर्त और अनकंडीशनल है। जिन लोगों को खोजना है उन्हें अनकंडीशनली खोजने में लगना चाहिए। और बड़े हैरानी की बात है यह कि अक्सर दुनिया में बहुत बड़ी

खोजें भूखे लोगों ने की हैं। और जैसे ही उनके पेट भर दिए जाते हैं, करीब-करीब उनकी खोजें भी मर जाती हैं। क्योंकि जैसे ही वे आराम में हो जाते हैं वैसे ही खोज की दिशा भी खो जाती है।

मैं नहीं मानता हूं कि हिंदुस्तान को खोज में कोई कमी है क्योंकि हिंदुस्तान बहुत भूखा है। अगर इतनी भूख और इतनी परेशानी भी खोज की प्रेरणा नहीं बनती है, तो मैं नहीं मानता हूं कि अमेरिका जैसे हम संपन्न हो जाएं तो हम कुछ भी खोज करेंगे। जब घर में आग लगी हो तब भी कोई बाहर निकलने को तैयार नहीं है, तो जब घर में आग नहीं लगी होगी तो आप घर के भीतर सोए होंगे, इसकी आशा की जा सकती है, बाहर आप कभी भी नहीं निकलेंगे। इतनी परेशानियों के दबाव में भी हिंदुस्तान के युवक के मन में नई दिशा का खयाल नहीं है। लेकिन यह खयाल आ सकता है।

मैं ठीक ऐसी ही बात एक कालेज में बोल रहा था। साल भर बाद दुबारा उस कालेज में गया, तो एक युवक ने मुझे लाकर एक साइकिल के चक्के का नक्शा बताया। उसने कहा, पिछली बार आप बोले थे, तो मेरे मन में आया कि मैं कुछ खोजूं। मेरे पास कुछ भी नहीं, लेकिन एक टूटी-फूटी साइकिल तो है ही मेरे पास, जिस पर मैं कालेज आता हूं। तो मैंने कहा कि मैं साइकिल के संबंध में कुछ खोज करूं। इसमें तो कोई बहुत बड़ा काम नहीं। इस पर रोज सवार भी होता हूं, इसको ठोंक-पीट कर रोज ठीक भी करता हूं, पुरानी टूटी-फूटी साइकिल है। इसमें कि मैं क्या कर सकता हूं? आपने मुझे खयाल दिया तो मैं अपनी साइकिल के बाबत सोचने लगा। और मुझे एक खयाल आया कि आदमी साइकिल पर बैठता है तो उसका वजन पड़ता है, इसके वजन का उपयोग साइकिल के चलाने में किया जा सकता है या नहीं किया जा सकता?

वह उस खोज के पीछे पड़ गया। अब जब मैं दुबारा गया तो उसने मुझे चक्का लाकर बतलाया जो कि आदमी के वजन का उपयोग करेगा साइकिल की गति में। अभी जितना मोटा आदमी हो उतना साइकिल चलाने में मुश्किल होती है। उसकी साइकिल पर जितना मोटा आदमी हो उतनी सुविधा होगी।

उसने साइकिल के टायर में कई हिस्से कर दिए हैं और साइकिल के ट्यूब को आठ-दस हिस्सों में तोड़ दिया है। तो जब एक आदमी साइकिल पर सवार होता है तो नीचे का जो टुकड़ा है रबड़ का, हवा का जो दबाव है वह पड़ता है उस पर। उस दबाव के, हवा के दबाव की वजह से दूसरी हवा उसमें प्रवेश करना चाहती है और साइकिल की गति बढ़ जाती है। जितना वजनी आदमी उतनी साइकिल गतिमान हो जाएगी। और साधारणतया जितनी हम साइकिल चलाते हैं उसमें आधी ताकत की जरूरत रहेगी, आधी ताकत शरीर से लग जाएगी, वजन से...।

अब इस लड़के के पास कुछ भी नहीं है, कोई एंप्लाइमेंट नहीं है। मैंने उस लड़के को कहा कि तू और भी फिक्र कर, तेरे पास जो भी हो उसमें फिक्र कर। अभी वह मेरे पास एक माचिस लेकर आया था। जो माचिस उसने और ढंग से बनाई है। माचिस की काड़ी हमें जलानी पड़ती है। अब यह गरीब लड़का है। लेकिन माचिस किसके घर में नहीं है! लेकिन अकल चाहिए, थोड़ी बुद्धि चाहिए, थोड़ी खोज की वृत्ति चाहिए। वह एक नई माचिस बना कर लाया था जो कि बहुत कीमती है। वह माचिस ऐसी है कि उसमें काड़ी को अलग से जलाने की जरूरत नहीं। आप काड़ी को खींचिए, वह जली हुई बाहर निकलती है। क्योंकि काड़ी की माचिस के भीतर उसने रोगन लगा दिया है और काड़ी बीच में दबी है। माचिस खींचिए, वह जली हुई बाहर निकलती है। यह माचिस

वर्षा में खराब नहीं होगी, क्योंकि उसका रोगन भीतर है। और इस माचिस को अलग से जलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। माचिस जली हुई बाहर निकलेगी। निश्चित ही इसकी माचिस को जल्दी ही कोई बड़ा ग्राहक मिल जाएगा।

उस लड़के को मैंने कहा कि तू फिक्र में लगा रहे, जो तेरे घर में है उसी का तू उपयोग कर। अभी उसने एक स्टोव बना कर ले आया है। अब घर में सबके स्टोव है। यह सवाल नहीं है कि इंप्लाइमेंट हो, यह सवाल नहीं कि नौकरी हो, यह सवाल है बुद्धि का, यह सवाल है प्रतिभा का। अगर आपके पास प्रतिभा है तो आप रेत से तेल निकाल सकेंगे। अगर आप के पास प्रतिभा है तो पत्थर सोना हो जाएगा। और अगर आप के पास प्रतिभा नहीं है तो सोना भी मिट्टी हो जाता है।

एप्रोच बदलने के लिए कह रहा हूं मैं। यह नहीं कह रहा हूं कि आपको इंप्लाइमेंट न मिले। मैं यह नहीं कह रहा हूं, मैं यह कह रहा हूं इंप्लाइमेंट तो मिलना ही चाहिए। लेकिन सबको मिल सकता नहीं। उसका कोई उपाय नहीं है।

एप्रोच आपकी बदलनी चाहिए जिंदगी को सोचने के संबंध में। आप कपड़ा तो पहने हुए हैं, अभी जो युवक आए वे कपड़ा तो पहने हुए हैं, कपड़े के संबंध में कुछ फिक्र कर सकते हैं। खाना तो खाते हैं, खाने के संबंध में कुछ फिक्र कर सकते हैं। पेशाब तो करते हैं, इस पेशाब का कोई उपयोग खोज सकते हैं। बाल तो कटवाते हैं जाकर नाई से, कटे हुए बालों की खाद बन सकती है। कुछ उपाय खोज सकते हैं। जिंदगी में आप कुछ तो कर ही रहे होंगे, वहां कुछ और क्या हो सकता है इसकी दिशा में अगर आंखें गड़ी रहें तो आदमी जरूर बहुत कुछ खोज लेता है। लेकिन आंखें गड़ी न हों तो कुछ भी नहीं खोज पाता। और जिन मुल्कों में खोज की दृष्टि...

मैं एक सफर में था और एक जापानी बुढ़िया मेरे साथ बैठी हुई थी। मूंगफली उसने खरीदी हुई थी। वह मूंगफली खाती जा रही थी और छिलके अपने बैग में रखती जा रही थी। मैं थोड़ी देर में हैरान हो गया! क्योंकि मूंगफली के छिलके बैग में किसलिए रख रही? शायद, मैंने सोचा कि वह गंदगी नहीं करना चाहती। लेकिन वह छिलकों को इतने साफ करके बैग में रख रही थी कि मुझे शक हुआ। मैंने उससे पूछा, ये छिलके किसलिए रख रही? उसने कहा कि इनको रंग कर खिलौने बनाए जा सकते हैं।

अब जापान में हर आदमी हर चीज का उपयोग करने की फिक्र करेगा। जापान में कचरे में बहुत कम चीजें फेंकी जाएंगी। क्योंकि कचरा भी बहुत काम में आ सकता है। हिंदुस्तान की सड़कें कचरे से भरी हुई हैं। अगर बुद्धि हो तो तो यह सारा कचरा सोना बन जाए। हम इतनी चीजें फेंक रहे हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। ये सारी चीजें रूपांतरित हो सकती हैं। सवाल दृष्टि का है। लेकिन हमारी दृष्टि तो एक है कि कोई और इंप्लाइमेंट दे। पहले हम भगवान से मांगते थे कि भगवान दे, अब हम सरकार से मांगते हैं कि सरकार दे। भगवान तो फिर भी ताकतवर है, सरकार तो बहुत नपुंसक है, इंपोटेंट है, वह तो कुछ भी नहीं कर सकती। भगवान से ही मांगते रहते वह भी ठीक था। लेकिन यह सरकार से मांगने से नहीं चलेगा।

सारा मुल्क मांग रहा है कि हमें मिलना चाहिए। लेकिन देने वाला कौन है? नहीं, मुल्क में कुछ जवानों को हिम्मत करनी चाहिए कि हम देंगे और अनकंडीशनल देंगे, कोई शर्त नहीं रखते। भूखे पेट होंगे तो भी खोजेंगे।

अगर हम थोड़ी सी फिक्र करें तो किसी भी दिशा में अनंत दिशाएं खुलती चली जाती हैं। आदमी को जानने को बहुत कुछ शेष है, और आदमी को खोजने को बहुत कुछ शेष है, और आदमी हर रद्दी चीज को भी क्रियात्मक सक्रिय रूप से महत्वपूर्ण बना सकता है। लेकिन हमें खयाल में आ जाए तब, अन्यथा नहीं। सिर्फ आपकी दिशा बदले इसलिए मैंने ये बात कही हैं, आप इस दिशा में सोचें इसलिए ये बात कही हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह सवाल तो बड़ा है और दो-तीन मिनट में जवाब देना बहुत मुश्किल पड़े, लेकिन दो-चार बातें मैं कहूं और सांझ को उस सवाल को फिर उठा लूंगा ताकि पूरी बात हो सके।
पहली तो बात यह है कि अगर युवक ज्यादा देर तक अविवाहित रहे तो मैं यह नहीं कहता हूं कि वह ज्यादा देर तक वह बिना प्रेम के भी रहे। अविवाहित रह कर भी प्रेम किया जा सकता है। और मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो यह कहूं कि वे ब्रह्मचर्य धारण करके रहें। क्योंकि वह नासमझी की बात है। कभी लाख में एकाध आदमी उसे उपलब्ध हो सकता है। लेकिन आज तो साइंस ने इतने आर्टिफिशियल साधन उपलब्ध कर दिए हैं कि बिना बच्चे पैदा किए प्रेम किया जा सकता है। इसलिए उसमें बहुत घबड़ाने की जरूरत नहीं है, उसमें बहुत परेशान होने की जरूरत नहीं है।

दूसरी बात एक मित्र ने पूछी है कि करप्शन बढ़ गया है।

करप्शन बढ़ेगा! स्वाभाविक है! जहां लोग ज्यादा होंगे और जरूरतें की चीजें कम होंगी, वहां करप्शन बढ़ेगा। इस करप्शन को मिटाने का उपाय करप्शन को मिटाना नहीं है, इस करप्शन को मिटाने का उपाय लोगों की जिंदगी में समृद्धि लाना है। और कोई रास्ता नहीं है। कोई दुनिया में आदमी बुरा नहीं होना चाहता, बुरा होना सिर्फ मजबूरी से संभव होता है। बुरा से बुरा आदमी भी मजबूरी का फल होता है।
अगर लोग चोर हैं, बेईमान हैं, रिश्वतखोर हैं, तो मजबूरियां उन्हें इन सब चीजों के लिए मजबूर कर रही हैं। इसलिए अगर हमने सोचा कि हम भ्रष्टाचार मिटाएंगे, करप्शन मिटाएंगे, तो सिर्फ बकवास चलेगी, कुछ मिटने वाला नहीं है।
अगर हम जिंदगी की असली बात को समझ लें कि चीजें कम हैं और लोग ज्यादा हैं। इसलिए भ्रष्टाचार स्वाभाविक है। तो भ्रष्टाचार को तो एक तरफ छोड़ो, चीजें बढ़ाने में लग जाओ। भ्रष्टाचार मिट जाएगा।

और उन मित्र ने कहा है कि इतने ज्यादा महात्मा हैं।

जहां भ्रष्टाचार ज्यादा होता है, महात्मा ज्यादा हो जाते हैं। असल में भ्रष्टाचारी समाज में महात्मा बढ़ जाते हैं। उसका कारण है। क्योंकि जहां बीमार ज्यादा होते हैं वहां डाक्टर बढ़ जाते हैं, जहां चोर-बेईमान ज्यादा होते हैं

वहां उपदेशक बढ़ जाते हैं। ये प्रोफेशनल संबंध हैं इनके। अगर गांव में बीमार ज्यादा होंगे तो डाक्टर बढ़ जाएंगे। तो आप यह नहीं कह सकते कि गांव में इतने डाक्टर हैं तो बीमार ज्यादा क्यों हैं? बात उलटी है, गांव में इतने बीमार हैं इसलिए इतने डाक्टर हैं। इतने महात्मा हैं दुनिया में, इस मुल्क में इतने महात्मा हैं तो इतना करप्शन क्यों है? मैं कहता हूं बात उलटी है, इतना करप्शन है इसलिए इतने महात्मा हैं। नहीं तो इनको सुनेगा कौन?

जब मुल्क में अनैतिकता बढ़ती है, इम्मॉरिलिटी बढ़ती है तो प्रिचर्स बढ़ जाते हैं। स्वभावतः, क्योंकि वे समझाने लगते हैं कि नैतिक बनो! और नैतिक बनना आसान तो नहीं है, समझाने से तो होता नहीं। इसलिए महात्मा समझाए चला जाता है। और महात्मा अच्छी बातें समझाता है तो हम उसके पैर भी पड़ते हैं। हालांकि अच्छी बातों और पैर पड़ने से मुल्क नहीं बदलता।

इस मुल्क को महात्माओं की बिलकुल भी जरूरत नहीं है। इस मुल्क में महात्मा न हों तो कुछ हर्जा न हो जाएगा। सिर्फ इतना फर्क पड़ेगा कि करप्शन के खिलाफ बोलने वाले लोग न होंगे। करप्शन तो इतना ही रहेगा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। बोलने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। और ध्यान रहे, हमारे सब महात्मा एक अर्थ में आउट ऑफ डेट हैं। वह तीन-चार हजार साल पुरानी व्यवस्था उनके दिमाग में है। सारी दुनिया बदल गई है। वे जो समझा रहे हैं वह तीन-चार हजार साल पहले ठीक था, अब ठीक नहीं है। इसलिए हमारे महात्माओं का जवान से तो कोई संबंध नहीं रह गया। बूढ़े मरे हुए लोग उनके सुनते हैं, जिनका एक पैर कब्र में चला गया वे महात्माओं के पास होते हैं या बेपढ़ी-लिखी औरतें होती हैं।

हिंदुस्तान के जवान का तो महात्माओं से कोई संबंध नहीं है। हिंदुस्तान के जवान को तो कुछ नई तरह की व्यवस्था और चिंतन पैदा करना पड़ेगा और नये विचारक पैदा करना पड़ेंगे। हिंदुस्तान के जवान के योग्य महात्मा हिंदुस्तान के पास नहीं हैं। हिंदुस्तान के जवान के लिए वैज्ञानिक ढंग से सोचने वाले महात्मा चाहिए।

अब जैसे कि मैं यह बात कह रहा हूं, यह हिंदुस्तान में कोई साधु आपसे नहीं कह सकेगा। क्योंकि मैं जानता हूं कि ब्रह्मचर्य कभी लाख दो लाख में एक आदमी के लिए संभव है। और ज्यादा लोग अगर कोशिश करेंगे तो सिर्फ बीमार पड़ेंगे और व्यभिचारी हो जाएंगे, और कुछ नहीं हो सकता। या यह हो सकता है कि मेंटल सेक्सुअलिटी शुरू हो जाए, बॉडीली बंद हो जाए और दिमाग में शुरू हो जाए। जो और खतरनाक है।

तो मैं आपसे कहता हूं, शादी देर से करें, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आपका सेक्स स्टार्व हो। आपके सेक्स को भूखा रखने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन वह पुराने जमाने की बातहो गइ कि सेक्स से बच्चा पैदा हो जाता था। अब तो कोई जरूरत नहीं। अब तो हमने सेक्स को रिप्रोडक्शन को अलग कर लिया है। सेक्स अलग चीज है, रिप्रोडक्शन अलग चीज है। और बहुत जल्दी, अभी तो हम बिना रिप्रोडक्शन के सेक्स में संबंधित हो सकते हैं, कल बिलकुल ऐसी स्थिति आ जाएगी कि सेक्स के लिए रिप्रोडक्शन की बिलकुल ही जरूरत नहीं रह जाएगी। करीब-करीब आ गई है। हम टेस्ट-टयूब में बच्चे को पैदा कर सकेंगे। बहुत दिन स्त्रियों को बच्चे को पेट में रखने की तकलीफ आगे नहीं झेलनी पड़ेगी।

इसलिए अब जो हमारी पुरानी सेक्सुअल मारेलिटी है, उसके बचाए रखने की कोई जरूरत नहीं, वह बिलकुल बेकार है। अब तो भविष्य में जो मारेलिटी होगी हाइजनिक होगी, सेक्सुअल नहीं होगी। सेक्स का बड़ा सवाल

नहीं है, हाइजिन का बड़ा सवाल है। यह बड़ा सवाल नहीं है कि आपका किस स्त्री से संबंध है, बड़ा सवाल यह है कि उस स्त्री से आपका प्रेम है या नहीं। पुरानी दुनिया बहुत प्रेमहीन दुनिया थी। नई दुनिया बहुत प्रेमपूर्ण हो सकेगी। और इसीलिए प्रेमपूर्ण हो सकेगी कि अब सेक्स को हमने बहुत से विभाजन कर दिए हैं।

दुबारा जब मैं आता हूं तो चाहूंगा कि इसी संबंध में आपसे पूरी बात करूं। क्योंकि यह बात लंबी है। कम से कम आठ दिन मैं आपसे बात करूं तब सेक्स के संबंध में आपको वैज्ञानिक दृष्टि खयाल में आ सकती है।

चौथा प्रवचन

भारत का भविष्य

भारत किस ओर?

मेरे प्रिय आत्मन्!

व्हेदर इंडिया? भारत किस ओर? यह सवाल भारत के लिए बहुत नया है। कोई दस हजार वर्षों से भारत की दिशा सदा निश्चित रही है, उसे सोचना नहीं पड़ा है। दस हजार सालों से भारत एक अपरिवर्तित, अनचेंजिंग सोसाइटी रहा है। जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता रहा। एक स्टेगनेंट, ठहरा हुआ समाज रहा है। जैसे कोई तालाब होता है, ठहरा हुआ, चारों तरफ से बंद, तो हम तालाब से नहीं पूछते किस ओर? उसकी कोई गति नहीं होती। नदी से पूछते हैं, किस ओर? उसकी गति होती है। भारत की जिंदगी और भारत का मनुष्य आज तक एक तालाब की भांति रहा है। उसके आसपास यह सवाल कभी नहीं उठा, किस ओर?

किस ओर का कोई सवाल न था, जाना ही नहीं था कहीं। जहां हम थे वहां हम थे। हम मनुष्यों की भांति नहीं जीए हैं पांच हजार वर्षों में, वृक्षों की भांति जीए हैं; जमीन पर गड़े हुए, जिनमें कोई गति नहीं है।

ऐसे मैं सुनता हूं कि कुछ वृक्ष भी थोड़ी सी गति करते हैं। कुछ वृक्ष शायद अफ्रीका के जंगलों में वर्ष में पांच-सात फीट हट जाते हैं। लेकिन भारत उतना भी नहीं हटा है। हमने न हटने की कसम खाई हुई थी। और हम न हटने को गौरवपूर्ण समझते थे। हमारा खयाल था कि जो चीज जितनी पुरानी है, उतनी मूल्यवान है। और परिवर्तन तो तब आता है जब नई चीज को हम पुरानी चीज से ज्यादा मूल्य दें। जब हम कहें कि जो नया है वह पुराने से श्रेष्ठतर हो सकता है, तो परिवर्तन शुरू होता है। जब हम ऐसा मानते हैं कि पुराना नये से श्रेष्ठतर होता ही है, तो परिवर्तन का कोई सवाल नहीं उठता।

भारत के मन में सदा से ही पुराने का आदर रहा है। भारत के मन में जितनी पुरानी चीज हो, उतनी कीमती मालूम पड़ती है। तो भारत विकासमान एवलूशनरी नहीं, बल्कि □ासमान है। पतित हो रहा है। यह जो दस हजार साल की कहानी है, इसमें अगर किसी ने मनु से पूछा होता—व्हेदर इंडिया? भारत किस ओर? तो वह कहता, क्या पागलपन की बात कर रहे हैं! भारत जहां है वहां है। अडिग अपनी जगह खड़ा है। कहीं जाने का कोई सवाल नहीं। सब जाना गलत था।

आज यह सवाल संगत है, रिलेवेंट है। हम पूछ सकते हैं—भारत किस ओर?

यह सवाल क्यों उठा है? यह सवाल दो कारणों से उठा है। एक तो पहली बार हम जगत की संस्कृति के संपर्क में आए, पहली बार हम मनुष्य की विभिन्न संस्कृतियों और समाजों को देखे और पहचाने। तो पहली बार हमारा परिचय औरों से हुआ है। हमारा सिर्फ परिचय अपने से था। इस औरों से परिचय ने हमें संदिग्ध कर दिया है।

अब हम यह नहीं कह सकते कि जो हमारे पास है वही श्रेष्ठ है। अब हम यह भी नहीं कह सकते कि जो हमारे पास है वही सही है। दूसरों के पास भी बहुत कुछ है। और हजार चीजें हैं जो हमसे ज्यादा सही दूसरों के पास भी हैं, एक। दूसरी बात, सारे जगत में एक मौलिक ज्ञान की क्रांति हो गई है। उस क्रांति के परिणाम हमारे पास भी आने शुरू हुए। उसने भी यह सवाल उठा दिया है कि अब भारत किस ओर? क्योंकि पुरानी दिशा धूमिल हो गई है। पुराने रास्ते काफी चले जा चुके हैं, और अब बेमानी हो गए हैं, और नये रास्ते चुनने की हमारी हिम्मत नहीं है, क्योंकि दस हजार साल से हमने कभी नये रास्ते चुने नहीं।

जो दूसरी बात मैं कहना चाहता हूं वह भी आपसे कह दूं, फिर बात समझ में आसान हो जाएगी।

जीसस के मरने के बाद सारी दुनिया में अठारह सौ वर्षों में जितना ज्ञान विकसित हुआ है उतना ज्ञान पिछले डेढ़ सौ वर्षों में विकसित हुआ। और जितना डेढ़ सौ वर्षों में विकसित हुआ है उतना पिछले पंद्रह वर्षों में विकसित हुआ है। और जितना पिछले पंद्रह वर्षों में विकसित हुआ है उतना पिछले पांच वर्षों में विकसित हुआ है। आदमी जिस ज्ञान को पैदा करने में अठारह सौ साल लगाता था, अब हम पांच साल में उतना ज्ञान पैदा कर लेते। और यह गति रोज बढ़ती चली जाती है। इसके परिणाम बड़े अदभुत हुए हैं।

इसका एक परिणाम तो यह हुआ है कि कोई भी चीज थिर नहीं हो पाती। अगर एक ज्ञान अठारह सौ साल तक सच हो तो समाज थिर हो जाता है, ठहर जाता है। लेकिन अगर ज्ञान हर पांच वर्ष में बदल जाता हो और नये ज्ञान का एक्सप्लोजन हो जाता हो तो समाज कभी थिर नहीं हो पाता। इसके पहले कि आप ठहरें, आप पाते हैं वह जमीन हट गई है नीचे से, जिस पर आपने भवन बनाया था। उसके पहले कि आप निश्चित होकर बच जाएं, वे रास्ते गलत हो जाते हैं जिन रास्तों पर आपने बसने की इच्छा की थी। इसलिए पुराना समाज अगर कभी बदलता भी था तो बदलाहट का क्रम इतना धीमा था कि एक छोटी सी बदलाहट लाने में बीस पीढ़ियां गुजर जाती थीं। इसलिए बदलाहट का कभी पता नहीं चलता था।

एक वैज्ञानिक के संबंध में मैंने सुना है कि वह बदलाहट के संबंध में कुछ प्रयोग कर रहा था। उसने एक मेंढक को एक उबलते हुए गरम पानी में डाल दिया। वह मेंढक छलांग लगा कर बाहर हो गया। उबलता हुआ पानी था, जान का खतरा था। फिर उसने उसी मेंढक को साधारण ठंडे पानी में रखा, और बहुत धीरे-धीरे पानी को गरम करना शुरू किया। थोड़ा पानी गरम हुआ, उतनी गर्मी मेंढक को छलांग लगाने के लिए काफी नहीं थी। वह उतनी गर्मी के लिए राजी हो गया, एडजेस्ट हो गया। फिर और थोड़ा गर्म किया, फिर और थोड़ा गर्म किया। चौबीस घंटे के लंबे फासले में पानी उबलने के बिंदु पर आ गया। मेंढक अब भी भीतर था। उसने छलांग नहीं लगाई, वह उबला और मर गया। क्या हुआ? यह मेंढक चौबीस घंटे में राजी हो गया।

यह मेंढक एकदम से गरम पानी में डाला गया तो छलांग लगा कर बाहर निकल गया। अगर अठारह सौ साल में या दो हजार साल में या चार हजार साल में एक बात बदलती हो तो समाज बदलता नहीं था, बल्कि उस बदलाहट को आत्मसात कर लेता था, राजी हो जाता था, ठहरा रहता था।

अब बदलाहट इतनी तीव्र है कि हम बदल भी नहीं पाते कि बदलाहट हो जाती है। अब बदलाहट करीब-करीब कपड़ों के फैशन की तरह है। अब जिंदगी में ज्ञान जो है वह ऐसा हो गया है कि आप कपड़े बनवा नहीं पाते कि वे आउट ऑफ फैशन हो जाते हैं।

मैंने सुना है कि एक आदमी रास्ते से पेरिस की भागा हुआ जा रहा था। और लोगों ने उससे पूछा कि इतनी तेजी क्या है? उसने कहा, मैं अपनी पत्नी के कपड़े लेकर जा रहा हूं। उन्होंने कहा, फिर भी इतनी जल्दी क्या है? उसने कहा, इसके पहले कि फैशन न बदल जाए मुझे घर पहुंच जाना जरूरी है।

कभी हमने नहीं सोचा था कि फैशन की तरह ज्ञान बदल जाएगा। अब ज्ञान फैशन से भी तेजी से बदल रहा है। इसलिए आज विज्ञान की कोई बड़ी किताब लिखनी मुश्किल हो गई है। छोटी किताबें लिखी जा रही हैं। किताबें ही मुश्किल हो गई हैं।

असल में, पत्रिकाओं में विज्ञान की खोजों की खबर दी जा रही है। क्योंकि जब तक मोटी किताब लिखी जाए तो मोटी किताब को लिखने में भी कम से कम वर्ष भर लगेगा। वर्ष भर में जो हमने लिखा है वह पिछड़ जाएगा।

ज्ञान का जो एक्सप्लोजन है, यह जो ज्ञान का विस्फोट है, इसने सभी स्थिर समाजों के प्राण कंपा दिए हैं। बदलने की हिम्मत नहीं, बदलने की आदत नहीं, बदलने का अनुभव नहीं, और बदलाहट इतने जोर से टूटी है कि या तो, या तो हम अंधे हो जाएं और दुनिया से अपने को तोड़ लें और अपने कुएं में बंद हो जाएं या फिर हमें जोर से बदलना पड़ेगा।

टूटने का भी कोई उपाय नहीं है, अपने कुएं में बंद होने का भी कोई रास्ता नहीं है। दीवालें खड़ी करके भी हम दुनिया के ज्ञान को रोक नहीं सकते। वह ज्ञान आएगा ही। और अगर हम रोकेंगे तो हम मरेंगे। बिना ज्ञान के भी मर जाएंगे। वह अज्ञान भी हमारी मौत बन जाएगा।

यह जो ज्ञान का विस्फोट है इसने एक और कठिनाई पैदा की है, वह कठिनाई भी खयाल में ले लेनी जरूरी है, तो 'भारत किस ओर' उसे समझने में आसानी हो जाएगी।

वह यह कठिनाई हुई है कि पुरानी दुनिया में बूढ़ा आदमी सदा ही ज्यादा जानता था। शिक्षक विद्यार्थी से हमेशा अनिवार्य रूप से ज्यादा जानता था। बाप बेटे से हमेशा ज्यादा जानता था। मां बेटी से हमेशा ज्यादा जानती थी। स्वभावतः, क्योंकि इतनी कम बदलाहट होती थी कि जिस आदमी के पास ज्यादा अनुभव था वही ज्यादा ज्ञानी था। अब बदलाहट इतनी तेजी से होती है कि जिस आदमी के पास जितना पुराना ज्ञान है वह उतना ही अज्ञानी हो जाता। आज शिक्षक और विद्यार्थी के बीच बहुत फासला नहीं है। अक्सर तो एक घंटे का फासला होता है। घंटे भर पहले वह तैयार करके आया होता है। बस उतना ही फासला होता है। और जब शिक्षक घंटे भर स्कूल या कालेज में पढ़ा चुका होता है तो विद्यार्थी और शिक्षक बराबर ज्ञान की स्थिति में आ गए होते हैं। और अगर कोई बहुत प्रतिभाशाली विद्यार्थी हो तो शिक्षक से ज्यादा जान सकता है। उसकी कोई कठिनाई नहीं रह गई। बेटा बाप से ज्यादा जानता है, क्योंकि बाप तीस साल पहले यूनिवर्सिटी से निकला होता है। बेटा तीस साल बाद यूनिवर्सिटी से आता है। तीस साल में ज्ञान नये आकाश छू लेता है। नई उपलब्धियां हो जाती हैं।

हमेशा पहली दुनिया में बेटे ने बाप से पूछा था। लेकिन बहुत ज्यादा दिन वह दूर नहीं है जब हमेशा बाप को बेटे से पूछना पड़ेगा कि नया खयाल क्या है? नई स्थिति क्या है? नई समझ क्या है? नया सोच क्या है? नया विचार क्या है? नई उपलब्धि क्या है? और बहुत हैरानी न होगी कि हमें बूढ़े आदमियों को वापस रिफ्रेसर कोर्सिज के लिए यूनिवर्सिटीज में भेजना पड़े। अभी इस संबंध में सुझाव चलता है। पश्चिम के बहुत बुद्धिमान

लोग यह सुझाव दे रहे हैं कि अगर पिता को अपना पिता की हैसियत बनाए रखनी है तो उसे बेटे के ज्ञान से निरंतर परिचित होना जरूरी हो गया है। बेटा जो जान रहा है उसे जान लेना जरूरी हो गया है।

यह जो बेटे के पास, नई उम्र के आदमी के पास ज्यादा ज्ञान हो गया है इससे बड़ा उपद्रव पैदा हुआ है। स्वभावतः बाप जब सब कुछ जानता था और बेटा कुछ भी नहीं जानता था तो बाप के प्रति एक आदर था, जो डगमगा गया है, वह आदर अब आगे नहीं रह सकता। क्योंकि वह आदर ज्ञान पर खड़ा था। बाप ज्यादा जानता था बेटा कम जानता था। इसलिए बाप आद्रत था। अब वह बात खत्म हो गई है। गुरु और शिष्य के बीच हजारों साल का फासला था। गुरु जानता था हजारों साल के अनुभव को और शिष्य को कुछ भी पता नहीं था। तो शिष्य गुरु के चरणों में सिर रखता था। अब यह सिर रखना बहुत मुश्किल हो गया। क्योंकि अब फासला, डिस्टेंस बहुत कम है, न के बराबर है। नहीं रह गया है।

यह जो स्थिति है इस स्थिति ने पहली दफा यह सवाल ठीक से उठा दिया है—भारत किस ओर? अब भारत कहां जाएगा? क्या भारत को अब भी भारत का बूढ़ा आदमी दिशा देगा? अगर देगा, तो भारत कहीं भी नहीं जाएगा। वह जहां था वहीं रहेगा। बूढ़े आदमी की हिम्मत बदलाहट की कम हो जाती है। बुढ़ापे का मतलब ही यही है बायोलाजिकली भी, जो जीवशास्त्र आपमें से पढ़ते होंगे वे भी कहेंगे कि बुढ़ापे का मतलब ही यह है कि बदलाहट की क्षमता कम हो गई, बूढ़े की नसें सख्त हो जाती हैं अब बदल नहीं सकतीं।

बच्चा बदल सकता है, लोचपूर्ण है, फ्लेक्जीबल है। अगर बूढ़े भारत को दिशा देंगे तो वे दिशा नहीं देंगे। भारत जैसा सरोवर था तालाब वह उसे वैसा ही बनाए रखना चाहेंगे। लेकिन अगर बच्चे भारत को दिशा देंगे तो भी कम खतरा नहीं है। क्योंकि बूढ़े दिशा देंगे तो तालाब सड़ जाएगा, बंद रह जाएगा, हम दुनिया के साथ गति न कर सकेंगे। और अगर बच्चों ने दिशा दी तो सिर्फ अनार्की पैदा होगी अराजकता पैदा होगी, हजार दिशाएं हो जाएंगी। नदी नहीं बनेगी हजार छोटी-छोटी धाराएं टूट जाएंगी, समाज बिखर जाएगा, व्यवस्था खंडित हो जाएगी, और एक अराजकता, एक अनार्की पैदा हो जाएगी।

अगर हम बूढ़े से दिशा मांगें, तो डेडनेस परिणाम में आएगी, मृत्यु, एक मुर्दा समाज। और अगर हम बच्चों से दिशा मांगें, तो एक अनार्की पैदा होगी, एक अराजक समाज। ये दोनों ही विकल्प चुनने जैसे नहीं हैं। अगर बूढ़े दिशा देंगे तो भारत के अतीत को ही वे भारत पर फिर से थोपना चाहेंगे। वे फिर राम-राज्य ही लाना चाहेंगे। हालांकि कोई चीज कभी लौटाई नहीं जा सकती, जो गई वह गई। इतिहास पुनरुक्त नहीं होता है। इस जगत में कुछ भी लौटता नहीं, जो गया वह गया। पुनरुक्ति नहीं होती। राम-राज्य लौटाया नहीं जा सकता है। लेकिन अगर बूढ़े भारत के भविष्य की भी कल्पना करेंगे तो राम-राज्य की भाषा में करेंगे। अतीत ही उनके लिए नक्शा होगा। वे उसी नक्शे को भारत पर थोपना चाहेंगे।

यह संभव नहीं है। इस चेष्टा में भारत के विकास की संभावनाएं क्षीण होंगी। अगर भारत के बच्चे भारत को दिशा देना चाहेंगे, तो स्वभावतः वे भारत के ऊपर पश्चिम को थोपना चाहेंगे। क्योंकि आज भारत के बच्चे के पास जो भी ज्ञान उपलब्ध हो रहा है वह पश्चिम से उपलब्ध हो रहा है। और ध्यान रहे, जिस तरह अतीत को नहीं ओढ़ा जा सकता उसी तरह किसी दूसरी संस्कृति और दूसरे समाज में पनपे हुए खयालों को भी हम कभी

आत्मसात नहीं कर सकते हैं। वे कभी हमारी आत्मा नहीं बन सकते हैं। हम कपड़े तो बदल सकते हैं दूसरों से, आत्माएं नहीं बदल सकते हैं। आत्माओं की जड़ें होती हैं, रूट्स होती हैं, लंबी उसकी कथा और यात्रा होती है। अगर भारत के बूढ़ों ने भारत को दिशा दी तो भारत अपने अतीत को ओढ़ने की कोशिश करेगा। जो असंभव है। और अगर भारत के बच्चों ने भारत को दिशा दी तो भारत पश्चिम को ओढ़ने की कोशिश करेगा। जो कि उतना ही असंभव है। न तो हम पूरब के अतीत को ओढ़ सकते हैं और न पश्चिम के वर्तमान को ओढ़ सकते हैं। फिर भारत के लिए उपाय क्या है?

साधारणतः ये दो ही विकल्प दिखाई पड़ते हैं। या तो हंड्रेड परसेंट भारतीय रहो, सौ प्रतिशत भारतीय, कोई होता नहीं दुनिया में, होगा तो मरा हुआ आदमी होगा। सौ प्रतिशत भारतीय बनाना चाहेगा भारत का बूढ़ा मन और या फिर सौ प्रतिशत पाश्चात्य वेस्टर्न बनाना चाहेगा भारत का नया मन। ये दोनों ही विकल्प मेरे लिए सार्थक नहीं मालूम होते। और ये दो ही विकल्प दिखाई पड़ रहे हैं। और आज जो संघर्ष है भारत में वह इन दो विकल्पों, दो अल्टरनेटिवस के बीच है। बूढ़े खींच रहे हैं पीछे की तरफ, जवान खींच रहे हैं पश्चिम की तरफ। लेकिन आगे की तरफ इनमें से कोई भी ले जाने वाला नहीं है। न तो पश्चिम की तरफ जाने से हम आगे जाएंगे और न पूरब के पीछे की तरफ जाने से हम आगे जाएंगे। आगे जाना बहुत और बात है। और उस और बात के लिए दो-तीन सूत्र आपसे कहना चाहूंगा।

पहली बात तो यह कहना चाहूंगाः बच्चों के पास ज्ञान कितना ही ज्यादा हो जाए; अनुभव ज्यादा नहीं हो पाता है। नालेज कितनी भी बच्चों के पास ज्यादा हो जाए; विज़डम कभी भी ज्यादा नहीं हो पाती है। सूचनाएं कितनी ही ज्यादा मिल जाए, लेकिन जीवन के अनुभूति की गंभीरता उनके पास नहीं होती है। अगर हम आज बुद्ध को फिर से पैदा कर पाएं तो शायद मैट्रिक क्लास पास होना उन्हें बहुत मुश्किल पड़ेगा, लेकिन फिर भी, आज जमीन पर आदमी खोजना मुश्किल होगा जो उतना ज्ञानी हो। सूचनाओं में हमारे बच्चे भी उनसे परीक्षा में आगे निकल जाएंगे, लेकिन अनुभव, विज़डम, प्रज्ञा में हमारे बूढ़े भी उनके पीछे रह जाएंगे।

ज्ञान के संबंध में विस्फोट हो गया है। और बच्चों के पास ज्यादा ज्ञान बढ़ता जा रहा है लेकिन अनुभव आज भी उम्र के साथ है, अनुभव आज भी वृद्ध के पास है। जीवन के अनंत-अनंत अनुभव हैं, जो सिर्फ स्कूल से नहीं मिलते; जीवन में जीने से ही मिलते हैं। जो ज्ञान यूनिवर्सिटी में मिल जाता है उस मामले में बूढ़ा पीछे पड़ गया है, पड़ता ही रहेगा अब आगे। लेकिन जो ज्ञान जीवन से मिलता है उस ज्ञान के संबंध में बूढ़े के पास अब भी अनुभूति है। वह अनुभूति उपयोग में लाई जानी जरूरी है। कहीं ऐसा न हो कि बूढ़े की इनफार्मेशन की कमी, हमारे मन में उसके अनुभव की कमी बन जाए। अगर ऐसा हुआ तो खतरा होगा।

इससे उलटा भी न हो कि सिर्फ ज्ञान का बढ़ती हुई मात्रा कहीं हमें अनुभव की प्रतीति न कराने लगे। बच्चों के पास बढ़ता हुआ ज्ञान है लेकिन यह ज्ञान ठीक वैसा ही है जैसा कंप्यूटर के पास होता है। ये बच्चों के दिमाग में डाली गई सूचनाएं हैं जिन्हें उन्होंने परीक्षाओं देकर तय कर दिया है कि उन्हें मालूम है। लेकिन इससे ज्ञान नहीं बढ़ता, केवल स्मृति ही बढ़ती है, केवल याददाश्त ही बढ़ती है। ज्ञान नहीं बढ़ता। ज्ञान जीवन के, निरंतर के अनुभव से धीरे-धीरे आता; उसकी कोई परीक्षा नहीं होती, उसकी कोई क्लास नहीं होती और उसके लिए कोई सर्टिफिकेट नहीं होता।

और जिन चीजों के लिए सर्टिफिकेट होते हैं, परीक्षाएं होती हैं, वे केवल इनफार्मेशन के संबंध में सही हैं, जीवन के संबंध में सही नहीं हैं। और ऐसा हो सकता है कि एक आदमी प्रेम के संबंध में सारी बातें जान ले और फिर भी प्रेम उसने न जाना हो। और ऐसा भी हो सकता है कि जिस आदमी ने प्रेम जाना हो उसे प्रेम के संबंध में कही गई बातों का कुछ भी पता न हो। ऐसा हो सकता है कि एक आदमी तैरने के संबंध में लिखे गए सारे शास्त्र पढ़ ले, परीक्षाएं पास कर ले, और यह भी हो सकता है कि वह तैरने के संबंध में एक पीएच.डी. की थीसिस भी लिखे और डाक्टर हो जाए, लेकिन इस आदमी को नदी में भूल से भी धक्का मत दे देना, क्योंकि वह आदमी तैर नहीं पाएगा। उसे तैरने के संबंध में पता है, तैरने का पता नहीं है।

एंड टू नो समथिंग, एंड टू नो अबाउट समथिंग। इनमें जमीन-आसमान का फर्क है।

कोई चीज जाननी और किसी चीज के संबंध में जानना, बहुत बुनियादी फर्क की बातें हैं। जब हम जीवन को जानते हैं तो ज्ञान पैदा होता है और जब हम जीवन के संबंध में जानते हैं तो सिर्फ सूचना इनफार्मेशन पैदा होती है। नई पीढ़ियों के पास सूचनाएं ज्यादा हैं, अनुभव बिलकुल नहीं हैं। वृद्धों के पास, पुरानी पीढ़ी के पास, ओल्डर जनरेशन के पास अनुभव है, सूचनाओं में वे बिलकुल पिछड़ गए हैं। बूढ़े आदमी के अनुभव के उपयोग की जरूरत है, नये आदमी की सूचनाओं के उपयोग की जरूरत है।

यह करीब-करीब स्थिति वैसी है जैसा कि एक पंचतंत्र की एक छोटी सी कहानी जरूर ही सुनी होगी—कि एक जंगल में आग लग गई है। और एक लंगड़ा और एक अंधा आदमी उस जंगल से बचने की कोशिश कर रहे हैं। स्वभावतः जब आग लगी हो तो आदमी अपने बचाने की कोशिश में लगता है। अंधा भाग रहा है। लेकिन अंधा अगर आग में भागेगा तो बचने की उम्मीद कम मरने की उम्मीद ज्यादा है। बेहतर है कि अंधा जहां है वहीं बैठा रहे तो शायद बच भी जाए। लेकिन लगी हुई आग के जंगल में अंधे के भागने की कोशिश बड़ी खतरनाक है। अंधा भाग कर बचेगा कैसे? क्योंकि जिसे दिखाई नहीं पड़ता वह लगे हुए आग से भरे हुए जंगल में बचने के उपाय में सिर्फ मर सकता है। लेकिन अंधा भी भाग रहा है। लंगड़े को दिखाई पड़ रहा है लेकिन भाग नहीं सकता।

कहानी है पंचतंत्र की। बड़े बुद्धिमान रहे होंगे वे अंधे और लंगड़े। उन दोनों ने साथ कर लिया और सहयोग किया। उन्होंने एक कोआपरेशन किया। और उन्होंने यह तय किया कि अंधा आदमी चले और लंगड़ा आदमी अंधे के कंधों पर बैठ जाए। लंगड़ा आदमी देखे और अंधा आदमी चले, और वे दोनों आदमी एक आदमी की तरह व्यवहार करें, दो आदमियों की तरह नहीं। वे एक-दूसरे के लिए कांप्लीमेंट्री हो जाएं, वे एक दूसरे के लिए परिपूरक हो जाएं। वे अंधे और लंगड़े जंगल के बाहर आ गए थे। आश्चर्य नहीं कि बाहर आ गए। क्योंकि बाहर आने का जो सुगमतम उपाय हो सकता था उसका उन्होंने उपयोग किया था।

मेरी दृष्टि में भारत आज करीब-करीब पंचतंत्र की कहानी की स्थिति में है। एक तरफ लंगड़े बूढ़े हैं, जिनके पास आंखें हैं, दूर तक देखने का अनुभव है। दूसरी तरफ ताकत से भरे हुए जवान हैं, जिनके पास दूर तक दौड़ने के लिए मजबूत पैर हैं, लेकिन अनुभव की आंखें नहीं हैं। ये लंगड़े नक्सलाइट हुए जा रहे हैं। और ये बूढ़े मंदिरों में भजन-कीर्तन कर रहे हैं। इन दोनों के बीच कोई कोआपरेशन नहीं है। इन दोनों के बीच कांफ्लिक्ट है, इन दोनों

के बीच विरोध है, इन दोनों के बीच संघर्ष है। इन दोनों के बीच ऐसा संबंध है जैसा दुश्मनों के बीच होता है। मित्रों के बीच नहीं।

भारत किस ओर? यह निर्णय रास्ते का कम और चलने वालों के बीच सहयोग का ज्यादा है। और अगर जवान और बूढ़े नई और पुरानी पीढ़ी के बीच एक सहयोग हो सकें, तो बहुत कठिन नहीं है कि हम तय कर लें कि किस ओर? लेकिन तय करना बेकार है। क्योंकि जो तय कर सकते हैं, जो देख सकते हैं उनके पास पैर नहीं और जो चल सकते हैं वे आंख वालों की बात सुनने को राजी नहीं।

भारत अगर मरेगा तो चीन के हमले से शायद बच भी जाए, पाकिस्तान से उसे कोई बड़ा खतरा नहीं; तीसरा महायुद्ध अगर दुनिया में हो तो शायद भारत में तो शायद ही हो। उसकी कोई संभावना नहीं। लेकिन भारत अगर मरेगा तो वह जो जनरेशन गैप है, वह जो भारत की दो पीढ़ियों के बीच बढ़ता हुआ फासला है, टूटते हुए ब्रिज, टूटते हुए सेतु हैं, बूढ़े और जवान के बीच कहीं कोई बोलचाल नहीं रह गया, कोई कम्युनिकेशन नहीं है।

मैं बहुत सैकड़ों घरों में ठहरता हूं। लेकिन मुझे ऐसा दिखाई नहीं पड़ता कि बाप और बेटे के बीच कोई बोलचाल की स्थिति है। ऐसा नहीं कि वे नहीं बोलते, जरूर बोलते हैं। लेकिन बोलने में और बोलचाल में बहुत फर्क है। बाप जरूर बोलता है बेटे से, जब उसे कोई उपदेश देना होता है। और ध्यान रहे, दिए गए उपदेश कभी भी नहीं लिए जाते हैं। और यह भी ध्यान रहे कि दिए गए उपदेश मन में बड़ा क्रोध पैदा करते हैं। इसलिए बाप उपदेश देता रहता है, बेटा कान बंद करके सुनता रहता है। बेटे भी बाप से कभी मिलते हैं, जब उनकी जेब खाली होती है और बाप के जेब पर हाथ रखना होता है। लेकिन जिसकी भी जेब पर आप हाथ रखते हैं उससे बातचीत नहीं हो पाती। उससे बहुत मुश्किल हो जाता। ऐसे बाप-बेटे घर में बच कर निकलते हैं। पहले हम सोचते थे, घर वह जगह है जहां सारे लोग साथ रहते हैं। अब मैं हजारों घरों को देख कर आपसे कहना चाहता हूंः घर वह जगह है जहां सारे लोग एक-दूसरे से बच कर रहते हैं। बाप डरा रहता है बेटा सामने न पड़ जाए, कोई उपद्रव न हो जाए। बेटा डरा रहता है कि बाप सामने न पड़ जाए कोई उपद्रव न हो जाए। बेटी मां से बच रही है, बहू सास से बच रही है, भाई भाई से बच रहा है, वे सब बच रहे हैं। घर वह जो जगह है जहां हम एक-दूसरे से बच कर रहते हैं।

घर वह कन्वीनियंस है जहां हम साथ भी होते हैं और साथ होते भी नहीं। घर एक सुविधापूर्ण व्यवस्था है जिसमें साथ रहने का धोखा पैदा होता है और कोई साथ नहीं होता। यह जो भारत की दो पीढ़ियों के बीच बढ़ता हुआ अंतराल है, इसके नाम हजार होंगे—यह कभी हड़ताल बनता है, कभी पथराव बनता है, कभी घेराव बनता है। इसके नाम हजार होंगे लेकिन इसकी पहचान एक है। और वह पहचान यह है कि भारत के अतीत, भारत के बूढ़े, और भारत के भविष्य, भारत के जवान एक-दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े हुए हैं। वे एक-दूसरे से दूर हटते जा रहे हैं।

और देश की सारी की सारी शक्ति उनके इस विरोध में नष्ट और क्षीण हो रही है। यदि हम इन दो पीढ़ियों के बीच संवाद ला सकें, लाया जा सकता है। और मैं मानता हूं प्रत्येक शिक्षण संस्था को दो पीढ़ियों के बीच संवाद लाने की कोशिश करनी चाहिए। जहां बाप-बेटे, मां और बेटियां आमने-सामने बैठ कर खुले दिल से हार्ट टू हार्ट हृदय की बात कर सकें, और सीधी और साफ बात कर सकें। एक-दूसरे को अपनी बात सीधी और साफ

कह सकें, बिना किसी भय के। जो सच है उसे हम एक-दूसरे से बात कर सकें। तो शायद अंधे और लंगड़े के बीच संबंध जोड़ा जा सकता है। अभी भी देर नहीं हो गई। और अगर वह संबंध जुड़ जाए तो भारत की दिशा बहुत स्पष्ट है।

भारत की दिशा स्पष्ट है इस अर्थों में कि हम अपने अतीत को तो कभी बदल नहीं सकते। और अतीत हमारे खून का हिस्सा हो गया होता है, हमारी हड्डी, हमारी मांस-मज्जा बन जाता हैं। अतीत वह नहीं है जो इतिहास की किताबों में लिखा है, अतीत वह है जो हमारे खून में बैठा है। इतिहास की किताबें जल जाएं तो भी अतीत मिट नहीं जाएगा, हम अपने अतीत हैं। वी ऑर अवर ओन पास्ट। हम सारे अतीत को अपने में समाए हुए खड़े हैं। इसलिए कोई भी अतीत से बिलकुल टूटने की कोशिश करे तो स्युसाइडल है, मरेगा, बच नहीं सकता। क्योंकि हड्डी मेरी अतीत की है, मांस मेरा अतीत का है, खून मेरा अतीत का है। मैं खुद मेरे पूरे अतीत से पैदा हुआ हूं। वह जो लंबा पास्ट है, जिसमें करोड़ों लोगों का हाथ है—वृक्षों का, पशुओं का, पक्षियों का, आकाश का, उस सबका मैं अंतिम छोर हूं। उस बड़ी शृंखला की आखिरी कड़ी हूं।

हम सब अपने अतीत हैं। काश हम नई पीढ़ी को यह समझा पाएं कि अतीत हमारे जीवन का आधार है। और काश हम पुरानी पीढ़ी को यह समझा पाएं कि हम सिर्फ अतीत नहीं हैं, हम अपने भविष्य भी हैं। अतीत वह है जो हम हो गए, भविष्य वह है जो हम होंगे, जो हम हो सकते हैं। अतीत हमारा आधार है, भविष्य हमारा शिखर है। अतीत हमारी बुनियाद है, भविष्य हमारे मंदिर का स्वर्ण-शिखर है, जो कल हम चढ़ाएं। अतीत हम हो गए हैं, भविष्य हमें होना है। और कोई शिखर मंदिर का बुनियाद के बिना नहीं होता। और कोई फूल जड़ के बिना नहीं खिलता। जड़ अतीत है, फूल भविष्य है।

काश हम भारत की नई पीढ़ी को समझा पाएं कि अतीत तुम्हारा खून, तुम्हारी हड्डी है, उससे तुम टूट नहीं सकते। तुम बुद्ध की प्रतिमा तोड़ो, तुम विद्यासागर की प्रतिमा गिराओ, तुम मंदिर जला दो, तुम मस्जिदों में आग लगा दो, तुम गुरुद्वारों की तरफ पीठ कर लो, तुम गीता, कुरान बाइबिल भूल जाओ, सब हो जाए लेकिन फिर भी अतीत से तुम टूट नहीं सकते, क्योंकि तुम्हारा होना ही, तुम्हारे होने में ही, दि व्हेरी बीइंग, उसमें ही तुम्हारा अतीत समाविष्ट है। उसमें बुद्ध मौजूद हैं, उसमें महावीर, रामकृष्ण, नानक, सब उसमें मौजूद हैं। सब किताबें मिट जाएं, सब अतीत खो जाए, तो भी हमारे खून के हिस्से हैं।

अतीत से हम मुक्त नहीं हो सकते हैं, वह है। मैं अब कुछ भी उपाय करूं अपने पिता से कैसे मुक्त हो सकता हूं। पिता का दुश्मन हो जाऊं, मैं उनकी हत्या कर दूं, तो भी मैं पिता से मुक्त नहीं हो सकते हैं। माना कि मां का मैं हिस्सा हूं, लेकिन मां तक ही सीमित नहीं रह सकता, अन्यथा मेरा कोई जीवन नहीं होगा। अतीत हमारा है लेकिन हम अतीत को भी ट्रांसेंड करते हैं, पार जाते हैं। वही हमारा भविष्य है। काश हम बूढ़ी पीढ़ी को समझा सकें कि भविष्य की तरफ फैलती हुई शाखाओं को अतीत में बांधो मत। मुक्त करो। अतीत की जड़ें फूलों के लिए रस दें, फूलों को बांधने वाली कड़ियां और जंजीरें न बन जाएं। तो भारत की दिशा बहुत साफ है। भारत को अपने पूरे अतीत को पचा कर अपने पूरे भविष्य को खोजना है। यह भविष्य अतीत जैसा नहीं होगा। नहीं हो सकता। यह भविष्य पश्चिम जैसा भी नहीं हो सकता। क्योंकि पश्चिम जैसा हमारा अतीत नहीं है। इसलिए ये फूल पश्चिम में जो खिले हैं, हमारी जिंदगी में ठीक वैसे नहीं खिल सकते जैसे वहां खिले हैं। और अगर हमने

खिलाने की कोशिश की तो जिन फूलों की जड़ें हमारे पास नहीं हैं, क्योंकि अगर पश्चिम के पास अरस्तू की बुद्धि है, सुकरात का तर्क है, कांट और हिगल और फ्यूरवाक और मार्क्स और रसल की समझ है, तो हमारे पास बहुत दूसरे तरह के लोगों की हमारे खून में धाराएं हैं। बुद्ध सुकरात जैसे आदमी नहीं हैं। महावीर कांट जैसा व्यक्तित्व नहीं हैं। रामकृष्ण, नानक, कबीर, मीरा, ये हिगल और कांट और मार्क्स जैसे लोग नहीं हैं। हमारे पास और ही तरह की जड़ें हैं।

तो अगर हमने पश्चिम का फूल ठीक पश्चिम की नकल में खिलाना चाहा तो वह प्लास्टिक का फूल होगा, असली फूल नहीं हो सकता। वह बाजार से खरीदा गया कागज का फूल होगा। इसलिए जब कोई भारतीय आदमी ठीक पश्चिमी हो जाता है तो एकदम कागजी हो जाता है। उसकी जिंदगी में सिर्फ कागज होते हैं। वे सब ऊपर-ऊपर होते हैं।

मेरे एक मित्र जर्मनी में थे बीस वर्षों से। वे हिंदी भाषा बोलना भूल गए। जर्मन ही उनकी मातृभाषा हो गई। वे यहां आते थे तो हिंदी समझ भी नहीं पाते थे। बहुत छोटे थे तब जर्मनी गए, मुश्किल से नौ साल के थे। स्वभावतः जर्मन भाषा उनके प्राणों में भर गई। फिर पिछले वर्ष एक बड़ी अजीब घटना घटी कि वे बीमार हो गए। और बीमारी इतनी घातक हुई कि वे कोमा में, बेहोशी में चले गए। तो उनके भाइयों को यहां से जर्मनी जाना पड़ा। अस्पताल में उनके भाइयों को रुकने के लिए आज्ञा न थी। दिन भर साथ रहते रात छोड़ देते। लेकिन डाक्टरों ने कहा कि रात बड़ी अजीब हालत होती है, कभी-कभी आपका भाई होश में आ जाता है तो न मालूम किस भाषा में बोलने लगता है, जिसे हम समझ नहीं पाते। तो आप रुकें। बड़ी हैरानी की बात, रात जब वह बेहोशी उनकी टूटती तो वे हिंदी में बोलने लगते। वह जो बीस साल में भी सीखा है ऊपर से, वह भी प्राणों के बहुत गहरे में नहीं जा पाता। जब वे बेहोशी में बड़बड़ाते तो हिंदी में और जब होश में बोलते तो जर्मन में। वह जो प्राणों के गहरे में जड़ें हैं वे वहां होती हैं।

मेरे एक मित्र मुझे लिखते थे कि दूसरे मुल्क में जाकर एक बड़ी कठिनाई होती है, वह कठिनाई साधारणतः अनुभव नहीं आती, अगर किसी के प्रेम में पड़ जाओ तो दूसरे की भाषा में बोलना बहुत कठिन हो जाता है या किसी से झगड़ा हो जाए तो भी दूसरे की भाषा में बोलना बहुत कठिन हो जाता है। दुकान चलानी हो, काम चलाना हो, चल जाता है, लेकिन प्रेम और झगड़े में, लगता है अपनी ही भाषा में बोला जाए।

एक छोटी सी कहानी मुझे याद आती है। सुना है मैंने कि राजाभोज के दरबार में एक पंडित आया। और वह पंडित तीस भाषाएं बोलता था। और इस भांति बोलता था कि लगता था प्रत्येक भाषा उसकी मातृ-भाषा है। बड़ी कठिन उपलब्धि है। उसने चैलेंज, उसने चुनौती की राजाभोज के दरबारियों को कि तुममें से अगर कोई मेरी मातृ-भाषा पहचान ले तो मैं लाख स्वर्ण मुद्राएं भेंट करूंगा। और अगर नहीं पहचान पाया प्रतियोगी तो उसे दो लाख स्वर्ण मुद्राएं मुझे देनी पड़ेंगी।

राजाभोज के लिए बड़े अपमान की बात थी। भाषा बोलना तो दूर, उसकी भाषा पहचानने के लिए उसने यह चुनौती दी थी। भोज के दरबार के पंडित रोज हारने लगे, वह रोज भाषाएं बोलता और जो भी भाषा मातृ-भाषा बताई जाती वह कहता कि नहीं। कालिदास चुप थे। भोज ने कहा कि तुम प्रतियोगिता में उतरो अन्यथा हार निश्चित है। कालिदास ने कहा, मैं तैयारी कर रहा हूं। आखिरी पंडित भी हार गया।

कल कालिदास का ही नंबर है। राजा भोज ने कहा, तैयारी हो गई या हम हारेंगे। कालिदास ने कहा, मैं तैयारी कर रहा हूं। फिर वह पंडित बाहर निकला। सीढ़ियों पर खड़े हुए वे बात करते थे। कालिदास ने उस पंडित को जोर से धक्का दे दिया। महल की सीढ़ियां थीं, वह दस-बारह सीढ़ियां नीचे जाकर गिरा। और गुस्से में जो पहले शब्द बोला, कालिदास ने कहा, माफ करना, यही तुम्हारी मातृ-भाषा है, इसके अलावा जानने का कोई उपाय न था। और धक्का देना अशिष्ट है। लेकिन हम सब उपाय करके देख चुके। तुम होश में तो जो भी बोल रहे हो, उससे तुम्हारे गहराई का पता नहीं चल सकता। लेकिन बेहोशी में, और क्रोध का क्षण बेहोशी का क्षण है, वह टेम्प्रेरी मैडनेस का क्षण है, जब कि स्थाई रूप से आदमी बेहोश हो जाता है। उस आदमी के मुंह से वह बात निकल गई जो उसकी मातृभाषा थी। मातृ-भाषा ही नहीं, मात्र संस्कृति भी, मातृ-भूमि भी, वह सब जो हमारी जड़ों में है हमारे गहरे में बैठा होता है। इसलिए पश्चिम को अगर हमने थोपा तो हम ऊपर से कागजी या प्लास्टिक के फूल लगाए हुए दिखाई पड़ेंगे, उनसे हमारे प्राण मजबूत नहीं होंगे।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि पश्चिम से सीखना नहीं है। पश्चिम से बहुत कुछ सीखना है। लेकिन पश्चिम में भी जो हुआ है उसको हमारी ही भूमि में खिलाना होगा। हमारे अतीत में ही पश्चिम के बीजों को खिलाना होगा। और तब एक नया भविष्य भारत के लिए पैदा होगा। जिसमें न तो भारत सौ प्रतिशत भारतीय हो सकता है और न भारत सौ प्रतिशत पश्चिमी हो सकता है। भारत बिलकुल एक नया ही सिंथेटिक, एक नई ही समन्वित संस्कृति होगा। जिसमें भारत का अतीत आधार बनेगा, पश्चिम की सारी खोजें निमित्त और सहयोग बनेंगी। और जो प्रकट होगा वह बिलकुल नया होगा। वह क्रास-ब्रीडिंग होगी।

पुराने लोग समझते थे कि क्रास-ब्रीड जो है बड़ी बुरी बात है। पुराने लोग समझते थे शंकर होना बड़ी बुरी बात है। लेकिन आधुनिक विज्ञान कहेगा कि क्रास-ब्रीड की बड़ी सामर्थ्य है।

अगर एक अंग्रेज सांड और हिंदुस्तानी गाय से बच्चा पैदा होता है तो उसके पास हिंदुस्तानी गाय की तो सारी क्षमताएं होती ही हैं, उसके पास अंग्रेज सांड की भी सारी शक्ति होती है। और वह जो बच्चा है वह हिंदुस्तानी गाय और अंग्रेज सांड दोनों से बेहतर होता है।

भारत किधर? तो मैं देखता हूं कि भारत का भविष्य पश्चिम के आधुनिक विज्ञान और भारत के अतीत में पैदा हुए धर्म, इनकी क्रास-ब्रीड से पैदा होगा। भारत का भविष्य, शंकर भविष्य होगा। लेकिन अगर करपात्री जी से या शंकराचार्य से पूछिएगा तो वे बहुत नाराज होंगे। वे कहेंगे कि शंकर! क्रास-ब्रीड! ये तो हम भ्रष्ट हो जाएंगे। हमें तो शुद्ध होना चाहिए।

लेकिन इस जगत में जितना विकास है वह सब क्रास-ब्रीडिंग है। सारा विकास। इस जगत में जितना विकास है उसमें जो शुद्ध रहना चाहेगा वह मरेगा, वह हिटलर जैसा पागल है। और इस जमीन पर बहुत कम पागल हुए हैं जो हिटलर जैसे पागल हों। बल्कि हिंदुस्तान में बहुत पागल हैं। जिनके दिमाग में हिटलरी सपने और खयाल हैं। जो समझते हैं शुद्ध हंड्रेड परसेंट भारतीय। हंड्रेड परसेंट भारतीय कुछ नहीं बच सकता। हां, सिर्फ मरघट हो सकता है हंड्रेड परसेंट भारतीय। एक मरघट हम बनाना चाहें तो मुल्क बन सकता है। और जो कहते हैं कि हंड्रेड परसेंट भारतीय नहीं, वे भी उतने ही गलत बात कहते हैं। क्योंकि अगर हम हंड्रेड परसेंट भारतीय नहीं होने का तय कर लें तो हम सिर्फ कागजी आदमी रह जाएंगे। कागज की नावें, जिनके पास कोई लंगर भी नहीं

है। जिनके पास कोई तट भी नहीं है जहां टिक कर खड़ी हो जाएं। जो सिर्फ हवा के झोंकों में और पानी की लहरों में डोलती रहेंगी और नष्ट हो जाएंगी।

भारत के सामने बहुत बड़े विचार की जरूरत है। भारत का पूरा अतीत समन्वित होना चाहिए और पश्चिम का समस्त शोध-विज्ञान समन्वित होना चाहिए। हमारे हृदय की सारी खोज और उनके तर्क की सारी प्रतिभा। अतीत पूरा और वर्तमान समग्र, अगर दोनों हम संयुक्त कर पाएं, संयुक्त कर सकते हैं, कोई कठिनाई नहीं; समझ के अतिरिक्त और कोई कठिनाई नहीं; एक अंडरस्टैंडिंग के अतिरिक्त और कोई कठिनाई नहीं। तो भारत एक बहुत ही नये फूल को जगत में खिला सकता है। और न केवल अपने लिए बल्कि सारे जगत के लिए एक सिंथेटिक कल्चर, एक संभवित संस्कृति का, एक संवेद संस्कृति का आदर्श बन सकता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। विस्तार की बात मैंने नहीं कही, डिटेल्स मैंने नहीं कहे। मैंने बहुत सूत्र की बात कही कि ये दो विकल्प हैं और दोनों विकल्प गलत हैं। और एक तीसरा विकल्प, एक थर्ड अल्टरनेटिव चुना जाना चाहिए। जिसमें हम हम भी होंगे और हम सारे जगत को भी अपने में समा लेंगे। तब भारत के पास एक शक्तिशाली, ऊर्जावान जीवंत संस्कृति का जन्म हो सकता है। लेकिन अगर हमने इन दो पीढ़ियों के बीच की खाई पूरी नहीं की, तो भारत किस ओर? तो सिवाय मरघट के तीर और कहीं नहीं जाता हुआ दिखाई पड़ेगा। भारत मर सकता है अगर जिद की पुराना रहने की, अगर जिद की बिलकुल नया हो जाने की तो भारत मर सकता है। अगर लंगड़े और अंधे ने सहयोग न किया, अगर पुरानी और नई पीढ़ी एक-दूसरे के कंधे पर न बैठी तो भारत मर सकता है। भारत को अगर जीवंत भविष्य देना है तो एक समन्वित संस्करण, एक समन्वित सिंथेटिक कल्चर की जरूरत है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मेरी बातें माननी जरूरी नहीं हैं, मैं कोई उपदेशक नहीं हूं। मेरी बातें सुनी यह बड़ी कृपा। इन पर सोच लेंगे तो पर्याप्त। सोचना, मेरी बातें गलत हो सकती हैं, क्योंकि किसी आदमी को इस भ्रम में होने की जरूरत नहीं है कि उसकी सभी बातें सही हों। यह भी पुराने आदमी का पागलपन था। कोई सर्वज्ञ नहीं है। हो भी नहीं सकता है। होने का खयाल सिर्फ विक्षिप्तता है। तो मैंने जो कहा जैसा मुझे दिखाई पड़ता है। लेकिन मुझे जो दिखाई पड़ता है हो सकता है आपको दिखाई न भी पड़े। सिर्फ मेरे साथ देखने की कोशिश करना, हो सकता है उसमें से कुछ आपको भी दिखाई पड़े। और जो आपको भी दिखाई पड़ जाए वह सत्य आपके जीवन को रूपांतरित करने का कारण बन जाता है।

और आप तो आने वाली पीढ़ी हैं अगर इसमें से कुछ भी सत्य आपको दिखाई पड़ सके और भारत के अतीत को जमीन बना कर, जगत के वर्तमान को बीज बना कर अगर हम इस देश के भविष्य के फूल खिला सकें, तो यह देश बहुत दिन से दीन-दरिद्र, दुखी और पीड़ित है। इस देश में भी स्वर्ग का आगमन हो सकता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

एक सवाल पूछा गया है, और वह सवाल वही है जो आपके प्राचार्य महोदय ने भी कहा। सरल दिखाई पड़ती है सैद्धांतिक रूप से जो बात, उसको आचरण में लाने पर तत्काल कठिनाइयां शुरू हो जाती हैं।

कठिनाइयां हैं, लेकिन असंभावनाएं नहीं हैं। डिफिकल्टीज हैं, इंपासिबिलिटीज नहीं हैं। कठिनाइयां तो होंगी ही क्योंकि सवाल बहुत बड़ा है। और अगर हम सोचते हों कि कोई ऐसा हल मिल जाएगा जिसमें कोई कठिनाई नहीं होगी, तो ऐसा हल कभी भी नहीं मिलेगा। कठिनाइयां हैं लेकिन कठिनाइयों से कोई सवाल हल होने से नहीं रुकता, जब तक कि असंभावनाएं न खड़ी हो जाएं।

तो एक तो मैं यह कहना चाहता हूं कि कठिनाइयां निश्चित हैं। थोड़ी नहीं बहुत हैं। लेकिन हल की जा सकती हैं क्योंकि कठिनाइयां ही हैं और कठिनाइयां हल करने के लिए ही होती हैं। लेकिन अगर हम कठिनाइयों को गिनती करके बैठ जाएं, घबड़ा जाएं, तो फिर एक कदम आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता है।

मैंने सुना है कि एक आदमी एक पहाड़ की यात्रा पर निकला था। उसके पास एक छोटी सी लालटेन थी और रात थी अंधेरी। और लालटेन की रोशनी दो-तीन कदम से ज्यादा नहीं पड़ती थी। तो वह घबड़ा कर बैठ गया। पास से कोई दूसरा आदमी गुजरता था उसने कहा, तुम बैठ क्यों गए हो? उसने कहा कि मुझे चलना है कोई एक हजार मील और लालटेन की रोशनी है बहुत थोड़ी, दो कदम तक पड़ती है। तो मैंने हिसाब लगाया, मैं गणित का जानकार हूं। तो मैंने हिसाब लगाया कि दस हजार मील दूर तक फैला हुआ अंधेरा है और जरा सी लालटेन है, दो कदम तक रोशनी पड़ती है इससे पार नहीं हुआ जा सकता। इसलिए मैं बैठ गया हूं।

तो उस दूसरे आदमी ने कहा कि माना मैंने कि तुम्हारा गणित ठीक है, लेकिन क्या तुम्हारे बैठ जाने से पार हो जाओगे?

उसने कहा, बैठ जाने से तो बिलकुल ही पार नहीं होऊंगा। तो उस दूसरे आदमी ने कहा, कम से कम दो कदम चलो, जितनी रोशनी है और भरोसा रखो कि जिस दीये से दो कदम तक रोशनी पड़ी; आगे दो कदम चलने पर फिर दो कदम तक रोशनी पड़ेगी। और तुम जितना चलोगे हमेशा दो कदम आगे तक रोशनी दिखाई पड़ती रहेगी। और दस हजार मील इकट्ठा तो कोई भी नहीं चलता है। आदमी चलता है एक बार एक ही कदम।

तो अगर हम कठिनाइयों को इकट्ठा कर लें और कैलकुलेट कर लें तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे, कठिनाइयां बहुत हैं। लेकिन एक एक को हल करना शुरू करें तो वे हल हो सकती हैं।

यह सवाल भी पूछा है कि नई और पुरानी पीढ़ियों के फासले को कैसे दूर किया जाए? शिक्षण संस्थाएं क्या कर सकती हैं, यह भी पूछा है, इस संबंध में?

तीन-चार प्रयोग जरूर किए जाने जैसे मुझे लगते हैं। संक्षिप्त में ही कह सकूंगा क्योंकि वह बात फिर पूरी बड़ी हो जाएगी। एक तो दुनिया में जवान सदा थे बूढ़े सदा थे, लेकिन नई पीढ़ी जैसी कोई चीज कभी न थी। उसका कारण था। न तो बड़ी यूनिवर्सिटीज थीं, न बड़े कालेजिज थे जहां नये बच्चों को हम इकट्ठा कर दें।

एक घर में बच्चा अपने घर में था, दूसरा बच्चा अपने घर में था। आज, आज लाखों बच्चे एक जगह इकट्ठे हो गए हैं। इसलिए सारी दुनिया में उपद्रव की जो जगह है वह यूनिवर्सिटी के कैंप्स बन गए हैं। चाहे फ्रांस हो, और चाहे जापान हो, और चाहे कलकत्ता हो, और चाहे बनारस हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

सारी दुनिया में आज जहां नई और पुरानी पीढ़ी का फासला बहुत कस कर दिखाई पड़ता है वह यूनिवर्सिटी कैंप्स है। नई पीढ़ी बड़े पैमाने पर इकट्ठी है एक जगह और पुरानी पीढ़ी बिखरी हुई है वह इकट्ठी कहीं भी नहीं है। पुराने दिनों में पुरानी पीढ़ी की संस्थाएं थीं। मंदिर उनका था, पंचायत उनकी थी, गिरजा उनका था। नई पीढ़ी बिखरी हुई, थी पुरानी पीढ़ी इकट्ठी थी। आज बाप अकेला पड़ गया है और बेटे बहुत बड़ी संख्या में एक जगह इकट्ठे हो गए हैं। इसलिए बाप की पीढ़ी के लिए कोई भी उपाय नहीं रह गया है।

तो एक तो मेरा मानना है कि हर शिक्षण संस्था को, जिस तरह वह नई पीढ़ी को इकट्ठा करती है, इस तरह वर्ष में पंद्रह दिन महीने भर के लिए पुरानी पीढ़ी को भी नई पीढ़ी के साथ इकट्ठा करने के प्रयोग शुरू करने चाहिए। वह सेमीनार बड़े कीमत के सिद्ध हो सकते हैं। पुरानी और नई पीढ़ी को कहीं निकट लाने की कोशिश करने के हजार उपाय किए जा सकते हैं। लेकिन कहीं उन्हें निकट लाने के हमें उपाय करने चाहिए। मैं मानता हूं शिक्षण संस्थाएं ठीक जगह हैं जहां यह संभव हो सकता है। और नई और पुरानी पीढ़ी अपनी सारी तकलीफों को एक-दूसरे से कहें।

अभी क्या है, पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को गाली देती रहती है घरों में बैठ कर। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को नासमझ समझ कर उपेक्षा करती रहती है। लेकिन दोनों की क्या आथेंटिक तकलीफें हैं। बाप की क्या मुसीबत और कठिनाई है, बेटे की क्या मुसीबत और कठिनाई है, इसको आमने-सामने एनकाउंटर नहीं हो पाता। तो एक तो फासले को कम करने के लिए निकट बातचीत आमने-सामने बिठाया जाना जरूरी है। राउंड टेबल कांफ्रेंसस, पुरानी और नई पीढ़ी के बीच यूनिवर्सिटीज, कालेजिज, स्कूलों में आयोजित करनी चाहिए। जहां श्रेष्ठतम नई पीढ़ी का व्यक्तित्व भी सामने आए और पुरानी पीढ़ी का भी श्रेष्ठतम आदमी सामने आए। जहां हम अपनी तकलीफें ईमानदारी से कह सकें।

और ऐसा नहीं है। जैसा आपके प्रिंसिपल महोदय ने कहा। यह थोड़ी दूर तक सच है कि बूढ़े आदमी को राजी करना मुश्किल है, लेकिन सब बूढ़े ऐसे नहीं हैं। वे खुद भी वृद्ध हैं। और मैं समझता हूं उनको राजी किया जा सकता है। सभी बूढ़े बूढ़े नहीं हैं। वृद्ध पीढ़ी के पास भी एक हिस्सा है जो उसमें सबसे ज्यादा बुद्धिमान हिस्सा है वह सदा ही नई चीज के लिए राजी किया जा सकता है। नई पीढ़ी के पास भी सभी बच्चे नहीं; नई पीढ़ी के पास भी एक हिस्सा है जो उसका सबसे बुद्धिमान हिस्सा है जिसे पुरानी पीढ़ी के निकट लाया जा सकता है।

और यह जगत और यह समाज, कोई लाखों लोगों से नहीं चलता, बहुत थोड़े से इंटेलिजेंसिया से चलता है। अगर पुरानी पीढ़ी की क्रीम और नई पीढ़ी की क्रीम निकट आ जाए तो हम फासले को कम कर सकते हैं। कोई हर आदमी को निकट लाने की जरूरत नहीं है। लेकिन क्रीम भी निकट नहीं आ पाती है। बल्कि क्रीम बिलकुल निकट नहीं आ पाती, जो नई पीढ़ी में बुद्धिमान और तेजस्वी लड़का है वह बगावती हो जाता है। वह तोड़फोड़ में लग जाता है। जो पुरानी पीढ़ी के पास बुद्धिमान आदमी है वह अक्सर रिननसिएसन में पड़ जाता है। वह

सोचता है कि सब बकवास है छोड़ो। वह अपनी, अपनी जिंदगी के जो थोड़े दिन बचे हैं उनको शांति और आनंद से और अपनी ही खोज में बिताना चाहता है।

पुरानी पीढ़ी के बुद्धिमान को और नई पीढ़ी के बुद्धिमान को निकट लाया जा सकता है। बुद्धुओं को तो कहीं भी निकट नहीं लाया जा सकता, चाहे वे पुरानी पीढ़ी के हों और चाहे नई पीढ़ी के हों। उनको निकट लाने की जरूरत भी नहीं है, उनको निकट लाने का कोई प्रयोजन भी नहीं। यह जगत बहुत थोड़े से लोगों से संचालित होता है। यह मुश्किल से एक प्रतिशत आदमी है। वही यहां व्यवस्था करवाता है, वही उपद्रव भी करवाता है। मुश्किल से एक प्रतिशत आदमी है जो जिंदगी को सुख भी देता है और दुख से भी भर देता है। यह सारे लोगों का प्रश्न नहीं है। सारी भीड़ वह जो मॉसज है वह तो आमतौर से भेड़चाल होती है, वह तो भेड़ की तरह पीछे चलती रहती है। सिर्फ आगे की भेड़ को निकट लाने की जरूरत है।

और यह बहुत बड़ा मसला नहीं है। यूनिवर्सिटी कैंप्स, शिक्षण संस्थाएं इन्हें निकट ला सकते हैं। इन्हें करीब रहने का मौका भी मिलना चाहिए। बूढ़े और बच्चे साथ रह सकें, साथ खेल सकें, पंद्रह दिन के लिए गपशप कर सकें, दोस्ती कर सकें।

एक अमेरिकी बूढ़ी औरत ने सत्तर साल की बूढ़ी औरत, उसने एक छोटा सा प्रयोग किया है वह मैं आपसे कहना चाहता हूं। उसने एक चार साल के बच्चे से दोस्ती की। और उस चार साल के बच्चे के साथ दोस्त की तरह व्यवहार करने का तीन साल तक प्रयोग किया है। उसने अपने तीन साल के संस्मरण लिखे हैं वे बड़े अदभुत हैं। वह बच्चों को भी पढ़ाए जाने चाहिए और बूढ़ों को भी पढ़ाए जाने चाहिए। एक सत्तर साल की बूढ़ी औरत जब चार या पांच साल के बच्चे से दोस्ती करती है तो उसे पांच साल के बच्चे को समझना शुरू करना पड़ता है।

पांच साल का बच्चा दो बजे रात उसे उठा लेता है और कहता है, चांद बाहर बहुत अच्छा है, बाहर चलें। दोस्त है, यह बूढ़ी उसकी मां नहीं है कि इंकार कर दे। दोस्त की बात माननी पड़ती है। वह बच्चा उसे दो बजे रात बाहर रोशनी में ले गया है। वह बच्चा उसे तितलियां पकड़ने के लिए दौड़वाता है। वह दोस्त है, उसकी मां नहीं है। वह बच्चा उसे नदी में तैरने के लिए ले जाता है, वह बच्चा उसे पक्षियों के गीत भी सुनने के लिए आतुर करता है। वह उस बच्चे के साथ नाचती भी है, कंकड़-पत्थर भी बिनती है, जाकर शंख-सीपी भी बिनती है।

और तीन साल के अनुभव में उसने लिखा कि तीन साल उस बच्चे की दोस्ती ने उस बच्चे को क्या दिया वह मुझे पता नहीं, वह तो जब बच्चा लिखेगा अपने संस्मरण कभी तब पता चले, लेकिन मुझे जिंदगी दुबारा मिल गई, मैं फिर से जवान हो गई हूं, मैं फिर से बच्चा हो गई हूं। मैं अब फिर तितली में रंग देख पाती हूं। और अब मैं फिर नदी के किनारे पड़े कंकड़-पत्थरों में हीरे-मोती देख पाती हूं। और अब मैं फिर रात झींगुर की आवाज सुनने के लिए वृक्ष के पास रुक कर बैठ पाती हूं। उस बूढ़ी औरत ने लिखा है कि उस बच्चे ने जितना मुझे दिया उतना सत्तर साल की जिंदगी ने मुझे नहीं दिया था। उसके साथ दोस्ती बड़ी कीमती सिद्ध हुई।

ऐसा नहीं है कि बच्चे को सिद्ध न होगी। क्योंकि जब बूढ़ी को बच्चे से मिलेगा तो बच्चे को बूढ़ी से भी मिलने वाला है।

हम पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के कम से कम बुद्धिमान वर्ग को निकट लाने का उपाय करें। उनकी समझ एक-दूसरे के बाबत बढ़े। तो अंडरस्टैंडिंग जितनी बढ़े, अगर हम वृद्ध पीढ़ी की कठिनाई समझ सकें, उनकी कठिनाइयां हैं, उनकी कठिनाइयों का अंत नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि वे सिर्फ जिद की वजह से अपनी पुरानी बातें बदलने को राजी नहीं हैं। अगर कोई ऐसा कहता है तो जरा जल्दी में कहता है। उनकी अपनी कठिनाइयां हैं। और पुरानी बातों पर रुकने के उनके अपने कारण हैं। उनके हजार अनुभव उन्हें कहते हैं कि जो बार-बार परीक्षित किया गया है उसी से चलना उचित है। उनका अगर हम पूरा भाव समझें, उनके अनुभव समझें, उनकी स्थिति, उनका आउट लुक समझें, तो नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के प्रति रिबेलियस नहीं रह जाएगी, सिम्पैथिटिक हो जाएगी।

इतना ही हो सकता है, अनुगामी अब नहीं हो सकता। अब नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की अनुगामी कभी नहीं हो सकेगी। वह इंपासिबल आकांक्षा है। सिम्पैथिटिक, सहानुभूति पूर्ण हो जाए इतना जरूरत से काफी है, जरूरत से ज्यादा है। और पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी की तरह चुस्त कपड़े पहन कर सड़क चलने लगेगी ऐसा भी मैं नहीं मानता हूं, जरूरत भी नहीं है, उचित भी नहीं है। लेकिन पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी के भविष्य के प्रति रिजिड न रह जाए, सख्त न रह जाए, ढांचे को बुरी तरह थोपने के लिए आतुर न रह जाए, इतनी संवेदना भर आ जाए तो काफी है।

और मैं नहीं मानता कि यह बहुत कठिन है। कोई बाप अपने बेटे को बिगाड़ने को उत्सुक नहीं है। और अगर बिगाड़ता भी है तो बनाने की आकांक्षा में ही बिगाड़ता है। और अगर कभी उसे पता चल जाए कि वह जो ढांचे थोप रहा है वे गलत हो गए हैं, अब वे सार्थक नहीं हैं। तो वह ढांचे थोपने के लिए तैयार नहीं होगा। और कोई बेटा अपने बाप को दुख पहुंचाने के लिए आतुर नहीं होता। लेकिन वह जो करता है उससे जाने-अनजाने दुख पहुंच जाता है। काश उसे पता चल जाए और ये सारी चीजें साफ हो जाएं, तो हमारी सहानुभूति बढ़े, तो हम निकट आ सकते हैं।

पूछा है, फासला कैसे कम हो? सहानुभूति कैसे बढ़े? उससे फासला कम होगा। और सहानुभूति बिलकुल सूखती जा रही है। क्योंकि हम एक-दूसरे को जब तक न जानें, तब तक सहानुभूति हो भी नहीं सकती। तो कभी हमें इन दोनों पीढ़ियों को निकट लाएं और कभी इन दोनों पीढ़ियों को एक-दूसरे की जगह बिठालने की भी कोशिश करें। जैसे बूढ़ी पीढ़ी को यहां बुलाएं और उनसे कहें कि आप बूढ़ी पीढ़ी के खिलाफ बोलें। और नई पीढ़ी को बुलाएं और उससे कहें कि यहां तुम नई पीढ़ी के खिलाफ क्या-क्या बोल सकते हो वह बोलो। एक-दूसरे के जूतों में खड़े करने की भी जरूरत है। तभी हमें पता चलता है कि दूसरे के जूते में कांटा चुभ रहा है।

हमें पता ही नहीं चलता कि दूसरे के जूते में क्या तकलीफ है? उसके जूते में पैर डालना पड़ता है। बच्चों को बूढ़े की जगह थोड़ा खड़ा करना पड़ेगा, बूढ़ों को बच्चों की जगह थोड़ा खड़ा करना पड़ेगा। और शिक्षण संस्थाएं यह प्रयोग कर सकती हैं। और अभी देर नहीं हो गई, अभी सिर्फ शुरुआत है पागलपन की, अगर यह बढ़ता चला गया तो बहुत देर हो जाएगी। और फिर सुधारना रोज कठिन होता चला जाएगा।

मैं जानता हूं कठिनाइयां बहुत हैं, लेकिन कठिनाइयां प्रोग्रेसिव हैं यह भी ध्यान में रहे, वे रोज बढ़ रही हैं। इसलिए जितने जल्दी उन पर आक्रमण हो जाए उतना ही आसान पड़ेगा, जितनी बीमारियां बढ़ जाएंगी उतनी ही कठिनाइयां होती चली जाएंगी। बहुत संभव है कि धीरे-धीरे बूढ़े और बेटे एक-दूसरे की भाषा ही समझना बंद कर दें। अभी भी काफी दूर तक भाषा समझाना मुश्किल हो गया है। वह कठिन होता जा रहा है। इस कठिनाई को मिटाने के लिए हम उपयोगी हो सकते हैं। लेकिन हम नहीं हो पाते। हम नहीं हो पाते वह हम इसलिए नहीं हो पाते कि हम में से ऐसे लोग बहुत कम हैं जिनको हम लिंक कह सकें, जिनको हम कह सकें कि जो न तो बूढ़े हैं और न तो बच्चे हैं।

लेकिन शिक्षक ऐसा काम कर सकता है। वह लिंक जनरेशन उसे मैं मानता हूं। शिक्षक का काम ही यही है कि वह बूढ़े के ज्ञान को बच्चों तक पहुंचा दे और बच्चों की संभावनाओं को बूढ़ों तक पहुंचा दे। शिक्षक का उपयोग ही यही है। अब तक यह नहीं था। अब तक एक काम था शिक्षक के हाथ में कि बूढ़े का जो ज्ञान है वह बच्चों को पहुंचा दे, कनवे कर दे। कहीं ऐसा न हो कि बूढ़ों का ज्ञान बूढ़ों के साथ मर जाए। इसलिए शिक्षक विकसित किया गया था कि वे बूढ़े के अनुभव को वह बच्चों तक पहुंचाने का काम कर दे। पुरानी पीढ़ी ने जो जाना है, खोजा है वह मर न जाए बच्चों तक पहुंच जाए। यह काम शिक्षक ने अब तक भलीभांति पूरा किया है। अब शिक्षक पर एक नया दायित्व भी आ रहा है। और वह यह है कि वह बच्चों की जो नई संभावनाएं हैं, पोटेंशिएलिटीज हैं उनको भी बूढ़ों तक पहुंचा दे। अब यह बिलकुल दूसरा काम है जो अब तक शिक्षक के ऊपर नहीं था। अब तक शिक्षक वन वे ट्रेफिक का काम कर रहा था। वह बूढ़े से बच्चे तक लाने का काम कर रहा था।

बच्चों से बूढ़ों तक ले जाने का काम शिक्षक ने अब तक नहीं किया था। अब शिक्षक वन वे ट्रैफिक नहीं रहेगा, डबल वे ट्रैफिक हो जाएगा। और शिक्षक अगर यह काम करे तो मैं नहीं मानता हूं कि दूरी ज्यादा दिन टिक सकती है। दूरी मिटाई जा सकती है। लेकिन शिक्षक यह काम नहीं करता; या तो शिक्षक नई पीढ़ी के साथ हो जाता या शिक्षक पुरानी पीढ़ी के साथ हो जाता है।

शिक्षक को किसी पीढ़ी के साथ होने की जरूरत नहीं है। शिक्षक का मतलब ही यही है कि वह किसी पीढ़ी के साथ नहीं है, वह लिंक जनरेशन है, वह बीच की जोड़ने वाली पीढ़ी है। वह सेतु है, ब्रिज है। और अगर ब्रिज कहे कि मैं इस किनारे के पक्ष में हुआ जाता हूं, तो ब्रिज नहीं रह जाएगा। और अगर ब्रिज कहे कि मैं उस किनारे पर हुआ जाता हूं, तो फिर ब्रिज नहीं रह जाएगा। ब्रिज को दोनों किनारों पर रहना पड़ेगा और दोनों किनारों से मुक्त भी रहना पड़ेगा। तभी ब्रिज दोनों किनारों के बीच आवागमन बन जाता है। इसलिए शिक्षण संस्थाएं जो उन्होंने अतीत में किया है उससे भी बड़ा काम उनके हाथ में भविष्य में है। और शिक्षक जो अब तक किया है उससे भी कीमती काम उसके हाथ में भविष्य में है। लेकिन यह तो मैं फिर कभी आऊं तो इस पर विस्तार से आपसे बात कर सकूं।

पांचवां प्रवचन

भारत का भविष्य

...आर्थिक सोच-विचार करने वाले लोग करते थे। अब आध्यात्मिक लोगों ने भी इनकी आलोचना करनी शुरू कर दी है। शायद मोरार जी भाई को पता नहीं कि गांधी न तो आर्थिक व्यक्ति थे और न राजनैतिक। गांधी मूलतः आध्यात्मिक व्यक्ति थे। और इसलिए गांधी को समझने में न तो आर्थिक समझ के लोग उपयोगी हो सकते हैं और न राजनैतिक बुद्धि के लोग उपयोगी हो सकते हैं। गांधी को समझने में केवल वे ही लोग समर्थ हो सकते हैं जिनकी कोई आध्यात्मिक दृष्टि है। और जब तक गांधी पर आध्यात्मिक दृष्टि के लोग विचार नहीं करेंगे तब तक गांधी के संबंध में सत्य का उदघाटन असंभव है।

गांधी के साथ अन्याय यही हो गया कि गांधी मूलतः आध्यात्मिक व्यक्ति थे और दुर्भाग्य से सारे जीवन राजनीतिज्ञों से घिरे रहे। गांधी के लिए राजनीति आफत-धर्म में थी। गांधी का धर्म तो नीति थी, राजनीति मजबूरी थी। लेकिन गांधी के आसपास जो लोग इकट्ठे हुए थे, उनके लिए, उनके लिए राजनीति मूल थी, नीति आफत-धर्म थी। और यही फासला गांधी और गांधीवादियों के बीच हिंदुस्तान के लिए आत्मघाती सिद्ध हुआ है। जैसे ही सत्ता हिंदुस्तान के हाथ में आई, राजनीति तो गांधी को मजबूरी थी, सत्ता हाथ में आते ही वे हट गए। और उनके साथियों और सहयोगियों और अनुयायियों के हाथ में सत्ता पहुंच गई, उनके लिए नीति आफत-धर्म थी, सत्ता हाथ में आते ही उनकी नीति छूट गई। गांधी की राजनीति छूटी, उनकी नीति छूटी। जिसका जो सार भाग था वह शेष रह गया और जो असार था वह छूट गया। गांधी के लिए राजनीति असार थी वह छूट गई और उनके अनुयायियों के लिए नीति और धर्म असार था वह छूट गया।

गांधी ने शायद सोचा होगा कि उनके पीछे जो लोग इकट्ठे हैं, वे धर्म बुद्धि के, वे विचारशील, वे नैतिक और सदाचारी सिद्ध होंगे। गांधी वहां चूक कर गए, गांधी वहां ठीक नहीं समझ पाए, गांधी से भूल हो गई। उस भूल के लिए हम अभी भी पछता रहे हैं, और पता नहीं हमें कितने दिन पछताना होगा। गांधी यह बात भूल गए कि जो लोग सत्ता उपलब्ध होने के पहले उनके अनुयायी थे, सत्ता उपलब्ध होते ही गांधी से उनका कोई संबंध नहीं रह गया है। गांधी की उपयोगिता उन्हें इतनी थी कि सत्ता गांधी के बिना उपलब्ध नहीं हो सकती थी। सत्ता उपलब्ध होते ही गांधी का कोई प्रयोजन नहीं रह गया था। गांधी को भी आखिर-आखिर में समझ में आने लगा था और उन्होंने कहा भी कि मैं अब एक खोटा सिक्का हो गया हूं अब मेरी कोई सुनता नहीं। काश उन्हें यह पहले ही खयाल में आ जाता कि जो उनके पीछे लोग इकट्ठे हैं, सत्ता मिलते ही कोई भी उनकी सुनेगा नहीं। गांधी अगर जीते तो मुझे लगता है कि गांधी को अपने बुढ़ापे में एक दूसरी लड़ाई शुरू करनी होती अपने ही शिष्यों के खिलाफ।

गांधी इतने हिम्मत के आदमी थे कि उस बुढ़ापे में भी वे दूसरी लड़ाई जरूर शुरू करते। लेकिन शिष्यों का सौभाग्य कि शिष्यों की दिखता है भीतरी प्रार्थना गोडसे ने सुन ली और गांधी को समाप्त कर दिया। शिष्यों का सौभाग्य समझना चाहिए कि गांधी बीच से हट गए, अन्यथा इस बात की करीब-करीब गारंटी कही जा सकती है कि एक लड़ाई गांधी को अंग्रेजों से लड़नी पड़ी थी, उससे भी खतरनाक और बड़ी लड़ाई गांधी को कांग्रेस से लड़नी पड़ती।

लेकिन इतिहास बड़ी अजीब और अदभुत घटना है। जिनसे उन्हें लड़ना पड़ता वे ही उनके हकदार और मालिक और कोई रक्षक हो गए हैं। वे ही अब गांधी को बचाने में लगे हुए हैं। गांधी से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है, गांधी

के नाम से वे अपने को बचाने में लगे हुए हैं। श्री मोरार जी ने कहा कि टीकाकार धीरे-धीरे समझ लेंगे कि सत्य क्या है। जैसे कि मोरार जी और उनके साथियों को सत्य पता है सिर्फ टीकाकारों को समझने की जरूरत है।

मैं उनसे कहना चाहता हूं कि टीकाकारों की तरफ सत्य है इस बार। सत्ताधिकारियों के पास सत्य नहीं है। समझना टीकाकार को नहीं पड़ेगा, समझना सत्ताधिकारियों को पड़ेगा। और नहीं समझेंगे तो सत्ता खोजे बिना और कोई रास्ता नहीं है। सच तो यह है कि सत्य शायद ही सत्ता के साथ कभी रहा हो। सत्य अक्सर सूली पर रहा है, सिंहासनों पर तो असत्य ही बैठ जाता है। हमेशा की कथा यह है अब तक हम ऐसा समाज निर्मित नहीं कर पाए जिसमें सत्य को भी सिंहासन मिल सके।

मैं दिल्ली था अभी। और वहां कुछ बात मैंने कही तो मुझे एक पत्र मिला। मुझे एक पत्र मिला कि आप जैसे आदमी को तो फौरन तत्काल जेल भेज दिया जाना चाहिए। मैंने आंख बंद करके गांधी जी को स्मरण किया और मैंने कहा, बड़ा अदभुत सत्संग है आपका। मैं तो जब आप थे, तब इतनी उम्र न थी मेरी कि आपसे सत्संग कर सकता। इसलिए एक साध मन में रह गई अब उसका कोई उपाय न था। लेकिन आपका नाम भी लिया, आपकी जरा दोस्ती जाहिर की तो जेल जाने की धमकी मिलने लगी। मरने के बाद भी तुम जेल जाने और भिजवाने वाले पुराने आदमी अब भी कायम मालूम होते हो। जो तुम्हारे साथ रहे वे जेल गए। मैंने अभी दोस्ती की थोड़ी सी, आपकी जरा बात की कि मुझे जेल जाने की बात आने लगी। सत्य सदा सूली पर है। गांधी की पूरी जिंदगी सूली पर लटके-लटके व्यतीत हुई। और उनके शिष्य सत्ताधिकारी हो गए हैं। और गांधी की आत्मा अगर कहीं भी होगी तो वे पछताते होंगे कि क्या इसी आजादी के लिए मैंने जीवन भर कोशिश की! इसी आजादी के लिए, यह आजादी जो मिली भारत को! गांधी का सपना यह था कि आजादी मिलेगी भारत को।

तो किस भारत को?

बिरला, डालमिया और टाटा के भारत को नहीं; गरीब भारत को, करोड़-करोड़ लोगों के भारत।

गांधी भले आदमी थे। भले आदमी हमेशा एक भूल करते हैं कि वे दूसरों को भी भला समझ लेते हैं। गांधी में भी वह भूल भरपूर की। वे निर्दोष चित्त व्यक्ति थे। ऐसे इनोसेंट, ऐसे निर्दोष लोग बहुत कम होते हैं। उनको खयाल था कि समझा-बुझा कर वे हिंदुस्तान के पूंजीपति को भी राजी कर सकेंगे। लेकिन चालीस साल निरंतर कोशिश करने के बाद एक पूंजीपति को भी राजी नहीं कर सके कि वे पूंजी का विसर्जन कर दे, ट्रस्टी हो जाए, संरक्षक हो जाए। शायद उन्हें आखिर-आखिर में भूल दिखाई पड़ने लगी होगी, लेकिन भूल दिखाई पड़ने के पहले उनको उठा लिया गया।

अन्यथा यह बात करीब-करीब तो निश्चित है कि गांधी अपने ट्रस्टीशिप के सिद्धांत पर पुनर्विचार करने को मजबूर हुए होते। उन्हें यह बात दिखाई पड़ जानी कठिन न होती आजादी आने के बाद। जो वे यह सोचते रहे हैं कि हिंदुस्तान में कोई समाजवाद, कोई सर्वोदय, कोई सबका उदय, गरीब भारत का उदय हो सकेगा, और पूंजीपति राजी हो जाएगा। वह उन्हें सत्ता के हस्तांतरण के बाद दिखाई पड़ जाता कि पूंजीपति राजी नहीं होता है। बल्कि उनको यह भी दिखाई पड़ जाता कि जो पूंजीपति उनकी सेवा करते रहे थे, उनके सेवा का उन्होंने बहुत लाभ उठा लिया। उनके एक बड़े पूंजीपति सेवक, जब हिंदुस्तान आजाद हुआ तो उनकी कुल जायदाद तीस करोड़ रुपये थी और बीस साल में उनकी जायदाद तीन सौ तीस करोड़ रुपये हो गई है।

बीस साल में तीन सौ करोड़ रुपये की आमदनी! मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी एक परिवार ने कभी भी न अमेरिका में न कहीं और इतनी आमदनी बीस वर्षों में इकट्ठी की! तीन सौ करोड़ रुपया बीस वर्षों में! प्रतिवर्ष पंद्रह करोड़ रुपया! प्रतिमाह चार लाख से, सवा करोड़ से ज्यादा रुपया! प्रतिदिन चार लाख से ज्यादा रुपया! गांधी को खयाल आ जाता कि आजादी किसके हाथ में गई है।

गरीब हिंदुस्तान को, असली हिंदुस्तान को, आजादी जरा भी नहीं मिली, कुछ भी प्रयोजन नहीं हुआ। सिर्फ इतना हुआ कि अंग्रेज पूंजीपति के हाथ से हिंदुस्तानी पूंजीपति के हाथ सत्ता का हस्तांतरण हो गया। गांधी इसके लिए नहीं लड़े थे...भला आदमी जो भूल करता है वह उन्होंने भी की। उनको भी यह खयाल था कि पूंजी का यह राज, पूंजीपति का यह शोषण, समझाने-बुझाने से हल हो सकता है। वह हल नहीं हुआ। और वह हल नहीं होगा। और अब लोकतंत्र के नाम पर उसे निरंतर चलाए जाने की कोशिश की जा रही है। हिंदुस्तान में तब तक सही लोकतंत्र निर्मित नहीं हो सकता है जब तक हिंदुस्तान में आर्थिक समानता की हम कोई व्यवस्था आयोजित नहीं कर लेते। आर्थिक रूप से समान हुए बिना लोकतंत्र एक धोखा है, एक सरासर धोखा है। जहां गरीब और अमीर का भारी विभाजन हो, जहां संपत्तिशाली और संपत्तिहीनों के बीच करोड़ों का फासला हो, वहां लोकतंत्र सिर्फ नाम है, लोकतंत्र के पीछे धनपति का ही तंत्र होना सुनिश्चित है। हिंदुस्तान में लोकतंत्र तभी हो सकता है जब हिंदुस्तान एक समाजवादी जीवन-व्यवस्था को स्वीकार करे। उसके पहले हिंदुस्तान में लोकतंत्र एक आत्मवंचना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। समानता आए बिना वास्तविक स्वतंत्रता और लोकतंत्र निर्मित होते भी नहीं है।

इसलिए मैंने जब अभी पीछे कहीं कहा कि हिंदुस्तान को अभी एक सर्वहारा के, अधिनायक तंत्र की जरूरत है, एक डिक्टेटरशिप प्रालिटेरियन की जरूरत है। तो मुझे चारों तरफ से गालियां मिलीं कि मैं लोकतंत्र का दुश्मन मालूम होता हूं। लोकतंत्र है ही नहीं, उसके दुश्मन होने का उपाय भी नहीं है। लोकतंत्र होता तो हम दुश्मन भी हो सकते थे, लेकिन लोकतंत्र है कहां? अमीर के तंत्र का नाम लोकतंत्र है! कितने हैं अमीर? वह जो बड़ा लोग-समुदाय है उसका कौन सा तंत्र है? उसका तंत्र हो कैसे सकता है?

लेकिन जब भी पूंजीपति की व्यवस्था को और शोषण को हटाने की बात की जाए, तो सवाल उठता है कि लोकतंत्र में दबाव कैसे डाला जा सकता है! लोकतंत्र में दबाव डालना तो गलत हो जाएगा। लेकिन मैं यह पूछता हूं कि चोरों पर आप दबाव नहीं डालते कि चोरी मत करो, हत्यारों पर दबाव नहीं डालते कि हत्या मत करो।

हत्यारे और चोर नहीं कल कहेंगे कि हमारा लोकतंत्र छीना जा रहा है, हमारी व्यक्तिगत स्वतंत्रता छिनी जा रही है, हम चोरी करना चाहते हैं हमें चोरी करने दी जाए। लेकिन चोर के लिए तलवार है और शोषक के लिए तलवार नहीं हो सकती? शोषक के लिए तलवार की जब बात उठती है तब अहिंसा और लोकतंत्र बीच में खड़े हो जाते हैं। और हत्यारे और चोर के लिए? नहीं, उसके लिए लोकतंत्र का सवाल नहीं है। उसके लिए सत्ता अधिनायकशाही का उपयोग करती है। सच बात यह है कि हमने अब तक यह नहीं समझा कि शोषक चोर से भी ज्यादा खतरनाक है।

मैंने सुना है कि चीन में एक अदभुत विचारक था लाओत्से। वह एक बार एक राज्य का कानून-मंत्री हो गया था। ज्यादा दिन नहीं चला वह मंत्रीपन, क्योंकि इतने अच्छे विचारक कितनी देर इस तरह के काम कर सकते हैं। पहले ही दिन उसकी अदालत में एक मुकदमा आया। एक आदमी ने चोरी की थी, चोरी पकड़ गई थी। उस आदमी ने चोरी स्वीकार भी कर ली थी। लाओत्से ने उस चोर को छह महीने की सजा सुनाई और साथ ही कहा कि जिस साहूकार के घर चोरी हुई है उसको भी छह महीने की सजा देता हूं।

साहूकार कहने लगा, आप पागल हो गए हैं! यह कभी दुनिया में हुआ है? मेरा कसूर क्या है? यह कौन सा न्याय है? किस किताब में लिखा है?

लाओत्से ने कहा, गांव की सारी संपत्ति एक आदमी के पास इकट्ठी हो जाएगी तो चोरी नहीं होगा तो और क्या होगा! चोर पीछे चोर है तुम पहले चोर हो। तुम्हारी वजह से चोरी पैदा होती है। जब तक दुनिया में शोषण है तब तक चोरी बंद नहीं हो सकती। चाहे कितने ही जेल भरो, कितने ही मुकदमे चलाओ, चाहे कितनी ही नैतिक-शिक्षा दो। जब तक दुनिया में शोषण की महाचोरी चल रही है तब तक छोटी चोरियां उससे अपने आप पैदा होती रहेंगी वह बंद नहीं हो सकतीं।

लाओत्से को मंत्री-पद छोड़ देना पड़ा, क्योंकि सम्राट ने भी कहा कि तुम पागल हो, साहूकारों को कभी सजा मिली है! चोर को सजा देनी पड़ती है! लाओत्से ने कहा था, जब तक साहूकार को सजा नहीं मिलेगी, मैं यह घोषणा किए देता हूं, तब तक दुनिया से चोरी बंद नहीं हो सकती।

लेकिन लोकतंत्र चोर को तो रोकता है, शोषक को नहीं रोकता। शोषक को रोकने की बात की जाए तो वह कहता है, लोकतंत्र पर खतरा है। हत्या हो जाएगी लोकतंत्र की। ऐसे लोकतंत्र की दो कौड़ी कीमत नहीं है जिसका कुल मतलब बहुजन का शोषण हो। हिंदुस्तान को लोकतंत्र की जरूरत पड़ेगी, एक समय आएगा कि हिंदुस्तान लोकतांत्रिक बने। लेकिन अभी जब तक हिंदुस्तान का बड़ा हिस्सा गरीब और शोषित है तब तक हिंदुस्तान को एक सख्त अधिनायकशाही की जरूरत है। जो हिंदुस्तान के शोषण के तंत्र को तोड़ देने का काम करे और उसके बाद ही सही लोकतंत्र स्थापित हो सकता है।

अच्छी-अच्छी बातों के पीछे बुरे-बुरे इरादे छिपे होते हैं। लोकतंत्र का अच्छा नारा है लेकिन पीछे? पीछे लोकतंत्र के नाम पर पूंजीशाही को बचाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हमें खयाल में भी नहीं आता, अच्छे सब आड़ बन जाते हैं और हम उनमें ही जीए चले जाते हैं।

अभी मैंने कुछ थोड़ी सी जो आलोचना की तो हिंदुस्तान भर के विचारक कितने गहरे विचारक हैं यह मुझे दिखाई पड़ा। बड़े से बड़े विचारक छोटी से छोटी गाली देने पर उतर आए। जो बहुत सज्जन थे उन्होंने सज्जनता की गाली दी। जो जरा उतने सज्जन नहीं थे उन्होंने सीधी-सीधी गालियां दीं। श्री देबरभाई ने कहा कि मालूम होता है रजनीश जी गांधी जी को समझे नहीं। अगर मार्क्स की आलोचना करो तो कम्युनिस्ट मित्र कहते हैं, मालूम होता है आप मार्क्स को समझे नहीं। अगर महावीर की आलोचना करो तो जैन कहते हैं, मालूम होता है आप महावीर को समझे नहीं। अगर बुद्ध की आलोचना करो तो बुद्ध के अनुयायी कहते हैं, मालूम होता है आप बुद्ध को समझे नहीं।

इसका मतलब यह होता है कि आलोचना सिर्फ वे लोग करते हैं जो समझते नहीं और प्रशंसा केवल वे लोग करते हैं जो समझते हैं। साहब प्रशंसा करने की लिए कोई भी जरूरत नहीं है। प्रशंसा तो कुत्ते भी पूंछ हिला कर कर देते हैं। आलोचना के लिए समझने की जरूरत है।

श्री देबरभाई को मैं कहूंगा, अगर वे प्रशंसा ही किए जा रहे हैं गांधीवाद की, तो ठीक से समझ लें, समझे नहीं होंगे। अन्यथा गांधीवाद को अरथी पर चढ़ा देने का वक्त आ गया। गांधी तो जीएं कोई हजार-हजार वर्ष जीएं। गांधी जैसे प्यारे आदमी मुश्किल से पैदा होते हैं दुनिया में। लेकिन गांधी के आसपास गांधीवादियों ने जो एक वाद का जाल पैदा किया है उसे अरथी पर चढ़ा देने की जरूरत है। सच तो यह है कि गांधी ने कभी चाहा नहीं और कभी कहा नहीं कि मेरा कोई वाद है। गांधी निरंतर कहते थे कि मेरा कोई वाद नहीं है। इतने भले लोग वाद पैदा नहीं करते हैं। वाद और विवाद भी बहुत रद्दी तरह के लोग पैदा करते हैं। गांधी ने कभी कहा नहीं कि मेरा कोई वाद है। वे तो एक अदभुत विनम्र आदमी थे। वे कहते थे, जो पहले कहा गया है बहुत बार वही मैं नये प्रसंगों में नये ढंग से कहता हूं, मेरा कोई वाद नहीं है। लेकिन फिर यह गांधीवाद किसने खड़ा कर दिया?

बुद्ध कहते थे, मेरा कोई वाद नहीं है। लेकिन फिर बुद्धवाद किसने खड़ा कर लिया? ये अनुयायी हमेशा से बहुत ईजाद करने वाले लोग रहे हैं। इन्हें असली आदमी से कोई मतलब नहीं होता। इनका तो जब वाद खड़ा हो जाता है तब ही प्रयोजन हल होता है। जीसस सूली पर चढ़ गया उससे किसी को मतलब नहीं है। अठारह सौ, उन्नीस सौ वर्षों में जीसस के पीछे जो पादरी है उसने क्रिश्चिएनिटी खड़ी कर ली। क्रिश्चिएनिटी खड़ा करना बहुत आसान और अपने मतलब की बात है। जीसस बहुत खतरनाक आदमी है। जीसस के साथ पादरी का जीना बहुत मुश्किल है। लेकिन क्रिश्चिएनिटी पादरी की अपने हाथ की बनावट है। वह उसका जैसा मतलब निकालना चाहता है मतलब निकालता है, जो व्याख्या करना चाहता है व्याख्या करता है।

मैंने सुना है, एक घटना बड़ी अदभुत है। एक कहानी है। मैंने सुनी है कि अठारह सौ वर्ष बाद जीसस के मरने के, स्वर्ग में जीसस को खयाल आया कि अब अगर मैं दुनिया में जाऊं तो मेरा बहुत स्वागत होगा। क्योंकि जब मैं गया था गलत जगह पहुंच गया था। अपने आदमी ही नहीं थे कोई, कोई क्रिश्चिएन न था, कोई ईसाई न था, मैं पहुंच गया यहूदियों में। उन्होंने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया, वे मुझे समझ नहीं सके। लेकिन अब तो आधी दुनिया ईसाई हो गई है। गांव-गांव में मेरे चर्च हैं, गांव-गांव में मेरे पादरी हैं। आपको पता है सिर्फ कैथेलिक पादरियों की संख्या बारह लाख है। सिर्फ कैथेलिक, प्रोटेस्टेंट अलग हैं और पच्चीस मत-मतांतर अलग हैं। अब तो मेरे पादरियों से भरा है पृथ्वी का पूरा का पूरा जगत, गांव-गांव, देश-देश ईसाई हैं, अब मैं जाऊं तो मेरा ठीक स्वागत होगा। अठारह सौ वर्ष बाद जीसस जेरुसलम में एक दिन सुबह-सुबह उतरे, रविवार का दिन था, धर्म का दिन। धार्मिक आदमी बड़े होशियार हैं। उन्होंने दिन भी बांट लिए हैं। छुट्टी के दिन को धर्म का दिन कहते हैं। क्योंकि उस दिन कुछ करना नहीं पड़ता। बाकी छह दिनों को अधर्म का दिन मानते हैं। क्योंकि दुकान चलानी पड़ती है, दफ्तर चलाना पड़ता है। रविवार के दिन जीसस उतर गए जेरुसलम में, एक झाड़ के नीचे खड़े हो गए। चर्च के धार्मिक लोग लौटते थे। जीसस बड़े प्रसन्न होकर उनकी तरफ देखने लगे कि ये लोग मुझे जरूर पहचान जाएंगे। वे लोग पहचान गए, पास आए और कहने लगे, यह कौन नकली आदमी खड़ा हुआ है? यह कौन अभिनेता, बिलकुल जीसस बन कर खड़े हुए हो साहब! कहां से आए हो आप?

जीसस ने कहा, तुम मुझे पहचाने नहीं, मैं हूं वही जीसस क्राइस्ट, ईश्वर का पुत्र। वे लोग हंसने लगे और कहा, जल्दी भाग जाओ, अगर पादरी निकलने वाला है, पता चल गया तो मुसीबत में पड़ जाओगे। क्योंकि पादरी का कहना है कि जीसस हो चुके, अब कभी नहीं होंगे।

सभी यही कहते हैं। जैनी कहते हैं, हमारा आखिरी तीथ□कर हो चुका अब कोई तीथ□कर नहीं होगा। क्योंकि तीथ□कर हमेशा खतरनाक होता है। तीथ□कर आ जाए तो बनी-बनाई सारी दुकानदारी मिटा दे। मुसलमान कहते हैं हो चुका पैगंबर हमारा मोहम्मद, अब कोई पैगंबर नहीं होगा। क्योंकि पैगंबर आ जाए तो सारी मुसलमानी बेवकूफी को आग लगा दे। जीसस का मानने वाला कहता है, अब कोई जीसस नहीं होंगे। ईश्वर का इकलौता बेटा था वह हो चुका एक दफा। उन लोगों ने कहा, तुम भाग जाओ जनाब, नहीं तो बहुत दिक्कत में पड़ जाओगे। लेकिन तभी वह पादरी भी निकल आया। पादरी के गले पर सोने का क्रास लटका हुआ है। बड़े मजे की बात, जीसस को जिस सूली पर लटकाया गया था वह लकड़ी की थी, पर पादरी सोने का क्रास लटकाए हुए है। सोने के कहीं क्रास हुए हैं। कोई पागल होगा जो सोने के क्रास बना कर किसी को लटकाने जाएगा। फिर भी जीसस ने सोचा कि पादरी तो जरूर मुझे पहचान लेगा। देखो मेरा क्रास लटकाए हुए है। उस पादरी ने आकर भीड़-भाड़ में, रास्ता बना दिया लोगों ने, जीसस के लिए कोई सुनने को तैयार न था, पादरी के लिए रास्ता बना दिया। पादरी अंदर आया लोग झुक-झुक कर नमस्कार करने लगे।

जीसस बहुत हैरान हुए, मैं खड़ा हूं मुझे कोई नमस्कार नहीं करता, मेरे पादरी को लोग नमस्कार करते हैं। पादरी अंदर आया और उसने कहा कि तुम कौन हो? यह क्या तुमने ढोंग रचा हुआ है? जीसस ने कहा, ढोंग नहीं, मैं वही हूं ईश्वर का पुत्र, जीसस क्राइस्ट। पहचाने नहीं, तुम भी नहीं पहचाने। उस पादरी ने चार लोगों से कहा, पकड़ो इस बदमाश को, यह अपने को जीसस कह रहा है, अपमान कर रहा है हमारे भगवान का। जीसस ने कहा, मैं वही हूं, अपमान नहीं कर रहा। जीसस तो घबड़ाए। चार लोगों ने उन्हें पकड़ लिया, भीड़ उन्हें ले चली। यह तो फिर वही होने लगा जो अठारह सौ साल पहले हुआ था।

अरे, वह जीसस कहने लगे, क्या करते हो? मैं वही हूं। उन्होंने कहा, चुप, ज्यादा गड़बड़ मत करो। ले जाकर एक कोठरी में ताला डाल कर बंद कर दिया। ऐसे ही अठारह सौ साल पहले भी किया था। जीसस उस कोठरी में पड़े हुए रोने लगे। कि आश्चर्य! मेरे लोग भी यही व्यवहार करते हैं क्या मेरे साथ? आधी रात पादरी ने दरवाजा खोला, अंदर आया, जीसस के पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा, महाशय! हे प्रभु! मैं आपको पहचान गया था। लेकिन बाजार में सबके सामने नहीं पहचान सकता हूं। यह अकेले की पहचान अलग बात है। जीसस कहने लगे, सबके सामने क्यों नहीं पहचान सकते हो? उस आदमी ने कहा कि सबके सामने पहचान कर क्या अपनी मुसीबत कराऊंगा? यू ऑर द ओल्ड डिस्टर्बर। वही पुराने तुम गड़बड़ कर दोगे सब। हमने किसी तरह दुकानदारी अठारह सौ साल में जमाई है। तुम हमेशा गड़बड़ कर देते हो। तुम्हारी अब आने की कोई भी जरूरत नहीं है। हम काम बहुत अच्छे से संभाल रहे हैं। हम तुम्हारे दलाल, हम तुम्हारे एजेंट। हम काम बहुत अच्छी तरह संभाल रहे हैं। आपकी कोई भी जरूरत नहीं है। आप स्वर्ग में विश्राम करो। पृथ्वी पर हम ठीक से सब संभालते हैं। और अगर आपने गड़बड़ की तो हमें कष्ट तो बहुत होगा, लेकिन हमें फिर सूली लगानी पड़ेगी। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं।

अगर गांधी जी वापस लौट कर आएं तो गांधीवादी उन्हें सूली लगा दें। अगर वे वापस लौट कर आएं तो देख कर हैरान हो जाएं कि ये उनके ही चरखा-तकली कातने वाले लोग, ये सत्य-अहिंसा की दुहाई देने वाले लोग, ये बड़े भले साधु-संत दिखाई पड़ते थे, ये बड़े भोले मालूम पड़ते थे, ये कैसे हो गए? इनके चेहरों पर ये खून के दाग कैसे? इनके हाथ में यह अन्याय का रंग कैसा? इनका ये सारा व्यक्तित्व अंधेरा-अंधेरा कैसे हो गया?

हां, खादी ये बहुत सफेद पहने हुए हैं। इतनी गांधी को भी सफेद खादी पहनने नहीं मिलती थी। लेकिन इस सफेद खादी के पीछे आदमी बिलकुल काले हो गए हैं। सच तो यह है, दुनिया का नियम यह है कि जितने काले आदमी होते हैं उतने सफेद कपड़े खोज लेते हैं। वह काले आदमी की पुरानी तरकीब यह है अपने कालिखपन को छिपाने की। खादी तो बुरी नहीं है, लेकिन गांधीवादी के हाथ में खादी तक बुरी हो गई है। गांधीवादी के हाथ में वह खादी तक अपमानित हो गई है, अपवित्र हो गई है।

मैंने अभी बंबई में कहा कि खादी जैसी पवित्र चीज और गांधी जैसी सुंदर टोपी को भी, हो सकता है हिंदुस्तान को होली जलानी पड़े। क्योंकि वह अब सत्ता का प्रतीक और अन्याय का प्रतीक हो गई है। जैसे एक दिन अंग्रेजी कपड़ा, विलायती कपड़ा सत्ता का प्रतीक हो गया था। और गांधी को उसकी होली जला देनी पड़ी। दुर्भाग्य कहें, संयोग कहें, इतिहास का चमत्कार कहें कि उसी गांधी की टोपी आज उसी हालत पहुंच गई है जहां विदेशी कपड़ा पहुंच गया था। आज वह होली में जलाए जाने योग्य हो गई। नहीं मैं यह कह रहा हूं कि होली में जला दें। टोपी जलाने से कोई फायदा नहीं है। मुल्क का बेकार खर्च हो जाएगा। वह मैं नहीं कह रहा हूं, लेकिन मैं यह कह रहा हूं कि यह हालत कर दी है गांधीवादी ने।

गांधी का कोई वाद नहीं है। गांधी का एक व्यक्तित्व था, गांधी की एक भावना थी, गांधी की एक आत्मा थी, उन्हें जो ठीक लगा उन्होंने किया। लेकिन गांधी ने कोई सूत्रबद्ध बाध्य नहीं दिया है जिसके कि पीछे चल कर पूरे मुल्क को बनाना है।

नहीं, गांधी कोई सिस्टेमेटाइजर नहीं थे। गांधी ने कोई सिस्टम नहीं बनाई है। गांधी ने कोई रेखाबद्ध जीवन-दर्शन नहीं बनाया है कि इस ढांचे में तुम इस सारे मुल्क को बनाने की कोशिश करना। गांधी ढांचा विरोधी लोग थे, वे ढांचा नहीं बनाते हैं। जो ठीक लगता है वह जीते हैं, जो ठीक लगता है वह करते हैं। जो कल गलत लगता था आज ठीक लग रहा है, जो आज ठीक लगता है कल गलत लगेगा, तो वे ईमान से स्वीकार करते हैं कि वह गलत था मैं उसको छोड़ता हूं। अदभुत हिम्मत के आदमी थे। जीवन के अंत तक भी उन्होंने कोई ढांचा नहीं बना लिया था व्यक्तित्व का। एक स्वतंत्र व्यक्ति थे।

लेकिन गांधीवादियों ने एक ढांचा बना दिया मुल्क के लिए। और अब वह कहते हैं कि हम पूरे मुल्क को इस ढांचे में ढालेंगे। और उस ढांचे में पूरे मुल्क का अहित होने वाला है। क्योंकि गांधी ने जो विचार दिए वे आजादी के पूर्व थे। और आजादी के पूर्व आजादी का मसला दूसरा था। आजादी के बाद भारत की समस्या बुनियादी रूप से बदल गई है। और गांधी ने जो भी कहा और किया था आज उसकी कोई संगति नहीं रह गई है। गांधी के लिए सवाल था देश स्वतंत्र कैसे हो? अब हमारे लिए वह सवाल नहीं है। अब हमारे लिए सवाल है कि देश समान कैसे हो? स्वतंत्रता की जो लड़ाई थी उसमें और समानता की लड़ाई में बुनियादी फर्क है। स्वतंत्रता की लड़ाई विदेशियों के खिलाफ थी। समानता की लड़ाई अपने ही उन लोगों के खिलाफ होगी, जो सत्ताधिकारी हैं,

जो पूंजी और संपत्ति को इकट्ठा करके शोषक बन कर बैठ गए हैं। आजादी की लड़ाई परदेसी के खिलाफ थी। समानता की लड़ाई अपने ही उन लोगों के खिलाफ होगी जो शोषक हैं। यह लड़ाई बुनियादी रूप से भिन्न होगी। और ध्यान रहे कि गांधी अंग्रेज को तो अहिंसा के रास्ते से झुका सके, लेकिन भारतीय पूंजीपति को अहिंसा के रास्ते से झुकाना मुश्किल मालूम पड़ता है। ये भारतीय बहुत होशियार हैं। ये अहिंसा-वहिंसा की तरकीब में फंसने वाले नहीं हैं। इन पर कोई असर पड़ने वाला नहीं है। चालीस साल की गांधी की पूरी जिंदगी में एक पूंजीपति राजी नहीं हो सका ट्रस्टीशिप के लिए! तो अब गांधीवादियों की हिम्मत है कि ये ट्रस्टीशिप के लिए राजी कर लेंगे लोगों को? गांधी जो नहीं कर पाए, वह गांधीवादी कर लेंगे? गांधी जहां असफल हो गए, वह गांधीवादी कर लेंगे? कहां गांधी, कहां बेचारे छुठभइए गांधीवादी, इनका क्या संबंध हो सकता है? ये क्या कर पाएंगे? इनसे कुछ भी नहीं हो सकता, लेकिन ये नारे दोहराते रहेंगे और नारे दोहराने के पीछे पूंजी का तंत्र जारी रहेगा, शोषण का तंत्र जारी रहेगा।

अगर गांधी वापस लौटे तो शायद उनके सामने पहला सवाल होगा कि भारत समान कैसे हो। गांधी की बात को मान कर उनके एक शिष्य, एक बहुत प्यारे आदमी, एक बहुत सज्जन व्यक्ति विनोबा उनकी बात को मान कर काम में लगे हैं। लेकिन उनके काम से हिंदुस्तान में समाजवाद नहीं आ रहा, बल्कि आने वाले समाजवाद के मार्ग में बाधा पड़ी। उनका भूदान उनकी सदभावना का तो प्रतीक है, लेकिन उनकी बहुत गहरी समाज को समझने की अंतर्दृष्टि का नहीं। दान वगैरह से गरीब को थोड़ी राहत मिल सकती है लेकिन शोषण का तंत्र नहीं बदलता। दान से थोड़ी-बहुत गरीबी को गरीबी सहने में सुविधा मिल सकती है, लेकिन गरीब जितने दिन तक गरीबी सहता है उतने दिन तक ही शोषण को बदलने की क्रांति की उसकी तैयारी में बाधा पड़ती है। और गरीब को दान इत्यादि से ऐसा मालूम होने लगता है कि यह पूंजीवाद भी बहुत अच्छा वाद है, हमें जमीन भी देता है, रोटी-रोजी भी देता है, कपड़े भी देता है, ये पूंजीपति बड़े अच्छे लोग हैं। और पूंजीवाद की जो रुग्ण और विकृत और कुरूप जीवन-व्यवस्था है उसमें भी उसे राहत मिलने लगती है, सांत्वना मिलने लगती है। मुझे नहीं दिखाई पड़ता कि गांधी जिंदा होते तो भूदान की इस अंतिम परिणति का उन्हें बोध न हो जाता। लेकिन विनोबा को वह बोध नहीं हो सका है। गांधी के पास एक बहुत गहरी अंतर्दृष्टि थी, शायद विनोबा के पास उतनी गहरी अंतर्दृष्टि नहीं है।

शिष्यों के पास गुरुओं जैसी अंतर्दृष्टि होती भी नहीं। अगर हो तो वे शायद ही किसी के शिष्य होने को तैयार हों। वे खुद ही दूर हो जाते हैं। आजादी के बाद हिंदुस्तान के सारे अच्छे लोग भूदान और सर्वोदय के काम में लग गए। उनका खयाल था इससे समाजवाद आ जाएगा।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, सर्वोदय से समाजवाद नहीं आ सकता, समाजवाद से सर्वोदय जरूर आ सकता है। इसे मैं फिर दोहराऊं, सर्वोदय से समाजवाद नहीं आ सकता, क्योंकि जब तक समाज श्रेणियों में विभक्त है तब तक सर्वोदय की बात ही व्यर्थ है। सबका उदय कैसे हो सकता है? जहां पूंजी है, जहां पूंजीपति है, जहां शोषण है, जहां शोषित है, जहां दीन-हीन दरिद्र हैं और जहां धन के अंबार हैं इन दोनों का एक साथ उदय कैसे हो सकता है? इन दोनों के एक साथ उदय का कोई भी अर्थ नहीं है। इन दोनों के एक साथ उदय का अर्थ पूंजीपति का ही उदय होगा। हम भेड़ों को भेड़ियों के साथ पालें और कहें कि दोनों का उदय होगा तो भेड़ियों का उदय

होगा भेड़ें थोड़े दिन में सफाचट हो जाएंगी। भेड़िये बिलकुल राजी हो जाएंगे कि हमें यह सर्वोदय की फिलासफी बिलकुल पसंद है। भेड़िये कहेंगे, हमें बिलकुल जंचता है, यह तत्व ज्ञान बहुत ऊंचा है। बिलकुल ठीक है। सबका उदय होना चाहिए, हमारा भी और भेड़ों का भी। क्योंकि वे भलीभांति जानते हैं कि दोनों के साथ रहने में बेचारी भेड़ों का उदय क्या हो सकता है?

जब तक श्रेणी विभक्त है समाज, जब तक वर्ग विभक्त है, जब तक क्लासेज हैं समाज में, जब तक दो तरफ समाज का जीवन विभाजित है और जब तक शोषण का यंत्र काम करता है तब तक सर्वोदय जैसी कोई चीज कभी नहीं हो सकती। सर्वोदय हो सकता है जब श्रेणी विभक्त समाज समाप्त हो जाए। जब श्रेणी मुक्त समाज निर्मित हो, वर्गहीन समाज हो तो सबका उदय हो सकता है। क्योंकि तब सबका हित एक हो जाता है।

तो मैं कहता हूं, समाजवाद से सर्वोदय निष्पन्न होगा, लेकिन सर्वोदय से समाजवाद निष्पन्न नहीं हो सकता है। और सर्वोदय की बातचीत में हम जितना समय खराब करेंगे और जितनी शक्ति लगाएंगे, उतनी देर तक समाजवाद को लाने की दिशा में जो हमारे प्रयास होने चाहिए वे शिथिल पड़ते हैं और उनमें बाधा पड़ती है। इसलिए मैंने यह ठीक समझा कि हम गांधी के पूरी जीवन चिंतना पर, उनके जीवन भर के प्रयोगों पर एक बार फिर से विचार कर लें। क्योंकि उनके आधार पर हमें अपने मुल्क के भविष्य को एक दिशा, एक मार्ग, एक व्यवस्था देनी है। और गांधीवादी वह काम जरा भी नहीं कर रहे हैं। उनका एक ही काम है कि वे गांधी की जय-जय कार जोर-जोर से करवाते रहें।

क्यों? क्योंकि गांधी की जय-जय कार में पीछे धीरे-धीरे उनकी भी जय-जय कार हो जाती है। जिस दिन गांधी की जय-जय कार बंद हो गई, उस दिन इन बेचारों की जय-जय कार करने वाला कहां खोजने से मिलेगा! तो वे गांधी की जय-जय कार करते रहते हैं। आदमी बहुत होशियार है। आदमी को अगर यह भी कहना हो कि मैं कुछ हूं तो वह सीधा नहीं कहता, क्योंकि सीधे से बड़ी चोट पड़ती है। यह तरकीबें निकालता है। अगर गांधीवादी को यह कहना है कि मैं महान हूं, तो वह यह नहीं कहेगा कि मैं महान हूं। वह कहेगा, गांधी जी महान थे, गांधीवाद महान है। और धीरे से कहेगा, मैं गांधीवादी हूं! वह इतनी तरकीब लगानी पड़ती है। और विनम्रता से कहेगा कि मैं गांधीवादी हूं, मैं तो विनम्र आदमी हूं, मैं तो कुछ भी नहीं हूं। मगर गांधी महान थे, गांधीवाद महान है और मैं, मैं रहा छोटा सा एक सेवक।

मैंने सुना है कि पेरिस विश्वविद्यालय में फिलासफी का एक प्रोफेसर था, दर्शनशास्त्र का एक प्रधान अध्यापक। एक दिन सुबह आकर उसने यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों को अपने विभाग के विद्यार्थियों को कहा, तुम्हें पता है मैं दुनिया का सबसे श्रेष्ठ आदमी हूं।

वे लोग हैरान हुए, समझे कि दार्शनिक का दिमाग खराब हो गया। अक्सर हो जाता है। यह बेचारा गरीब प्रोफेसर फटा कोट-कमीज पहने हुए यह, दुनिया का श्रेष्ठतम आदमी कैसे हो गया?

उनकी आंखों में शक देख कर उसने कहा, तुम क्या शक करते हो इस बात पर?

एक विद्यार्थी ने कहा कि महानुभाव, शक तो होता है आप कैसे दुनिया के श्रेष्ठतम आदमी हैं?

उसने कहा, मैं सिद्ध कर सकता हूं।

उन विद्यार्थियों ने कहा, आप सिद्ध करेंगे तो बड़ी कृपा होगी।

वह बोर्ड पर गया, जहां दुनिया का नक्शा लटका हुआ था। उसने छड़ी उठाई और कहा कि देखो, यह बड़ी दुनिया है इसमें सबसे श्रेष्ठ देश कौन सा है? सारे बच्चे फ्रांस के थे उन्होंने कहा, फ्रांस सर्वश्रेष्ठ है, फ्रांस से ऊंची पुण्य-भूमि नहीं, फ्रांस में भी भगवान जन्म लेते, फ्रांस दुनिया का गुरु है। सभी मुल्कों को यही बेवकूफी चढ़ी हुई है। हमारे मुल्क गुरु है, हमारे मुल्क में भगवान जन्म लेते हैं, हम ही सर्वश्रेष्ठ। उनको भी वही पागलपन जो हमको। सारी दुनिया में पागलपन है, एक सा है।

उसने कहा, फिर ठीक, फ्रांस सबसे श्रेष्ठ देश है यह तो मानते हो।

उन्होंने कहा, यह हम मानते हैं।

उसने कहा, अब बाकी दुनिया का सवाल न रहा सिर्फ फ्रांस का रह गया। अब इतना ही सिद्ध करना है कि फ्रांस में मैं सर्वश्रेष्ठ हूं कि नहीं। उसने कहा, अब तुम बता सकते हो कि फ्रांस में सर्वश्रेष्ठ नगर कौन सा है? लड़के समझ गए कि फंस गए चक्कर में, क्योंकि पेरिस, वे पेरिस में ही सब रहते थे। उन्होंने कहा, पेरिस।

उसने कहा, तब फ्रांस भी खत्म हो गया, रह गया पेरिस। अब मैं तुमसे पूछता हूं, पेरिस में सबसे श्रेष्ठतम स्थान कौन सा है?

मजबूरी थी, कहना पड़ा, यूनिवर्सिटी। यूनिवर्सिटी से श्रेष्ठ विद्या का मंदिर और कहां है! विश्वविद्यालय! उन्होंने कहा, विश्वविद्यालय श्रेष्ठतम है। तब तक वे समझ गए कि तर्क तो पहुंच गया निष्पत्ति तक, मामला खत्म हुआ जाता है।

उसने कहा, फिर विश्वविद्यालय में श्रेष्ठतम विभाग, श्रेष्ठतम विषय कौन सा है? फिलासफी, दर्शनशास्त्र, वे सभी दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी हैं। उसने कहा, तब अब कुछ और बताने की जरूरत है, मैं दर्शनशास्त्र का हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट हूं। मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं।

गांधी महान और गांधीवाद महान और मैं, मैं एक छोटा सा गांधीवादी हूं। वह पीछे से आवाज, उस आवाज को बचाने के लिए सारा शोरगुल है। मैंने गांधी की थोड़ी सी आलोचना की तो इतना शोरगुल मच गया। एक महीने...। मैं तो गुजरात में नहीं था, मैं तो पंजाब था। मुझे तो पता भी नहीं था यहां क्या हो रहा है? यहां आया तो मैं तो देख कर हैरान हो गया। गांधीवादी को इतनी पीढ़ा क्या पहुंची, मैंने गांधी की कुछ आलोचना की तो। इस बेचारे को इतने जोर के घाव कैसे लग गए? इसको घाव लगने का कारण है। गांधी को बचा कर यह अपने को बचाता है। और सच यह है कि गांधी को बचाने की किसी को कोई जरूरत नहीं है। उनकी दुनिया कोई नहीं मिटा सकता। सिर्फ गांधीवादी मिटा सकते हैं। अगर यह बेईमानों का जत्था उनके पीछे पड़ा रहा तो गांधी को ये नेस्तनाबूद कर देंगे। गांधी हैं राष्ट्रपिता, और अगर गांधीवादियों के चक्कर में और दस-बीस साल उनको रहना पड़ा। अब वह बेचारे अब कुछ कर भी नहीं सकते। वह तो रहे नहीं गए उनकी फोटू रह गई है। तो फोटू को अदालतों में लटकाए हुए हैं, पुलिसथानों में लगाए हुए हैं। कोई पूछे कि इस बेचारे गांधी को पुलिसथाने में किसलिए बिठाया हुआ है। उसी के नीचे हवलदार बैठ कर मां-बहन की गालियां दे रहा है और गांधी की तस्वीर पीछे लटकी हुई है। उसी के सामने मजिस्ट्रेट रिश्वत ले रहा है और गांधी की तस्वीर पीछे लटकी हुई है।

गांधी को तुमने कोई पंचम जार समझा हुआ है! गांधी कोई अंग्रेज बादशाह है! गांधी के साथ यह सलूक ठीक हो रहा है। तुम बर्बाद कर दोगे गांधी के नाम को। तुम मूर्तियां बना कर और तुम समझ रहे हो कि तुम बहुत बड़ा

उपकार कर रहे हो गांधी पर। तो बड़ी भूल में हो। और तुम अदालत, पुलिसथानों में उनकी तस्वीरें लटका कर तुम समझ रहे हो कि तुम गांधी की इज्जत बढ़ा रहे हो। तुम कम कर रहे हो। तुम्हें पता नहीं है कि जितना गांधी सरकारी हो जाएंगे उतने ही गांधी अपमानित हो जाएंगे। गांधी को कोई पूछेगा नहीं, गांधीवादियों के अगर काम सफल हो गए तो। गांधी को हमने किसी दिन राष्ट्रपिता कहा था। अगर गांधीवादियों से उनका छुटकारा नहीं हुआ तो गांधी राष्ट्रहंता मालूम पड़ने लगेंगे। इसे पूर्व से सचेत हो जाना जरूरी है।

मैं जो गांधी के विचार की कोई आलोचना करता हूं तो वह गांधी की आलोचना नहीं है। गांधी की आलोचना का सवाल नहीं उठता। गांधी की तरफ इशारा उठाने की भी जरूरत नहीं है। उन जैसे पवित्र लोग मुश्किल से हजारों-लाखों वर्षों में एकाध बार पैदा होते हैं। उन पर हाथ उठाने का सवाल भी नहीं है। लेकिन गांधीवाद उनकी आड़ में खड़ा है और गांधीवादी गांधीवाद की आड़ में खड़े हैं। अगर इन पर कोई ठीक विरोध किया जाना है और इनकी आलोचना की जानी है तो गांधी के विचार से आलोचना को शुरू करने के सिवाय और कोई मार्ग नहीं है। और यह ध्यान रहे कि हिंदुस्तान के भाग्य में बहुत निपटारे का समय है। अगर हिंदुस्तान को अपना भविष्य ठीक से सुनिश्चित करना है, एक व्यवस्था देनी है जीवन को, तो हमें सारी बातों पर पुनर्विचार कर लेना होगा। हमें सारी यात्रा पर पुनर्विचार कर लेना होगा।

हमें समझ लेना होगा कि हम किस यात्रा को पचास वर्षों में किए आजादी के पहले, आजादी के बाद बीस वर्षों में हमने क्या किया? और कहीं हम उसी तरह की भूल, अगर विचार नहीं करेंगे तो दुबारा दोहराएंगे, दुबारा दोहराएंगे। दोहराते चले जाएंगे। हिंदुस्तान में ईसाई रहते हैं, हिंदू रहते हैं, मुसलमान रहते हैं, जैन कहते हैं, सिक्ख रहते हैं, फारसी रहते हैं, लेकिन आजादी के पहले? आजादी के पहले हमने एक बात दोहरानी शुरू कर दी—हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई! हिंदू मुस्लिम एकता! और हमने कभी खयाल नहीं किया कि हमारे इस गलत शब्द के चुनाव में हिंदू मुसलमानों के लिए सदा के लिए अलग कर दिए। हिंदुस्तान में ईसाई भी रहते हैं, फारसी भी, बौद्ध भी, जैन भी, सिक्ख भी। यह मुसलमान को ही क्यों चुन लिया आपने और हिंदू को क्यों चुन लिया? हिंदू-मुस्लिम एकता! कहना चाहिए था—भारतीय एकता। इंडियन यूनिटी। हिंदू-मुसलमान की एकता का क्या सवाल था? लेकिन तीस साल तक हम यह दोहराते रहे कि हिंदू-मुस्लिम एकता। और मुसलमान को यह लग जाना बिलकुल स्वाभाविक था कि मेरी एकता के बिना हिंदुस्तान की कोई गति नहीं है। हमने वह भूल की। भारतीय एकता, यह सवाल हो सकता था, हिंदू-मुस्लिम एकता का क्या सवाल था? लेकिन वह भूल हमने की। लेकिन हम विचार नहीं किए उस भूल पर कि वह कोई भूल हो गई। और उसकी वजह से हिंदुस्तान और पाकिस्तान टूटे। मुसलमान कांशस हो गया। हिंदू कांशस हो गया। दो चीजें कांशस हो गइ इस मुल्क में—हिंदूइज्म और मोहम्मडेनिज्म। हिंदू और मुसलमान, ये दो सचेत हो गए कि हम ही सब कुछ हैं। इन दोनों को सारा मूल्य देने का परिणाम यह हुआ कि हिंदुस्तान दो हिस्सों में टूट गया। इसका परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान बना। और इसका परिणाम यह हुआ कि एक हिंदू ने गांधी को गोली मारी। लेकिन हम उसको विचार भी नहीं किए। और फिर जब हिंदुस्तान आजाद हो गया तो आपको पता है हम फिर क्या कहने लगे, हम फिर कहने लगे, हिंदी-चीनी भाई-भाई। फिर वही बेवकूफी हमने फिर दोहरानी शुरू कर दी।

चीन के राजनीतिज्ञों को समझने में कठिनाई नहीं हुई होगी कि ये हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई कहने वाले लोग अब हिंदी-चीनी भाई-भाई क्यों कहने लगे? वे समझ गए होंगे कि जिससे ये डरते हैं उसी को भाई-भाई कहते हैं। जिससे डरते हैं उसी को भाई-भाई कहने लगते हैं। एशिया में चीन अकेला मुल्क नहीं है। थाई भी है, बर्मा भी है, सिलोन भी है, इंडोचायना भी है, इंडोनेशिया भी है, जापान भी है, मलाया भी है, तिब्बत भी है, सब है लेकिन हमें कोई दिखाई नहीं पड़ा, हम को दिखाई पड़ा हिंदी-चीनी भाई-भाई। हम जिससे डर गए उसी को भाई-भाई कहने लगे। फिर हमने एक कांशसनेस पैदा की। फिर हमने उसको सचेत कर दिया।

मैंने उदाहरण के लिए कहा कि अगर हम पिछली भूलों को नहीं समझते हैं तो हम आगे उनकी पुनरुक्ति करते चले जाते हैं। ज्यादा भूलें नहीं करता है आदमी कुछ भूलों को निरंतर दोहराए चला जाता है। हम फिर दोहराए चले जा रहे हैं। इधर बीस वर्षों में जो भूलें हमने की हैं वे हम आगे भी दोहराए चले जा रहे हैं। इधर बीस वर्षों में हमने कोई स्पष्ट नक्शा, भारत को क्या बनाना है वह हमने तय नहीं किया। हम शब्दों पर खेल रहे हैं। जो जैसा मौका आता है वैसा नारा लगा देते हैं।

समाजवाद क्या है, हिंदुस्तान में यह समझना भी मुश्किल हो गया, यहां इतने प्रकार के समाजवाद हैं। कांग्रेसियों का भी समाजवाद है, प्रजा समाजवादियों का भी समाजवाद है, समाजवादियों का भी समाजवाद है, साम्यवादियों का भी समाजवाद है, इतने समाजवाद हैं कि समझना मुश्किल है कि भारत की शक्ल क्या बनाना चाहते हैं! हम शब्दों का उपयोग करते हैं, लेकिन कोई सुनिश्चित धारणा, कोई स्पष्ट विचार, कोई स्पष्ट योजना, मुल्क के सामने कोई भविष्य, जब तक मुल्क के सामने कोई स्पष्ट योजना और भविष्य न हो तब तक मुल्क अंधेरे में लड़खड़ाता है, भटकता है, इस दरवाजे, उस द्वार, इस दीवाल से टकराता है और एक फ्रस्ट्रेशन, एक विषाद मुल्क के प्राणों में भरता चला जाता है। धीरे-धीरे जब हमें कुछ करने जैसा नहीं लगता तो हम खाली हो जाते हैं। हिंदुस्तान का युवक बसें जला रहा है, मकान तोड़ रहा है, स्कूल की खिड़कियां तोड़ रहा है और हिंदुस्तान के नेता समझा रहे हैं कि यह नहीं करना चाहिए। इतने से नहीं होगा।

हिंदुस्तान का युवक मुल्क के लिए कुछ करना चाहता है, और करने की कोई योजना नहीं है, वह क्रोध में तोड़ रहा है। सिर्फ वे कौमें तोड़-फोड़ में लगती हैं जिनके पास बनाने की कोई स्पष्ट योजना नहीं रह जाती। जिनके पास बनाने की स्पष्ट योजना होती है वे तोड़-फोड़ में नहीं लगतीं। लेकिन हमारे पास कभी भी स्पष्ट योजना नहीं रही। उसका कारण है और उस कारण पर भी अंतिम बात मैं आपसे कहना चाहता हूं वह ध्यान देना जरूरी है।

हिंदुस्तान हजारों वर्षों से पीछे देखने वाला देश रहा है, वह आगे देखता ही नहीं। जब रूस के बच्चे चांद पर बस्तियां बसाने की सोच रहे हैं तो हिंदुस्तान के बच्चे रामलीला देखते रहते हैं। देखो रामलीला! तुम देखते रहना रामलीला! हमारी बुद्धि पीछे की तरफ देखती है, अतीतोमुखी है, भविष्य की तरफ हम देखते ही नहीं, विचार ही नहीं करते। वह तो भगवान ने बड़ी गलती की है, हिंदुस्तानियों की आंखें खोपड़ी में सामने की तरफ नहीं, पीछे की तरफ लगाई जानी चाहिए थी, ताकि उनको पीछे की तरफ दिखाई पड़ता रहे। आगे देखने की जरूरत ही क्या है! अगर हिंदुस्तान कभी अपनी मोटरें बनाएगा, अभी तो हमें पश्चिम की नकल करनी पड़ती है, अपनी तो कोई मोटर क्या बनाना, अपनी तो सुई बनाना भी मुश्किल है। हिंदुस्तान कभी अगर अपनी मोटरें बनाएगा तो

हिंदुस्तानी संस्कृति की मोटर की जो लाइट है वह पीछे रहेगी, आगे नहीं हो सकते। आगे क्या फायदा है? वह इंडियन ही नहीं होगी, वह भारतीय नहीं होगी। यह तो पश्चिमी ढंग है आगे लगाना आंख, यह आगे लाइट लगाना। पीछे होना चाहिए लाइट। पीछे की उड़ती हुई धूल दिखाई पड़ती रहनी चाहिए कि कितना रास्ता पार कर लिया है।

लेकिन आपको पता है जिंदगी आगे की तरफ जाती है, पीछे की तरफ नहीं जाती। देख पाते हो पीछे की तरफ लेकिन चलना हमेशा आगे की तरफ पड़ता है, चलना पीछे की तरफ कभी नहीं होता। कोई उपाय नहीं है पीछे की तरफ जाने का। जाना हमेशा आगे की तरफ। और जो लोग पीछे की तरफ देखते हैं और आगे की तरफ जाते हैं उनका जीवन अगर दुर्घटना बन जाता हो तो आश्चर्य क्या है। चलें आप आगे को देखें पीछे को तो टकराएंगे नहीं?

हिंदुस्तान टकरा रहा है हजारों साल से लेकिन उसे यह बुद्धिमत्ता नहीं आती कि पीछे की तरफ देखना बंद करो, शक्ति आगे की तरफ देखने के लिए परमात्मा ने दी है, आगे देखो। वह जो दूर अभी दिन पैदा नहीं हुआ उसको देखो, अभी वह भी जो सूरज नहीं जन्मा उसकी तरफ आंखें उठाओ, अभी जो तारा उगने वाला है उसको देखो, क्योंकि कल तुम उसके पास पहुंच जाओगे और अगर तुमने आज उसे नहीं देखा तो कल तुम उसके पास पहुंच कर एकदम घबड़ा जाओगे। समझ भी नहीं पाओगे कि क्या करना है और क्या नहीं करना? नहीं हम पीछे की तरफ देखेंगे।

मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है। मैंने सुना है, एक गांव था बहुत पुराना, उस पुराने गांव में गांव जितना ही पुराना एक चर्च था। वह चर्च इतना पुराना था उसकी दीवालें इतनी जर-जर और जीर्ण हो गई थी कि उसके भीतर कोई प्रार्थना करने जाने में भी डरता था। क्योंकि भीतर जाना तो खतरा था कि वह कभी भी गिर जाए। हवा चलती थी जरा तो लगता था अब गिरा, आकाश में बादल गरजते थे तो उसकी दीवालें कंपने लगती थीं। प्रार्थना करने उपासकों ने उसमें आना बंद कर दिया। संरक्षण की कमेटी थी। ट्रस्टी थे उसके। उन्होंने बैठक बुलाई कि कोई आता ही नहीं, अब क्या करें? उन्होंने भी बैठक बाहर बुलाई। वे भी भीतर नहीं गए उसके। क्योंकि वहां जान का खतरा था। जहां अनुयायी न जाते हों वहां नेता कभी नहीं जाते। यह खयाल रखना, अनुयायी को पहले चलाते हैं पीछे नेता चलते हैं। अखबारों में भर दिखाई पड़ते हैं कि वे आगे चल रहे हैं। असलियत में, जिंदगी में अनुयायी के पीछे चलते हैं। वह जहां अनुयायी चला जाता है वे भी पीछे से चले जाते हैं। ट्रस्टी भी बाहर बैठे। उन नेताओं ने बैठक की और उन्होंने कहा, अब क्या किया जाए? कोई आता नहीं मंदिर में।

तो उन्होंने चार प्रस्ताव पास किए। वह जरा ध्यान से सुन लेना। वह हिंदुस्तान की जिंदगी से बड़ा उनका संबंध होने वाला है।

उन्होंने चार प्रस्ताव पास किए। आप कहेंगे उस चर्च में उस कमेटी के प्रस्ताव का हिंदुस्तान की जिंदगी से क्या लेना-देना? लेकिन नहीं, कुछ लेना-देना है। उन्होंने पहला प्रस्ताव पास किया कि पुराने चर्च को गिरा देना आवश्यक है क्योंकि वह बहुत पुराना हो गया, अब कोई उपासक उसमें नहीं आते। सर्वसम्मति से उन्होंने स्वीकृति दी। उन्होंने तत्काल दूसरा प्रस्ताव पास किया कि—और एक नया चर्च बनाना जरूरी है ताकि लोग प्रार्थना करने आ सकें। और फिर उन्होंने तीसरा प्रस्ताव पास किया उसको भी सर्वसम्मति से और वह यह कि

नया चर्च ठीक पुराने जैसा बनाना है। पुरानी ही दीवाल की आधार पर नये चर्च की दीवाल उठानी है। पुरानी नींव पर। पुराने ही द्वार-दरवाजे लगाने हैं, खिड़कियां लगानी हैं, पुराने ही चर्च की इ टों से नई दीवालें चुननी हैं, पुराने ही सामान से बिलकुल पुराने जैसा ही नया चर्च बनाना है। यह तीसरा प्रस्ताव उन्होंने स्वीकार किया। और फिर चौथा प्रस्ताव स्वीकार किया और वह यह कि जब तक नया चर्च न बन जाए तब तक पुराना गिराना नहीं है। तो इसको भी सर्वसम्मति से स्वीकृति दे दी!

वह चर्च अभी भी खड़ा हुआ है। वह चर्च कैसे गिरेगा? वह कभी भी गिरने वाला नहीं है। भारत की जीवन का मंदिर, समाज का मंदिर बहुत पुराना हो गया। यह चर्च बहुत पुराना हो गया। यह बहुत जरा-जीर्ण हो गया। इसके नींव हजारों साल पहले मनु ने, याज्ञवल्क्य ने, करोड़ों...कितने-कितने समय पीछे उन्होंने इसकी नींव रखी थी। वह उसी नींव पर समाज खड़ा है।

राम ने, कृष्ण ने, बुद्ध ने इसकी दीवालें चूनी थीं हजारों साल पहले, वे दीवालें वही की वही हैं। मकान बहुत पुराना हो गया। बनाने वाले होशियार रहे होंगे कि उनके बेटे इतने दिन से बनाने का काम बंद किए हुए हैं, तो भी किसी तरह काम चल जाता। लेकिन मकान बिलकुल पुराना हो गया। उसमें जीना असंभव हुआ जा रहा है। समाज की सारी की सारी रचना, सारी व्यवस्था जरा-जीर्ण हो गई। उसके भीतर मरना आसान जीना कठिन है। लेकिन हम जीए चले जा रहे हैं, क्योंकि हम पुराने के बड़े प्रेमी हैं, हम पुराने के बड़े भक्त हैं, हम पुराने के प्रति बड़े श्रद्धालु हैं।

कभी आपने सोचा, छोटे बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते हैं, उनके पास कोई अतीत नहीं होता, उनके पास पीछे देखने को कोई उपाय नहीं होता, वे हमेशा आगे की तरफ देखते हैं, बूढ़े, बूढ़े सदा पीछे की तरफ देखते हैं। उनके आगे कुछ भी नहीं होता सिवाय मौत के। मौत देखने जैसी नहीं। पीछे लौट कर देखते रहते हैं। बचपन, जवानी, बीती हुई कहानियां, बीते हुए किस्से वे सब चलते रहते हैं उनके दिमाग में। जब कोई कौम पीछे की तरफ ही देखती रहती है, तो सचेत हो जाना चाहिए उस कौम के प्राण बूढ़े हो गए हैं। वह कौम मरने के करीब पहुंच गई है। अगर वह कौम भविष्य की तरफ देखना शुरू नहीं करती तो बहुत जल्दी मर जाएगी। गांधी को राम से बहुत प्रेम था। राम बड़े प्यारे आदमी, उसी प्रेम के पीछे उन्होंने राम-राज्य की कल्पना गढ़ ली। वह कल्पना ठीक नहीं
है।

राम-राज्य पुरानी व्यवस्था है। भविष्य की व्यवस्था नहीं, अतीत की व्यवस्था है। राम-राज्य पूंजीवाद से भी पिछड़ी हुई व्यवस्था है, सामंतवाद की, सुडोलिज्म की व्यवस्था है। राम-राज्य में लौटना नहीं है हमें, राम बहुत प्यारे आदमी थे वह ठीक है, लेकिन राम-राज्य बहुत पुरानी व्यवस्था है। राम को हम स्मरण कर लें वह ठीक, राम को हम आदर दे दें वह ठीक, लेकिन राम-राज्य नहीं चाहिए। राम-राज्य तो आज की अवस्था से भी बदतर अवस्था है। हमें चाहिए भविष्य का राज्य, हमें चाहिए पूंजीवाद से आगे का राज्य, हमें पीछे नहीं लौटना, हमें आगे जाना है।

लेकिन पीछे लौटने का मोह हमारे मन में होता है कई कारणों से। एक तो कारण यह होता है कि पीछे का सब कुछ परिचित होता है, जाना-माना मालूम होता है। जानी-मानी चीज में घबड़ाहट कम होती है, सिक्योरिटी

ज्यादा होती है, सुरक्षा ज्यादा होती है। अनजान अपरिचित रास्तों में जाने में भय लगता है, पता नहीं क्या हो जाए? आज है स्थिति बुरा न हो जाए। अनजान रास्ते पर आदमी डरता है। लेकिन ध्यान रहे, भविष्य सदा अनजान है और जीवन सदा अननोन, अज्ञात और अनजान की खोज। जो लोग ज्ञात, नोन, जाने-माने में ही भटकते हैं वे जीवन से संबंध तोड़ देते हैं और मृत्यु के साथी हो जाते हैं।

नहीं, पीछे नहीं लौटना है। नहीं, राम-राज्य नहीं। चाहिए भविष्य का राज्य, अतीत का नहीं।

और ध्यान रहे, अच्छे लोग हुए हैं अतीत में, लेकिन अच्छा समाज नहीं हुआ है। इस फर्क को समझ लेना जरूरी है। इससे बड़ी फैलेसी पैदा होती है, इससे बड़ा भ्रम पैदा होता है। आज से दो हजार साल बाद न तो मुझे कोई याद रखेगा, न आपको कोई याद रखेगा, लेकिन गांधी जी को दो हजार साल बाद भी लोग याद रखेंगे। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे जिस जमाने में गांधी हुआ उस जमाने के लोग कितने अच्छे रहे होंगे! जरूर सोचेंगे, गांधी याद रह जाएंगे, गांधी के आधार पर वे सोचेंगे कि दो हजार साल पहले गांधी जैसा अच्छा आदमी हुआ, तो जिन लोगों के बीच हुआ होगा वे लोग भी कितने अच्छे नहीं रहे होंगे! लेकिन उनकी धारणा बिलकुल गलत होगी, गांधी जरूर अच्छे थे, गांधी जिस समाज में पैदा हुए थे उस समाज से गांधी के अच्छे होने का क्या संबंध है? वह समाज तो अति कुरूप था, वह समाज तो अति दुग□ध से भरा था। वह समाज तो गोडसे का समाज हो सकता था गांधी का समाज नहीं हो सकता। गांधी इसके प्रतिनिधि नहीं थे, वे रिप्रेजेंटेटिव नहीं थे हमारे। वे एक्सेप्सन थे, वे अपवाद थे। हम, हमारे बाबत उनके द्वारा कोई भी निर्णय लिया जाएगा वह गलत होगा। लेकिन दो हजार साल बाद लोगों को हम याद नहीं रहेंगे, गांधी याद रहेंगे। यही पीछे के बाबत भी सच है। हमको राम याद हैं, लेकिन राम का समाज? हमें बुद्ध याद हैं, लेकिन बुद्ध का समाज? हमें महावीर याद हैं, लेकिन महावीर का समाज? हमें कृष्ण याद हैं, लेकिन कृष्ण का समाज? नहीं, राम से राम के समाज का अंदाज मत लगाना, भूल हो जाएगी।

और यह मैं क्यों कहता हूं कि राम का समाज राम जैसा नहीं रहा होगा। मेरे ऊपर कई इलजाम लगाए अभी कि मैं इतिहास नहीं जानता हूं। मुझे जरूरत भी नहीं इतिहास जानने की। लेकिन जीवन के कुछ सत्य मुझे दिखाई पड़ते हैं। मुझे पता नहीं कि राम का समाज कैसा रहा होगा। लेकिन कुछ बातें मैं कहता हूं, एक बात यह कि अगर राम का समाज राम जैसा रहा होता तो राम की हमें याददाश्त भी न रह जाती। महापुरुष हमेशा छोटे पुरुषों के बीच में दिखाई पड़ते हैं, नहीं तो दिखाई भी नहीं पड़ सकते।

अगर हिंदुस्तान में दस-पचास हजार गांधी हों, तो मोहनदास करमचंद गांधी को खोजना आसान होगा? कहीं भी खो जाएंगे भीड़ में, वे अकेले हैं इसलिए दिखाई पड़ते हैं। छोटे से स्कूल का शिक्षक भी जानता है कि सफेद खड़िया से सफेद दीवाल पर नहीं लिखना चाहिए। काले ब्लैकबोर्ड पर लिखता है सफेद खड़िया से। क्योंकि वह सफेद खड़िया ब्लैकबोर्ड पर दिखाई पड़ती है। जितना होता है काला बोर्ड, उतनी ही वह खड़िया ज्यादा सफेद दिखाई पड़ती है।

राम जो इतने महान दिखाई पड़ते हैं, पीछे ब्लैकबोर्ड है समाज का। उसके बिना दिखाई नहीं पड़ सकते। मुझे इतिहास का कोई भी पता नहीं है, हो सकता है। कौन फिजूल की कहानी-किस्से पढ़े कि कौन बेवकूफ कब पैदा हुआ। कि वे कब जन्मे और कब मरे। मुझे नहीं पता होगा, लेकिन इतिहास को समझना और इतिहास को

जानना दो बातें हैं। महावीर और बुद्ध, ये दिखाई पड़ते हैं इसीलिए कि इनके आसपास जो समाज रहा होगा इनके प्रतिकूल विपरीत रहा होगा, और इनकी शिक्षाओं से भी सबूत मिलता है।

महावीर क्या समझा रहे हैं लोगों को? लोगों को समझा रहे हैं कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, हिंसा मत करो, झूठ मत बोलो, दूसरे की स्त्री को बुरे भाव से मत देखो, ये समझा रहे हैं। समाज अच्छा था तो ये बातें समझाने की जरूरत थी? ये किसको समझा रहे हैं? ये किसको समझा रहे हैं? आपका दिमाग खराब है महावीर स्वामी! आप पागल हो! किसको समझा रहे हो? जो लोग चोरी नहीं करते उनको सुबह से शाम तक यह क्या समझा रहे हो कि चोरी मत करो? चोरों को ही समझाना पड़ता है कि चोरी मत करो! और हिंसकों को समझाना पड़ता है कि अहिंसा परम-धर्म है! और अधार्मिकों को धर्म की शिक्षा देनी पड़ती है। जिस दिन दुनिया धार्मिक होगी धर्म के शिक्षक को कोई जगह नहीं रह जाएगी।क्या जरूरत है? जिस गांव में सब लोग स्वस्थ होते हैं उसमें हर घर के बाद एक डाक्टर की, दवाखाने की जरूरत होगी? क्या प्रयोजन है? लेकिन उनकी शिक्षाएं बताती हैं कि जिनको शिक्षाएं दी गई हैं वे शिक्षाओं से उलटे लोग रहे होंगे।

एक गांव में, एक चर्च में एक फकीर को निमंत्रण दिया था लोगों ने बोलने के लिए कि आप बोलने आएं। वह फकीर बोलने गया। उन लोगों ने कहा कि सत्य के संबंध में हमें समझाइए। उस फकीर ने कहा, सत्य के संबंध में! लेकिन समझाने से पहले मैं एक बात पूछूंगा, चर्च के लोगों तुमसे मैं एक बात पूछता हूं। मेरा उत्तर दे दोगे तभी मैं समझाऊंगा। उस फकीर ने कहा कि तुमने बाइबिल जरूर पढ़ी होगी, बाइबिल में ल्यूग का उनहत्तरवां अध्याय है वह भी तुमने पढ़ा होगा, जिन लोगों ने ल्यूग का उनहत्तरवां अध्याय पढ़ा हो वह हाथ ऊपर उठा दें।

सब लोगों ने हाथ उठा दिए, सिर्फ एक आदमी जो सामने बैठा था उसको छोड़ कर। उन सबने कहा कि हमने पढ़ा है। उस फकीर ने कहा, हाथ नीचे कर लें, अब मैं सत्य पर प्रवचन शुरू करता हूं। और तुम्हें बता देता हूं कि ल्यूग का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई अध्याय ही बाइबिल में नहीं है। और आप सबने पढ़ा है! वह है ही नहीं अध्याय वहां। उनहत्तरवां अध्याय है ही नहीं ल्यूग का कोई। अब मैं सत्य पर बोलना शुरू करता हूं क्योंकि पहले पता तो चल जाए कि कैसे लोग इकट्ठे हैं? अगर सभी लोग सत्य पर बोलते हों तो सत्य पर बोलना फिजूल है। अब ठीक वक्त, ठीक जगह तुमने मुझे बुला लिया। लेकिन उसने कहा कि मुझे बड़ा आश्चर्य है कि इस चर्च में एक सत्य बोलने वाला कैसे आ गया? क्योंकि चर्च की तरफ मंदिरों की तरफ सत्य बोलने वाले जाते ही नहीं। यह आदमी मेरे सामने बैठा है यह मिरेकल है, एक चमत्कार है यह आदमी हाथ नहीं उठाया। हे मेरे भाई! उसने उस आदमी से कहा कि तुमने हाथ क्यों नहीं उठाया? आश्चर्य! तुम इतने सत्यवादी हो। उस आदमी ने कहा कि महाशय, जरा जोर से बोलिए मुझे कम सुनाई पड़ता है। क्या आप यह कह रहे हैं कि उनहत्तरवां अध्याय ल्यूग का? साहब रोज पढ़ता हूं, सुबह उसी का पाठ करता हूं। ये चर्च में इकट्ठे लोग हैं, यहां इनको सत्य की शिक्षा देनी पड़ती है।

ये बुद्ध-महावीर सुबह से सांझ तक बेचारे सत्य की, अहिंसा की, प्रेम की चर्चा करते हैं। ये किन लोगों के सामने करते होंगे? इसी तरह इस चर्च जैसे लोग वहां इकट्ठे होंगे।

नहीं; राम थे सुंदर, राम थे सत्य, लेकिन राम का समाज नहीं है। अगर समाज इतना सुंदर और सत्य होता, तो उस समाज से हम पैदा होते! हम पैदा कहां से होते हैं? हम अपने अतीत से पैदा होते हैं। हम सबूत होते हैं

अपने अतीत के असली। इतिहास नहीं। हम हैं असली सबूत अतीत के। बेटा अपने बाप का सबूत है। फल अपने बीज का सबूत है। फल अगर कड़वा है और फल कहे कि बीज तो बड़ा मधुर था। तो हम मानेंगे नहीं। हम कहेंगे कि बीज का पता नहीं चला होगा तुम्हें। बीज कड़वा ही रहा होगा, अन्यथा तुम कड़वे कैसे हो जाते! तुम उससे पैदा हुए हो, तुम उसके सबूत हो। आज बीज तो नहीं है खो गया मिट्टी में कहीं, लेकिन तुम हो। और तुम बताते हो कि बीज कैसा रहा होगा!

हिंदुस्तान में कुछ व्यक्ति अच्छे पैदा हुए हैं। समाज कभी भी अच्छा नहीं था। हम सबूत हैं उसके। वह समाज तो खो गए। हम हैं सबूत उसके। हम उससे पैदा हुए हैं। हम उसी की प्रोडक्ट हैं। इसलिए भूल कर भी पीछे लौटने का विचार मत करें। पीछे से तो हम आ रहे हैं। वहां जाने की अब जरूरत नहीं है। हमें जाना है आगे। और आगे जहां जाना है वहां अतीत की भूलों से हम सीख लें, अतीत के ढांचे को पुनरुक्त करने की जरूरत नहीं है। नये ढांचे, जीवन के लिए नये मार्ग, जीवन के लिए नया चिंतन, नये द्वार, नये तथ्य, नई समाज व्यवस्था खोजनी है। नहीं; राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन राम-राज्य बिलकुल भी नहीं चाहिए। गांधी को बहुत प्रेम था राम से। वे दीवाने थे राम के। कहें कि बिलकुल दीवाने थे राम के। बड़ा प्रेम उनको रहा होगा। मरते वक्त, गोली भी लगी तो न पिता का नाम याद आया, न मां का, न भाई का, न बेटों का, न गांधीवादियों का, राम का नाम याद आया। नाम आया राम का याद! लग गई छाती में गोली उस क्षण में वही नाम याद आया जो सबसे प्यारा उन्हें रहा होगा। जो प्राणों के प्राण में बैठा रहा होगा वही उस क्षण में याद आ सकता है। उस वक्त धोखा नहीं दिया जा सकता। फुर्सत कहां हैं मरते आदमी को कि धोखा दे दे। तो उस वक्त सोचे कि अभी राम का नाम ले दूं तो अच्छा असर पड़ेगा, लोग कहेंगे कि धार्मिक है। इतनी फुर्सत वहां नहीं है। आमतौर से तो ऐसे ही लोग राम-राम कहते हुए सड़क पर से निकलते हैं। जब कोई नहीं सुनता तो धीरे-धीरे कहते हैं या नहीं भी कहते। जब रास्ते पर कोई दिखाई पड़ता है कि आ रहा है तब जोर-जोर से राम-राम, राम-राम जोर से कहने लगते हैं। वह सुनाने के लिए। लेकिन गांधी की छाती में तो लगी है गोली, सुनाने का सवाल कहां है! इस अंतिम क्षण में तो वही निकल सकता है जो प्राणों के प्राणों में गहरे बैठा हो। वे राम उनके प्राण हैं। राम के वे दीवाने हैं। उसी दीवानगी में वे कहने लगे कि राम का राज्य चाहिए। वह भूल है। वह बात ठीक नहीं है। राम का राज्य नहीं चाहिए। हमें तो भविष्य का राज्य निर्मित करना है। कोई सामंतवादी व्यवस्था में वापस नहीं लौट जाना है। इन्हीं सारी बातों पर देश के प्राणों को चिंतन करना जरूरी है।

मैं यह नहीं कहता हूं कि जो मैं कहता हूं वही मान लें। जो भी आदमी आपसे कहे कि मेरी बात मान लो वह आदमी अच्छा नहीं है, सज्जन नहीं है, वह आदमी ठीक नहीं है, वह आदमी खतरनाक है। सच तो यह है कि अपनी बातों को मनवाने की जबरदस्त चेष्टा वही करता है जिसको खुद शक होता है कि मेरी बातें ठीक हैं या नहीं। मुझे उसका प्रयोजन नहीं है। मुझे जो ठीक लगता है वह मैं पूरे मुल्क को कह देना चाहता हूं। अगर वह ठीक लगे ठीक, गलत लगे उसे कचरे में फेंक देना। अगर आपके विवेक को ठीक लगे तो ठीक, अन्यथा मेरे कहने से कुछ सत्य नहीं हो जाता है। लेकिन मेरी इतनी स्पष्ट बात से भी गांधीवादी परेशान हो गए।

मैं कहता नहीं किसी को कि मेरी बात मान लो। मैं कहता नहीं कि मेरा वचन आप्त वचन है कोई आथेरिटी है। मैं कहता नहीं यह। मैं यह कहता हूं कि मैं गांधी पर सोचता हूं, जो मुझे दिखाई पड़ता है वह मुझे कहना चाहिए।

और लोगों को बता देना चाहिए। वे भी यह सोचें, विचार करें। गांधी पर हम ठीक से सोचें और विचार करें तो शायद हम अपने मुल्क के लिए, आने वाले भविष्य के रास्ते बनाने में, देखने में, बहुत योग्यता से सफल हो सकेंगे।

और यह ध्यान रहे कि गांधी पर सोचना महावीर और बुद्ध पर सोचने से ज्यादा कारगर सिद्ध होगा। क्योंकि महावीर और बुद्ध से हमारा फासला बहुत लंबा हो गया है। ढाई हजार साल का। गांधी से हमारा फासला बहुत कम है। बहुत निकट है।

दूसरी बात, गांधी पर सोचना और भी उपयोगी है क्योंकि महावीर और बुद्ध ने समाज के जीवन को बदलने के लिए कोई विचार नहीं किया। उन्होंने व्यक्ति को शांति, ध्यान, मोक्ष तक ले जाने की विज्ञान को खोजा। लेकिन समाज के ढांचे को बदलने की कोई बात नहीं सोची। गांधी हिंदुस्तान में, पहले इतनी ऊंची कोटि के विचारक हैं जिन्होंने समाज के मोक्ष के लिए भी विचार किया है। इसलिए गांधी पर विचार करना बहुत जरूरी है।

और स्वभावतः क्योंकि गांधी पहले आदमी हैं, एक माइलस्टोन हैं। हिंदुस्तान में गांधी के पीछे का इतिहास, हिंदुस्तान के साधु और संन्यासी का समाज से भागने का इतिहास है। गांधी हिंदुस्तान के पहले साधु हैं जो समाज से नहीं भागे और समाज में खड़े होकर समाज को बदलने की कोशिश की। पहले आदमी से भूल-चूक होना संभव है। पहला आदमी पायोनियर है। पहला आदमी एक नया रास्ता तोड़ता है। वह परिपूर्ण बातें नहीं कह सकता। परिपूर्ण बातें तो अंतिम आदमी भी नहीं कह सकता है। और गांधी हिंदुस्तान में एक नई दृष्टि के पहले उदघाटक हैं। इसलिए बहुत भूल की संभावनाएं हैं। अगर हम इन पर विचार नहीं करेंगे तो हम अपना ही आत्मघात करने में सहयोगी होंगे।

मेरी ये थोड़ी सी बातें आपने इतने प्रेम और शांति से सुनी, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं।

कल सुबह आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा। जो कुछ आपको इस संबंध में प्रश्न हों आज सुबह और आज सांझ की चर्चा में वह सुबह आप लिख कर दे देंगे, ताकि उनकी बात हो सके।

परमात्मा को, आपके भीतर बैठे परमात्मा को, अंत में प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

छठवां प्रवचन

भारत का भविष्य

(प्रांरभ का मैटर उपलब्ध नहीं।)...और दो बच्चे के बाद अनिवार्य आपरेशन। समझाने-बुझाने का सवाल नहीं है यह। जैसे हम नहीं समझाते हैं हत्यारे को कि तुम हत्या मत करो, हत्या करना बुरा है। हम कहते हैं, हत्या करना कानूनन बंद है। हत्या से भी ज्यादा खतरनाक आज संख्या बढ़ाना है। तो एक तो अनिवार्य संतति-नियमन। जो लोग बिलकुल बच्चे पैदा न करे, उनको तनख्वाह में बढ़ती हुई सिनयारिटी, जो बिलकुल बच्चे पैदा न करे, एक भी बच्चा पैदा न करे, उनको इज्जत, सम्मान, उनको जितनी सुविधाएं दे सकते हैं उनको सुविधाएं दी जानी चाहिए।

व्हाट फार्म ऑफ गर्वमेंट, यू विज्युअलाइज फॉर दिस वन।

वही बात कर रहा हूं। इधर हमारी कोई साठ प्रतिशत समस्याएं हमारी संख्या से खड़ी हो रही हैं। हम समस्याओं को हल करते चले जाएंगे और संख्या यहां बढ़ती चली जाएगी। हम कुछ भी हल नहीं कर पाएंगे। रोज हम हल करेंगे और रोज नई समस्याएं खड़ी हो जाएंगी। तो साठ प्रतिशत समस्याएं कम से कम सिर्फ नष्ट हो सकती हैं अगर हम संख्या पर एक व्यवस्थित संतुलन उपलब्ध कर लें। जो कि किया जा सकता है। लेकिन लोकतंत्र की धारणा हमारी कि बच्चे पैदा करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। वह मुझे गलत दिखाई पड़ती है।
इसलिए जो आप कहते हैं व्हाट फार्म ऑफ गर्वमेंट। तो मेरी दृष्टि में अभी हिंदुस्तान को कोई पचास साल तक लोकशाही की जरूरत नहीं है। अभी हिंदुस्तान को पचास साल तक स्पष्ट रूप से अधिनायकशाही की जरूरत है। कोई उसको कहने को राजी नहीं है, क्योंकि वह शब्द ही अजीब हो गया, अधिनायकशाही की बात ही करना। उन्होंने कहा, यह आदमी खतरनाक है।

व्हाट अबाउट फॉर्म ऑफ डिक्टेटरशिप डू यू विज्युअलाइज।

...डिक्टरशिप जैसा कि रूस में बनी।

पलट देनी चाहिए।

पलट देनी चाहिए।

एक सर्वहारा का अधिनायकशाही चाहिए। जिसका स्पष्ट ध्यान यह होगा कि हम...।

आपका ओपिनियन संयुक्त डिक्टेटर्स के लिए क्या है?

नहीं, जरा भी अच्छा नहीं है। क्योंकि संयुक्त डिक्टेटरशिप कोई सर्वहारा का, कोई कम्युनिटेरीयन डिक्टेटरशिप नहीं है। संयुक्त डिक्टेटरशिप तो राजतंत्र जैसी पुरानी बेहूदी बातें हैं। संयुक्त डिक्टेटशिप की क्या जरूरत है? डिक्टेटरशिप व्यक्ति की नहीं; विचार की। सोशिएलिस्ट डिक्टेटरशिप से मेरा मतलब है। वह व्यक्ति की डिक्टेटरशिप नहीं है वह। वह असल में मौलिक, एक विचार की डिक्टेटरशिप है। एक विचार की यह स्वीकृति कि इस विचार को समाज में लाना है। और चूंकि समाज का मानस हजारों साल से ऐसा बन गया है कि व्यक्तिगत संपत्ति को वह मानस छोड़ने को राजी नहीं है। हालांकि व्यक्तिगत संपत्ति के कारण ही इसकी सारी समस्याएं खड़ी हो रही हैं।

तो दो काम करने हैं। एक तो व्यक्तिगत संपत्ति के विरोध में पूरा वातावरण खड़ा करना और दूसरा व्यक्तिगत संपत्ति को मिटाने में। व्यक्तिगत संपत्ति को हिंसा घोषित किया जाना चाहिए। वह हिंसा है। और उस हिंसा को रोकने के लिए सरकार को अधिनायकशाही के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। अगर हम यह सोचते हों कि हम...।

और आज का सरकारी...तोड़ने के लिए...। आपने बोला कि नॉन-वायलेंस से तो कोई हरकत नहीं...(अस्पष्ट)

न, मेरा करना यह है, मेरा कहना यह है, नॉन-वायलेंस से समाज की अंतर-रचना नहीं बदल सकती, लेकिन नॉन-वायलेंस से आप समाज के सत्ता के अधिकारी हो सकते हैं। समाज की व्यवस्था जो है व्यक्तिगत संपत्ति की वह तो आपको दबाव से बदलनी पड़ेगी। जरूरी नहीं कि दबाव वायलेंस ही हो, लेकिन अगर वायलेंस से न बदली जा सके दबाव को तो वायलेंस ही हो तो कोई मुझे चिंता नहीं है उसकी। मेरा मतलब यह है कि लोकशाही है आज, जैसी भी है टूटी-फूटी लोकशाही है। हां, इस लोकशाही का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। जो लोग समाजवाद लाना चाहते हैं, वे जाकर वोटर को शिक्षित करें। इस सत्ता पर अधिकारी हों। और सत्ता पर अधिकारी होते ही वह इस मुल्क से व्यक्तिगत संपत्ति और शोषण की व्यवस्था को हटाने के सब उपायों का प्रयोग करें।

वह समझाने-बुझाने से हो सके, वह लोकमत के दबाव से हो सके। और अगर उन सबसे न हो सके, तो जैसा हम पुलिस के दबाव से हैदराबाद लेते हैं, जैसे हम पुलिस के दबाव से राजाओं को समाप्त कर देते हैं, उसी तरह के पुलिस के दबाव के अंतर्गत हमें पूंजीशाही को समाप्त करना होगा।

लेकिन, केरल गर्वमेंट कम टु बेलेट, विज्युअलाइज हाउ टु नो बडी नो ओपन अबाउट दिस। यू असाइड प्रेक्टिस यू केन एप्रोच टु वाटर, एन चेंज स्माल...कम टु पावर ओनली टु बेलेट...इज़ सुपिरियन एट दि आल इंडियन लेवल ऑर समथिंग।

हां-हां, बिलकुल ही। अपने भारतीय तल पर वैसा यह व्यवस्था करनी चाहिए। और एक प्रांत में कुछ कर भी नहीं सकती कोई समाजवादी व्यवस्था। जब तक कि केंद्रीय तल पर सारी समाजवादी स्व-रचना नहीं होती। क्योंकि वह प्रांत...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, वह भी, वह तो हमेशा। सारी झंझट वह। नहीं, वे नहीं चलने देते हैं। वे नहीं चलने देते हैं, चलने नहीं देंगे। क्योंकि अगर एक प्रांत में भी, केरल में या कहीं भी अगर समाजवादी तंत्र की थोड़ी भी रूपरेखा स्पष्ट हो जाए और जनता को थोड़ी भी राहत दिखाई पड़े तो पूरे मुल्क से सारी व्यवस्था नष्ट हो जाएगी इनकी। इसलिए उसको

सफल वहां नहीं होने देंगे। और जब वह सफल होने लगेगी तो बाधा डालेंगे, बाधा के लिए उपाय करेंगे। क्योंकि केरल में अगर समाजवादी तंत्र थोड़ा भी सफल होता है तो पूरा हिंदुस्तान अंधा नहीं है कि बैठा हुआ देखता रहेगा। वे उसको सफल नहीं होने देंगे। उसकी सफलता इनके लिए हत्या हो जाएगी। उसकी असफलता में ही ये जी सकते हैं। इसलिए कोई एक स्टेट के तल पर...

...इंपारटेंट पाजिटिवली, व्हीच केन...कांग्रेस पाट्री ऑफ इंडिया, केन बी...

नहीं, मैं किसी पार्टी से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। पार्टियों की अपनी गलतियां हैं, अपनी भूलें हैं। और मजा यह है कि भारत की चाहे कोई भी पार्टी हो, क्योंकि वह भारतीयों की है इसलिए भारतीयों की बुनियादी बेवकूफियां सब पार्टियों के साथ जुड़ी हैं। वह जिस भारतीय मन से मैं लड़ रहा हूं, वह मन क्योंकि सभी पार्टियों के भीतर वही मन है, इसलिए वह बुनियादी रूप से चचेरे भाई हैं, उनमें बहुत ज्यादा फर्क नहीं है।

व्हीच पाट्री इज़ नियर...।

नहीं, आज ठीक अर्थों में कोई पार्टी, ठीक अर्थों में आज कोई पार्टी समाजवाद की व्यवस्था लाने में इस मुल्क में बहुत करीब नहीं है। तो इसलिए मेरा कहना है कि मैं किसी पार्टी से मेरी कोई सहमति नहीं है। समाजवाद से मेरी सहमति है। और समाजवाद के लिए हिंदुस्तान में एक हवा बननी चाहिए। तो एक हवा से एक पार्टी विकसित हो सकती है, जो कि ठीक अर्थों में समाजवादी हो।

आल इमपासिबल टु बिलीव...। यस्टरडे यू टोल्ड...।

हमेशा, हमेशा, जो नहीं हुआ है उसकी बात करना उटोपिया की ही बात करनी है। जो नहीं हुआ है। हमेशा। जो नहीं हुआ है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, मैं समझा। नहीं, इसलिए मैं कह रहा हूं, इसलिए मैं कह रहा हूं कि मैं ये जो एडजेस्टिंग पोलिटिकल पार्टीज हैं, पार्टी के ढांचे गलत हो सकते हैं, इनके भीतर ढेर व्यक्ति हैं जो गलत नहीं हैं। उनके तंत्र गलत हो सकते हैं। हिंदुस्तान में अभी भी लोकमानस के निकटतम पहुंच सके समाजवाद का संदेश, वैसी कोई वैचारिक पार्टी खड़ी नहीं हो सकी। प्रयास हुए बहुत से। वे प्रयास कई तरह से नष्ट हुए। कम्युनिस्ट पार्टी के साथ, लोकमानस और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच कुछ बुनियादी फासले खड़े हो गए। वे कम्युनिस्ट पार्टी के बनने में खड़े हो गए।

कम्युनिस्ट पार्टी जो संदेश लेकर यहां आई वह संदेश केवल समाजवाद का संदेश न होकर साथ ही नास्तिकता और अधर्म का संदेश भी बन गया। उसके दुष्परिणाम हुए भारत में। भारत के मानस में नास्तिकता के लिए कोई जगह नहीं है। आज भी नहीं है भारत के मानस में। थोड़े से शिक्षित, पढ़े-लिखे लोगों के मन में हो सकती है। भारत के मानस में कोई जगह नहीं है। तो कम्युनिस्ट पार्टी भारत के मानस के बीच एक बुनियादी बैरियर की तरह है। उससे नास्तिकता और धर्म-विरोधी भाव खड़ा हुआ है।

दूसरे सोशलिस्ट जो हिंदुस्तान के थे, वे सोशलिस्ट कम थे और बुनियादी रूप से गांधीवादी ज्यादा थे। गांधीवाद को उन्होंने सोशलिज्म की शक्ल में गढ़ा हुआ था। और गांधीवादी बुनियादी रूप से, गांधीवाद बुनियादी रूप से समाजवाद नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, वह नहीं कह रहा हूं। वह नहीं है। और, तो जो दूसरा सोशलिस्ट दिमाग पैदा हुआ मुल्क में, जयप्रकाश या उस तरह के लोगों का, वे मूलतः गांधीवादी हैं। सोशलिज्म की तरफ उसके झुकाव थे। उसने थोड़ी-बहुत कोशिश की, वह असफल हो गया, वह असफल होने को था। वह धीरे-धीरे इधर-उधर भाग गया। या तो कुछ सर्वोदय में जाकर लग गया और उसमें डूब गया अपने को भुलाने के लिए, या किसी और काम में लग गया। हिंदुस्तान में पिछले तीस-चालीस साल के भीतर कोई व्यवस्थित रूप से समाजवाद एज ए थॉट म्यूजियम खड़ा नहीं हो सका।

पार्टी पैदा होती है वैचारिक क्रांति से। पार्टीज तो खड़ी हो गइ हिंदुस्तान में लेकिन वैचारिक क्रांति बिलकुल नहीं हुई। पार्टीज आउट...एक वैचारिक मूवमेंट की। हिंदुस्तान में एक समाजवाद, एक लोकमानस को छूने वाला आंदोलन नहीं बन सका। पार्टीज खड़ी हो गइ। और पार्टीज कई तरह से खड़ी हो गइ। ये जो पार्टीज खड़ी हुइ इनका अब भी लोकमानस से कोई संबंध, सीधा साक्षात्कार नहीं हो सका है। तो मेरी जो दृष्टि है, मुझे पार्टी की फिक्र नहीं है, जितनी समाजवादी लोकभावना की फिक्र है।

समाजवाद एक वैचारिक तल पर देश के भाव में पैदा हो जाए, तो पार्टीज उससे पैदा हो सकती हैं। एडजेस्टिंग पार्टीज भी उसके अनुकूल बन सकती हैं, वह दूसरी बात है। उसकी मुझे चिंता नहीं। इसलिए आप जो कहते हैं कि यह उटोपिया मालूम होता है। यह ठीक भी है एक अर्थों में, क्योंकि विचार की कोई भी क्रांति उटोपिया ही है। लेकिन विचार की क्रांति से धीरे-धीरे सक्रिय मूवमेंट पैदा होते हैं और वे उटोपिया नहीं रह जाते हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, समझा न, समझा, मैं समझ गया। मैं अभी आपसे बात कर रहा था, आप नहीं आए उसके पहले यह बात हो चुकी। मैं यह कह रहा था कि वह जो आग लगी है, वह आपको जो आग दिखाई पड़ती है, इमिजिएट

प्रॉब्लमस की, उसको आग नहीं कह रहा हूं। हम, हमारी आग लगी है बहुत सनातन, और वह जो आग लगी है वह इमिजिएट प्रॉब्लमस की नहीं, इमिजिएट प्रॉब्लमस उस सनातन आग के परिणाम हैं, बाइ-प्रोडक्ट हैं।

सनातन आग तो गरीबी है।

न-न। गरीबी मैं नहीं कह रहा हूं। गरीबी भी हमारी चिंतना का परिणाम है। गरीबी भी बेसिक कारण नहीं है। हम जिस तरह सोचते रहे हैं आज तक उसमें गरीबी ही पैदा हो सकती है। वह हमारे सोचने के गलत रास्तों का परिणाम है। गरीबी भी! हम गरीब अकारण नहीं हैं। और गरीब होना कोई प्राकृतिक घटना नहीं है हमारे ऊपर। और गरीबी भी हमारे सोचने के गलत ढंगों का परिणाम है। और जब तक वे सोचने के गलत ढंग नहीं बदले जाते हैं, तब तक आप गरीबी को थोड़ी-बहुत सहने योग्य बना सकते हैं, और आप इससे ज्यादा कुछ भी नहीं कर सकते। और वह भी आप नहीं कर पाएंगे। जैसा मेरा कहना है, जैसा मेरा करना है कि हमको आज तीस साल से पता है यह बात कि अगर हमारी जनसंख्या बढ़ती चली जाती है तो हम रोज गरीब से गरीब होते चले जाएंगे। यह तीस साल से हमें पता है। लेकिन हमारी जनसंख्या बढ़ती ही चली गई है। और आज भी जो हम उपाय कर रहे हैं वे उपाय ऐसे हैं जैसे पूरे समुद्र को कोई थोड़ी-बहुत रंग की टिकिया डाल कर वह रंगने की कोशिश कर रहा है।

इतने ही उपाय से अगर हमने संख्या को रोकने की कोशिश की, तो हम दो सौ साल में भी संख्या नहीं रोक सकते हैं! और जितने हम उपाय कर रहे हैं, वे उतने उपाय इतने कम हैं और संख्या इतनी तीव्रता से बढ़ रही है, यह हमारी समझ के बाहर हुआ जा रहा है। लेकिन संख्या बढ़ रही है इसलिए नहीं कि संख्या बढ़ने के बाबत हमारी समझ नहीं है कि वह गलत है बल्कि बच्चों को पैदा करने के बाबत हमारी जो समझ है वह सनातन है। वह यह है कि बच्चे परमात्मा से आते हैं, हमें उन्हें रोकने का कोई हक नहीं है।

मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? तीस साल में दूसरे मुल्कों ने, जैसे फ्रांस जैसे मुल्क ने अपनी संख्या थिर कर ली है। आज तो फ्रांस में भी चिंता की यह बात है कि अगर यह संख्या थिर रही तो कहीं यह न हो कि आने वाले पचास वर्षों में उनकी संख्या नीचे गिरनी शुरू हो जाए, वे जितने हैं उससे कम न हो जाएं। अब यह बड़े मजे की बात है कि एक ही पृथ्वी पर हम लोग रह रहे हैं!

एक के सामने सवाल है कि हम संख्या कैसे रोकें! और अभी भी कौमें हैं जिनके सामने सवाल है कि हम अपनी संख्या गिरने से कैसे रोकें! कहीं वह बिलकुल न गिर जाए। अब पश्चिम में उनको चिंता पैदा शुरू हो गई कि पूरब के लोग तो पैदाइश बढ़ाए चले जा रहे हैं। कहीं सौ साल में ऐसा न हो जाए कि सफेद रंग की जातियां काले रंग की जातियों से इतनी कम पड़ जाएं कि हमारा जीना मुश्किल हो जाए इनके साथ।

मेरा मतलब यह है, हम जिस ढंग से सोचते हैं वे ढंग हमारी सारी की सारी जीवन-प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। वे इमिजिएट दिखाई नहीं पड़ते हमें। अब जैसे मैं आपको कहूं, अभी भी करपात्री जाकर गांव में अगर समझाते हैं लोगों को कि यह संतति-नियमन जो है यह धर्म विरुद्ध है। तो गांव के आदमी के समझ में आता है। लेकिन अगर गांव के आदमी को जाकर आप समझाएं कि बच्चे पैदा करना धर्म विरुद्ध है। तो समझने की बात

से बिलकुल बाहर हो जाता है। मैं जो कह रहा हूं, मेरे सामने इमिजिएट प्रॉब्लमस महत्वपूर्ण नहीं हैं। क्योंकि मैं मानता हूं, इमिजिएट प्रॉब्लमस जो हैं वे हमारे बेसिक थिंकिंग के आउटकम हैं, कान्सिक्वेंसिस हैं। बेसिक थिंकिंग अपनी प्रॉब्लम है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जरूर! लिमिटेड है। लिमिटेड है। और यह भी सच है, लेकिन उस लिमिटेशन को तोड़ने का सवाल है। उसको ही तोड़ने का सवाल है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बिलकुल ठीक है, लेकिन वह भी क्यों? वह भी क्यों?

बिकाज कंट्री इज़ पुअर।

नहीं, कंट्री पुअर है यह नहीं। शरीर के प्रति जितना हमें ध्यान देना चाहिए वह हमारे भाव के भीतर नहीं कि शरीर के प्रति ध्यान देना है। कुछ भी खा लिया और काम चला लेना। शरीर के प्रति एक बेसिक निग्लेक्शन हमारे भीतर है। और वह जो हमारी फिलासफी का हिस्सा है। हमारी फिलासफी यह कह रही है कि शरीर से कुछ लेना-देना नहीं। एक दफा खाना खा लो तो भी ठीक है, कुछ भी खा लो तो भी ठीक है। शरीर तो गौण है, असली चीज तो आत्मा है।
मैं आपसे यह कह रहा हूं कि आपने भी वैटेलिटी खोज ली होती, विटामिन खोज लिए होते। आपने भी खोज लिया होता कि कौन सी डिफिशिएंसी है। लेकिन शरीर से हमें कोई लेना-देना नहीं। बल्कि सच यह है कि हम उस आदमी को आदर देते हैं जो शरीर के प्रति जितना उपेक्षापूर्ण हो। हम उसको आदर देते हैं। और जो आदमी शरीर की जितनी चिंता करे, उसको हम आदर नहीं देते। अगर गांधी थर्ड क्लास में चलेंगे तो हम आदर ज्यादा देंगे बजाए फर्स्ट क्लास में चलने के। और उसका बुनियादी कारण क्या है? उसका बुनियादी कारण यह है कि हम तीन हजार वर्ष से यह सोचते हैं कि शरीर की जो उपेक्षा करता है वही आत्मवादी है।
तो मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? यह जो हम नहीं खोज पाए डिफिशिएंसी और हम लेजी हो गए। उसके कारण डिफिशिएंसी में नहीं; उसके कारण भी हमारी बेसिक थिंकिंग है। हिंदुस्तान जो है एक तरह का एंटी-बॉडी एटीटयूड है उसके माइंड का। और वह एंटी-बॉडी एटीटयूड जो है वह नुकसान पहुंचा रहा है। और वह जब तक नहीं बदल देते तब तक हम खोज-बीन कर भी नहीं पाएंगे। अभी भी हालत यह है, अभी भी हालत यह है कि अभी भी हम जो खाना खाते हैं, हमारा शिक्षित से शिक्षित भी व्यक्ति कोई बहुत बोधपूर्वक खाना खा रहा हो ऐसा नहीं है कि वह क्या खा रहा है? वह जो खा रहा है, शिक्षित से शिक्षित व्यक्ति भी, उसको कोई बोध नहीं

है खाने के बाबत। वह कैसे सो रहा है इसका भी बोध नहीं है। हमारी चेष्टा यह रही है कि अगर एक नंगे तख्त पर आदमी सोता है तो वह ज्यादा ऊंचा काम कर रहा है। इसकी हमें कोई फिक्र नहीं कि नंगा तख्त उसके स्वास्थ्य में वर्धक होगा कि नुकसानदायक होगा। इसका हमें कोई विचार नहीं है।

हम क्या खा रहे हैं इसका विचार नहीं है। कम जो खाता है, सस्ते से सस्ता जो खाता है, वह कोई ऊंचा काम कर रहा है। उपवास जो करता है वह खाने वाले से भी ऊंचा काम कर रहा है। कपड़े पहनने वाला आदमी गलती कर रहा है, नंगा जो बैठा हुआ है चाहे कितनी भी तकलीफ झेल रहा हो, वह ऊंचा काम कर रहा है।

हमारी जो बेसिक दृष्टि है शरीर-विरोधी होने की वजह से...डिफिशिएंसी रह गई, डिफिशिएंसी हम कभी भी पूरा कर लेते। मजे की बात यह है कि हिंदुस्तान में सबसे पहले शरीर के बाबत जानकारियां प्राप्त कर ली थीं। जो कि पश्चिम ने अभी तीन सौ वर्षों में प्राप्त कीं। और फिर भी हम कुछ भी नहीं कर पाए। नहीं करने का कारण है। जब एक दफा अभिनय...

अमेजान में एक कबीला रहता है दक्षिण अमरीका में। तो उस कबीले की हजारों साल की ट्रेनिंग यह रही है कि कोई भी आदमी अपने खेत पर काम नहीं करेगा। सारा गांव एक आदमी के खेत पर काम करेगा। अपने खेत पर काम करना बुरा मानते हैं वे। जब तक कि सब लोग काम करने न आएं। और दूसरे के खेत पर काम करने को अच्छा मानते हैं। एक भाई-चारे के लिए। लेकिन वह कबीले के जो खेत हैं, छोटे-छोटे टुकड़े और दूर-दूर पहाड़ियों पर हैं। तो सारे गांव को दूर-दूर की यात्रा करनी पड़ती है काम के लिए। और परिणाम यह हुआ है कि उनके बगल का कबीला सुखी और संपन्न है।

उनके पास भी उतने-उतने दूर खेत हैं, लेकिन वे अपने-अपने खेत पर काम करते हैं। यह कबीला भूखा मर रहा है हजारों साल से। लेकिन वह जो उसकी धारणा है कि अपने खेत पर काम करना स्वार्थपूर्ण है दूसरे के खेत पर काम करना ही सामाजिक बात है, अच्छी बात है, वही धार्मिक कृत्य है। वे गरीब रहे। दोनों कबीले एक तरह की जमीन पर रहते हैं, एक तरह के लोग हैं। एक कबीला भूखा मर रहा है हजारों साल से, दूसरा कबीला संपन्न है। लेकिन वह कबीला भूखा मर रहा है। और उसका कुल कारण इतना है कि वह उसकी बेसिक दृष्टि में बुनियादी भेद है।

हाउ मैनी डिस्ट्रीब्यूट गांधी एंड गांधीइज्म...। गांधीइज्म...व्हैरी गुड वर्डस अबाउट गांधी। आई थिंक, गांधी एंड गांधीइज्म दे केन नॉट बी सेपरेट।

हां-हां, वे बिलकुल सेपरेट किए जा सकते हैं इस तरह। इसलिए कहता हूं, गांधी की नैतिकता, गांधी का आचरण, गांधी का व्यक्तित्व, उनकी नींव, उनकी चेष्टा, वह सब अदभुत है और प्रीतिकर है। लेकिन गांधी...

एज ए ह्यूमन बीइंग।

एज ए ह्यूमन बीइंग, एज ए ह्यूमन बीइंग। एज ए ह्यूमन बीइंग मैं गांधी को पसंद करता हूं मार्क्स को पसंद नहीं करता। मार्क्स के पास मुझे कोई कीमती व्यक्तित्व नहीं मालूम पड़ता। कोई पर्सनैलिटी नहीं मालूम पड़ती। जिसको कि जिसको हम व्यक्ति की तरह आदर दे सकें। लेकिन मार्क्सइज्म को मैं गांधीइज्म से पसंद करता हूं। क्योंकि मार्क्सइज्म की जो दृष्टि है वैज्ञानिक है। जीवन को बदलने के लिए ज्यादा मूलभूत है। तो मैं दुनिया ऐसी चाहूंगा, जहां गांधी जैसे आदमी हों और मार्क्स जैसा समाज हो।
मार्क्स के व्यक्तित्व में मुझे बहुत ही साधारण आदमी मालूम पड़ता है। फ्रायड का व्यक्तित्व इतना साधारण है जिसका हिसाब नहीं। लेकिन फ्रायड ने जो कहा है, जो खोज की, वह बहुत असाधारण है। तो एज ए ह्यूमन बीइंग, मैं गांधी की जितनी तारीफ कर सकूं, उतना करता हूं। लेकिन गांधी की जो दृष्टि है समाज के मसले के पक्ष में वह दृष्टि मुझे वैज्ञानिक नहीं मालूम पड़ती, उसका मैं विरोध करता हूं। इसलिए गांधीइज्म में और गांधी में मैं फर्क कर लेता हूं।

लेकिन गांधी ने तो कहा था कि मुझे भूल जाओ, मेरे विचार को याद करो।

हां, गांधी ने यह कहा था। और मैं यह कहता हूं कि गांधी को मत भूलना, गांधी के विचार को भूल जाओ। क्योंकि मुझे लगता है, गांधी बहुत मूल्यवान हैं और विचार कुछ मूल्य का नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

ठीक बात है। ठीक है। असल में चेंज ही करना हो तो मार्क्स को भी एक फिलासफी एड करनी पड़ती है। चेंज करना हो तो भी।

बट इज़ युवर पार्लियामेंट स्कीम...।

मेरा मतलब नहीं समझे आप। मार्क्स को भी अगर चेंज करनी हो दुनिया, तो भी एक नई फिलासफी एड करनी पड़ती है। क्योंकि उस फिलासफी के प्रभाव में ही वह चेंज होगी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मार्क्स ने कुछ इंप्लीमेंट करने के लिए नहीं किया। मार्क्स को फुर्सत भी नहीं थी। मैं आपको कहूं, मार्क्स को कल्पना भी नहीं थी और फुर्सत भी न थी। और मार्क्स ने इंप्लीमेंटेशन के लिए कुछ भी नहीं किया। इंप्लीमेंटेशन पचास साल बाद होना शुरू हुआ। और बिलकुल दूसरे लोगों ने किया। और मेरी अपनी समझ यह है कि आज तक दुनिया में कोई फिलासफर इंप्लीमेंटेशन कभी नहीं किया है। वह दृष्टि दे सकता है, इंप्लीमेंटेशन करने वाले

लोग आते हैं वे इंप्लीमेंट करते हैं। लेनिन ने इंप्लीमेंटेशन किया और उससे भी ज्यादा स्टैलिन ने किया। मार्क्स ने कुछ इंप्लीमेंटेशन किया नहीं, कर सकता नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कुछ भी नहीं। कुछ भी नहीं।

फर्स्ट इंटरनेशनल...।

हां, यह तो ठीक है न, यह सब ठीक है। फर्स्ट इंटरनेशनल भी जो है वह भी फिलासफिकल मूवमेंट है मार्क्स के लिए।

लेकिन सबको उसकी जरूरत है।

जरूर! मैं तो उसके लिए, मैं तो जीवन जागृति केंद्र और युवक क्रांति, दोनों को, सब खड़े करता हूं। वह मैं खड़े करता हूं। लेकिन मार्क्स की दृष्टि में और मार्क्स के समय में फर्स्ट इंटरनेशनल जो है वह एक फिलासफिकल मूवमेंट है। वह एक मूवमेंट है कम्युनिज्म की विचारधारा को पहुंचाने का। इंप्लीमेंटेशन बहुत पीछे आता है। कई दफा तो हजारों वर्ष बाद इंप्लीमेंटेशन आता है। इंप्लीमेंटेशन तो उतना महत्वपूर्ण भी नहीं है। एक दफा साइंटिफिक दृष्टि साफ हो जाए तो इंप्लीमेंटेशन आ जाएगा। उसकी कोई चिंता की बात नहीं है।

अच्छा, वह मूल दृष्टि। तो आपके ख्याल से अभी फिलासफिकल मूवमेंट करनी चाहिए। और दूसरी कोई एक्टिविटी की जरूरत नहीं है।

न-न, यह मैं नहीं कहता कि जरूरत नहीं है। जिनको जरूरत लगती है वे कर रहे हैं। मैं नहीं कर रहा हूं।

वह बहुत तेजी से निकली। आज जो दूसरी जो कि पोलिटिकल रह गई, समझ लीजिए सोशिएल है। वह कौनसा तेजी से करना चाहिए। आपने बताया कि डमोक्रेसी एक्जेस्टीड हुई है। तो यह पोलिटिकल एक्टिविटी में जो लोग आपके ख्याल से साथ हैं, वे जो खड़े हैं, उनको आप क्या कहेंगे?

उनको मैं जो कह रहा हूं, उनको जो मैं कह रहा हूं, मेरी बात जो वे समझ रहे हैं...।

अब वे बीच में तो नहीं रहेंगे, धरती पर उतरेंगे।

न, न, न, वे तो उतरेंगे धरती पर। एक दफे, स्पेस हो तो ही धरती पर उतरेंगे। स्पेस ही न हो तो धरती पर कुछ भी नहीं उतरेगा। तो अभी स्पेस में ही नहीं है। यानी जो तकलीफ है, जो तकलीफ है वह यह है कि इस मुल्क के पास अभी मस्तिष्क मैं भी विचार नहीं है जो धरती पर उतर सके। धरती पर उतने की जल्दी मत करिए। वहां स्पेस तो होने दीजिए, तो धरती पर उतरेंगे।

तो लांगटर्म और शार्टटर्म दो प्रोग्राम बनाएंगे न।

बिलकुल ही ठीक है न। अभी तो, अभी तो शार्टटर्म की फुर्सत नहीं है अभी तो लांगटर्म ही सवाल है। अभी मेरे सामने तो जो सवाल है वह यह कि एक बार विचार बीज फैल जाएं तो इंप्लीमेंटेशन में उतरना शुरू हो जाएंगे। इसकी मुझे चिंता की बात नहीं है। हमारी हमेशा चिंता इंप्लीमेंटेशन की ज्यादा होती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वे जो फेल न होते, अगर वे विचार-क्रांति वाले ही होते। वे इंप्लीमेंटेशन...(अस्पष्ट) कोई फर्क नहीं इसलिए फेल हो गए, यह मैं आपसे कहता हूं। जो आप कह रहे हैं वह गलती बात है। विनोबा अगर सिर्फ विचार-क्रांति करते तो फेल न होते, और हो सकता था उनकी विचार-क्रांति परिणाम भी लाती। विचार-क्रांति एक तरफ रह गई, वे इंप्लीमेंटेशन में पड़ गए। और इंप्लीमेंटेशन में पड़ कर सबका सब खराब कर दिया। यानी विनोबा की असफलता विचार की असफलता नहीं है, इंप्लीमेंटेशन की असफलता है। और वह विनोबा विचार की दृष्टि से असफल नहीं हो गए, जो उन्होंने किया उसमें फंस गए।

समव्हेयर यू सेइंग गांधी जी कुड नॉट ट्रांसफार्म ऑर चेंज ह्यूमन कैपिटिलिस्ट दे ऑर गोइंग ए कैपिटलिस्ट सोसाइटी...

नहीं, मैं तो मानता हूं कि चेंज किया ही नहीं जा सकता, इसलिए गांधी नहीं कर सके। वह धारणा ही गलत थी एक-एक व्यक्ति को चेंज करने की। मेरा तो मानना ही नहीं है, ये चेंज किए जा सकते हैं। मेरा तो कहना यह है कि गांधी भूल में थे, वे सोचते थे कि हम कैपिटलिस्ट को चेंज कर लेंगे। कैपिटलिज्म चेंज किया जा सकता है, कैपिटलिस्ट नहीं किया जा सकता।

कैपिटलिस्ट किस तरह से चेंज किया जा सकता है?

जैसे सारी दुनिया में हो रहे हैं। रूस में कैसे चेंज किए गए। चीन में कैसे चेंज हो रहे हैं।

लोकतंत्र का अभिनत्व आप क्या देखते हैं।

वही तो मैंने कहा, वही विकल्प है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

दूसरा खड़ा नहीं होगा। दूसरा खड़ा नहीं होगा। व्यवस्थापक वर्ग खड़ा हो जाएगा। शोषक वर्ग खड़ा नहीं होगा।

तो लोकतंत्र पर आज का फायदा नहीं हुआ तो... । हमारे किसान भारत के और मजदूर जो पीड़ित हैं, शोषित हैं, लोकतंत्र द्वारा उसको फायदा नहीं होगा?

न तो उनके शोषण में कोई फर्क नहीं पड़ता। उनकी पीड़ा कम हो सकती है। वह सवाल नहीं है।

और लोकतंत्र से यह प्रश्न हल नहीं हो सकता?

न, यह नहीं हल किया जा सकता। उसकी वजह यह है, उसकी वजह यह है कि लोकतंत्र मानता यह है क्योंकि लोकतंत्र जो है वह कोई विवादी व्यवस्था की ही बाइ-प्रोडक्ट है। तो लोकतंत्र मानता यह है कि पूंजीपति पर दबाव डालना, उसके शोषण के इंतजाम को तोड़ना, यह लोकतंत्र का हमला है। व्यक्तिगत संपत्ति लोकतंत्र का अनिवार्य हिस्सा है। वह उसको व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम से कहता है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता होनी चाहिए प्रत्येक व्यक्ति को और व्यक्तिगत संपत्ति वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हिस्सा मानता है।
अगर आप लोकतंत्र का ही नाम रखना चाहते हैं, नाम से कोई झगड़ा नहीं। लेकिन लोकतंत्र नाम रहे तो भी हमें एक व्यक्तिगत संपत्ति पर चोट करनी पड़ेगी और व्यक्तिगत संपत्ति को समर्थन देने वाली विचारधाराओं पर भी चोट करनी पड़ेगी तो ही व्यक्तिगत संपत्ति जाती है।

कल ही आपने कहा था कि व्यक्तिगत संपत्ति जब तक नहीं बढ़ती, तो हम भौतिकवाद... ।

नहीं, यह तो आप गलत समझ रहे हैं, आप समझे नहीं फिर, यह आप नहीं समझे।

कैपिटिलिस्ट केन नॉट बी चेंज।

हां, कैपिटलिज्म चेंज किया जा सकता है।

यू डोंट फाइंड एनी आब्जेक्शन इन मूवमेंटली सेम ऑल।

कोई सवाल ही नहीं है। कैपिटलिस्ट जो है, कैपिटलिस्ट जो है, वह कैपिटलिज्म का उतना ही विक्टिम है जितना प्रोलिटेरिएट, दोनों। यानी सवाल, इस कैपिटलिज्म का जो इंतजाम है, जो सरंजाम है, जो व्यवस्था है उसमें पूंजीपति उतना ही शिकार है जितना की मजदूर। वे दोनों ही नुकसान में और परेशानी में हैं। मुझे कैपिटलिस्ट से कोई भी विरोध नहीं है, कैपिटलिज्म से विरोध है। यह साफ होना चाहिए। इसलिए पूंजीपति का दुश्मन नहीं हूं मैं। पूंजीपति से इतना है कि समाजवाद आए दुनिया में।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

इसको थोड़ा समझ लें। क्राइस्ट के मैसेज में, बुद्ध के मैसेज में और मेरी बात में बुनियादी फर्क है। नहीं, मेरी बात समझना न, फर्क क्या है, फर्क क्या है, क्राइस्ट का मैसेज सोसाइटी को बदलने का तो सवाल ही नहीं है, क्राइस्ट का मैसेज तो इंडिविजुअल ट्रांसफार्मेशन का है। बुद्ध का मैसेज भी इंडिविजुअल ट्रांसफार्मेशन का है, एक-एक व्यक्ति को बदलने का है। गांधी की बात आप ले सकते हैं, बुद्ध और क्राइस्ट को छोड़ दें—उनका मैसेज बुनियादी फर्क है। गांधी का मैसेज और गांधीवादी की आप बात ले सकते हैं कि गांधी का मैसेज था और गांधीवादियों ने जो हालत की, तो अगर मैं एक बात कहूं कि बीस साल में मेरा कोई अनुयायी होगा, तो यही हालत कर देगा।

उसमें मेरा कहना यह है कि वह जो गांधीवादी ने हालत की है वह गांधीवादी का कसूर नहीं, गांधीवाद का कसूर है, यह होने वाला था। यह गांधी के साथ यही होने वाला था। क्योंकि गांधीवाद की बुनियादी दृष्टि गलत है। तो गांधीवादी जो भी करेगा उससे गलती होने वाली है। यह गांधीवादी का कसूर नहीं है। यह कोई मोरार जी देसाई का या किसी और का कसूर नहीं है। गांधीवाद की जो दृष्टि है वह दृष्टि चूंकि गलत है। इसलिए जो भी उससे इंप्लीमेंटेशन करेगा वह झंझट में पड़ जाएगा, वह इसी तरह की झंझट होने वाली है।

मेरा जो कहना है न, जो मैं कह रहा हूं अगर वह दृष्टि वैज्ञानिक है तो उसके इंप्लीमेंटेशन करने वाला सफल हो जाएगा। और अगर वह जो दृष्टि वैज्ञानिक नहीं है, तो इंप्लीमेंटेशन नहीं हो सकता, वह खत्म हो जाएगा। अनुयायी का दोष नहीं है उतना। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? जितना वाद का दोष है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, यह तो ठीक कहते हैं आप। असल बात यह है, असल बात यह है कि जब कोई फिलासफी उनके अनुयायियों के द्वारा नष्ट होती है तो दो-तीन कारण होते हैं।

एक कारण तो किसी फिलासफी की वैज्ञानिकता की परीक्षा ही तब होती है जब अनुयायी उसको इंप्लीमेंटेशन करते हैं। उसके पहले तो उसकी परीक्षा भी नहीं होती। हवा में तो सभी चीजें ठीक मालूम होती हैं। हवा में कोई दिक्कत नहीं है। एक्सप्रेस थिंकिंग में तो सभी चीजें ठीक हो सकती हैं क्योंकि सिर्फ आर्ग्युमेंट और लाजिक की बात है। हर विजिटल बात है। लेकिन जब आप इसको व्यावहारिक रूप से इंप्लीमेंट करते हैं, तभी पता चलता है कि वह इंप्लीमेंट हो सकती है कि नहीं हो सकती। इसलिए असली कठिनाई तो हमेशा इंप्लीमेंटेशन वाले के सामने खड़ी होती है। और उसमें हमेशा परेशानी हुई है क्योंकि आकाश से जमीन तक उतारने में बहुत दिक्कतें होती हैं, एक बात।

दूसरी बात, अनुयायी जो है, अनुयायी जो है अगर वह एक भावनागत प्रभाव से किसी चीज से प्रभावित हुआ है तो एक स्थिति होगी, और लाजिकल, रेशनल और बुद्धिमत्ता से प्रभावित हुआ तो बिलकुल दूसरी बात होगी। गांधी जैसे व्यक्तियों का प्रभाव भावनागत ज्यादा होता है, विचारगत कम। मार्क्स जैसे व्यक्तियों का प्रभाव विचारगत ज्यादा होता है, भावनागत कम। मेरा मतलब, मेरा मतलब जो मैं कह रहा हूं।...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं आपको बात कहता हूं, मैं आपको बात करता हूं, मैं आपको बात करता हूं कि अगर मेरा कोई पैर छूता है आकर, मेरी जितनी विचारधारा है, जितनी ज्यादा से ज्यादा तर्कयुक्त हो सकती है उतनी मैं उसे तर्कयुक्त बनाने की कोशिश करता हूं। विचारधारा मेरी जो है, मेरी विचारधारा से जो प्रभावित होगा, वह एक बात है। जो इस मुल्क की धारा है हमेशा से, एक संन्यासी से साधु से प्रभावित होने की, वह बिलकुल दूसरी बात है। लेकिन जो आदमी मेरे पैर छूने भी आएगा, वह भी अगर आता ही रहा तो बहुत जल्दी उसको समझ में आ आएगा कि पैर छूना निरर्थक है उसका कोई उपयोग नहीं। इसलिए मैं उसे रोकता भी नहीं।

क्योंकि जो मैं कह रहा हूं चौबीस घंटे, वह उस तरह की सारी बातों के प्रतिकूल है। मैं कोई भावनागत बात उसमें फैलाना नहीं चाह रहा हूं, कोई इमोशनल बात पैदा करना नहीं चाह रहा हूं। मेरी चेष्टा तो निरंतर एक बौद्धिक-क्रांति की है। अब अगर इतनी बौद्धिक-क्रांति की बातें सुन कर भी वह पैर छूने आता है तो वह पैर छूना उसकी कंडीशनिंग का हिस्सा है, जो हजारों साल की कंडीशनिंग है।

तो मेरी दृष्टि यह है कि अगर वह विचार करना सीखता है मेरे साथ तो बहुत जल्दी इस तरह की भावनाओं से मुक्त हो जाएगा। हो जाना चाहिए। मैं उसको कोई बढ़ावा नहीं देता हूं। क्योंकि मैं जो भी कह रहा हूं वह बिलकुल प्रतिकूल है। दुनिया में जो आइडियालॉजीस हैं अगर वे वैज्ञानिक हैं, तर्कबद्ध हैं, तर्कशुद्ध हैं तो उनके इंप्लीमेंटेशन में कठिनाई नहीं होगी। लेकिन अगर वे काल्पनिक हैं, उटोपियन हैं और बेसिकली उनमें कोई विज्ञान की बात नहीं है, तो उनके इंप्लीमेंटेशन में तकलीफ होती है।

गांधी की विचारधारा की इंप्लीमेंटेशन में तकलीफ होगी, क्योंकि वह तर्कशुद्ध नहीं है और न वैज्ञानिक है। काल्पनिक है, भावनापूर्ण है। वह भाव बहुत अच्छा है कि पूंजीपति राजी हो जाए, ट्रस्टी बन जाए। लेकिन यह विज्ञान सम्मत नहीं है यह बात, यह होने वाला नहीं है, यह होने वाला नहीं है। तो यह गांधी की अनुयायी की जो

असफलता है वह एकदम अनुयायी की असफलता नहीं है, वह मूलतः गांधीवाद की असफलता है। वह बेचारा अनुयायी फंस जाता है। उसको हम कहते हैं कि यह इन्होंने सब बर्बाद कर गया। वह बर्बाद करेगा ही। कोई उपाय नहीं था उसका।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, बिलकुल ठीक है। न, वह जो गॉड है, मैं समझ गया। वह मंदिर में भगवान बैठा हुआ है वह पत्थर का है, वह उनसे कुछ कहता नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं-नहीं, मेरी बात आप नहीं समझ रहे। वह पत्थर का भगवान उनसे नहीं कहता यह कि तुम दुकान में जाकर गर्दन मत काटना। मैं उनसे कहता हूं कि दुकान में जाकर गर्दन मत काटना। मेरा मतलब...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं-नहीं, अगर कहने से कोई डिफरेंस होता ही नहीं तब तो फिर कोई उपाय ही नहीं मानते आप।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरी बात नहीं समझे आप। अगर हम यह माने लें कि कहने से कोई डिफरेंस होता ही नहीं, तो फिर कोई उपाय नहीं रहा कम्युनिकेशन का। जो मैं यह कह रहा हूं, मैं यह कह रहा हूं कि यह जो मंदिर का भगवान है उसको वे धोखा दे पाते हैं क्योंकि वह पत्थर का है। और इसलिए पत्थर का उन्होंने भगवान बनाया हुआ है ताकि उससे कोई झंझट पैदा न हो।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, यह जो आप, यह जो कह रहे हैं न, डू गुड थिंग्स। जो वे कहते हैं तो गुड थिंग्स का मतलब यह है कि चर्च जाना चाहिए रविवार को, भगवान को माला चढ़ानी चाहिए, मंत्र पढ़ना चाहिए। गुड थिंग्स वह यह नहीं कह रहे हैं कि इल्लाजिकल नहीं होना चाहिए। यह मेरी बात आप समझ रहे हैं न? बल्कि सच यह है कि उनकी सारी गुड थिंग्स इसी पर निर्भर है कि आप लाजिक न लाएं बीच में। लाजिक लाए तो गड़बड़ हो गया। मैं जिसको कह रहा हूं गुड, उसमें गुड में पहली तो बात रीजन है। मैं आपसे जिसको मैं गुड कह रहा हूं, उसमें पहली बात

रीजन है। उस रीजन में क्या है? भगवान की हत्या हो तो हो जाए, मंदिर जलता हो जल जाए, मूर्ति टूटती हो टूट जाए, शास्त्र फिंकता हो फिंक जाए।

मैं पहली तो गुडनेस यह मानता हूं कि रीजन होना चाहिए। वह जो प्रीस्ट कह रहा है आपसे गुडनेस, वह कह रहा है कि इररीजन। वह यह नहीं कह रहा आपसे कि रीजन, वह यह कह रहा है कि मरियम को कुंआरी मानो। यह बहुत अच्छे आदमी का लक्षण है। जो शक करता है वह बहुत गड़बड़ आदमी है। वह जो गुडनेस सीखा रहा है वह गुडनेस नहीं है, वह धोखा है गुडनेस का। दुनिया में गुडनेस आएगी, उसके पहले रीजन आना जरूरी है, नहीं तो नहीं आ सकती।

तो मेरे और प्रीस्ट में बुनियादी फर्क है। मैं प्रीस्ट हूं ही नहीं। यानी मुझसे ज्यादा एंटी-प्रीस्ट कोई आदमी हो नहीं सकता। न तो मैं कोई मंदिर खड़ा कर रहा हूं, न कोई प्रीस्ट खड़ा कर रहा हूं, न भगवान और आदमी के बीच किसी दलाल को स्वीकार कर रहा हूं, न किसी शास्त्र को स्वीकार करता हूं, न मेरी किताब को शास्त्र कहता हूं, न यह कहता हूं कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है, इतना ही कहता हूं कि मुझे सत्य दिखाई पड़ता है और जब तक तुम्हारे रीजन को सत्य न लगे तब तक दो कौड़ी का है, उसको तुम स्वीकार करना मत। यानी कि आखिर हम तोड़ कैसे सकते हैं? आखिर दूसरे व्यक्ति से कम्युनिकेशन का रास्ता कहने के सिवाय क्या है?

अब मेरे पास लोग आते हैं, वे आकर मुझसे कहेंगे कि आप आशीर्वाद दे दें। मैं उनको कहता हूं, आशीर्वाद से कुछ भी नहीं होगा। और तुम इस भ्रम में रहना मत कि मेरे आशीर्वाद से कुछ होने वाला है। तुम मेरे पैर छूते हो तुम सिर्फ कवायद कर रहे हो। तुम इस खयाल में रहना मत कि मेरे पैर छूने से तुम्हें कुछ हो जाए।

अब मैं कर क्या सकता हूं? यह जो तीन-चार हजार वर्ष की कंडीशनिंग है, तो वह कंडीशनिंग को तोड़ने के लिए हमें कहीं-कहीं चोट करनी पड़ती है, और कर क्या सकते हैं? लेकिन चोट हमें बेरहमी से करनी चाहिए। चोट हम नहीं कर पाते जब हम धोखा देते हैं। जब मैं यह कहूं कि तुम दूसरों के पैर को मत छूना वह कवायद है और मैं कहूं मेरे पैर छूना यह बहुत धार्मिक कृत्य है, तब मुश्किल खड़ी हो जाती है। और वही होता रहा है। दुनिया में अब तक एक प्रीस्ट के खिलाफ दूसरा प्रीस्ट रहा है। प्रीस्टहुड के खिलाफ कोई नहीं रहा है। जो आज तक की स्थिति है वह यह है। एक पुरोहित के खिलाफ दूसरा पुरोहित है। वह कहता है, वह पुरोहित गलत है, पुरोहित मैं सही हूं। लेकिन पुरोहितवाद सही है। वह कहता है, महावीर गलत हैं, राम सही हैं। वह कहता है कि बुद्ध गलत हैं, महावीर सही हैं। लेकिन वह यह नहीं कहता कि पुरोहितवाद गलत है, यह भगवानवाद गलत है।

तो मेरी बुनियादी फर्क है। मैं कोई नये धर्म को खड़े करने के पक्ष में नहीं हूं। मैं कहता हूं कि धर्मों का खड़ा होना गलत है। मैं यह नहीं कहता कि यह राम की मूर्ति गलत है और बुद्ध की मूर्ति गलत है और मेरी मूर्ति सही है। मैं यह कहता हूं, यह मूर्तिवाद गलत है। तो इन सारी बातों में बुनियादी फर्क समझना जरूरी है। और वह सिवाय समझाने के हम कर क्या सकते हैं। लेकिन मेरी समझ यह है कि अगर हम ठीक बात समझाने के प्रयास करें और हमारे स्वार्थ न हों उसमें, तो ठीक बात लोगों के हृदय तक पहुंचती है। ठीक बात तभी नहीं पहुंचती जब ठीक बात के पीछे हमारा कोई बहुत बुनियादी स्वार्थ जुड़ा होता है। अगर मेरा कोई स्वार्थ है इस बात में, तो बहुत जल्दी आप मेरे स्वार्थ को पहचान जाएंगे और ठीक बात गौण हो जाएगी, और आप समझ जाएंगे कि वह

सब ठीक बातचीत काम की बातचीत है, जिससे कोई स्वार्थ है। कोई भी स्वार्थ, इतना भी स्वार्थ कि लोग मुझे आदर दें, तो भी फिर सत्य मैं नहीं पहुंचा सकता हूं, उतना स्वार्थ भी, सत्य नहीं पहुंचाया जा सकता है।

तो मुझे, यानी मेरे साथ तो इतनी कठिनाई हो गई। अभी यह सब मामला चला तो मुझे कितने पत्र गए कि हम तो आपके शिष्य थे और हमारी श्रद्धा तो बड़ी चोट पहुंची। तो मैंने उनको लिखा कि तुम मुझसे बिना ही पूछे मेरे शिष्य थे कैसे? मैं कभी किसी का गुरु बना नहीं। और निरंतर कह रहा हूं कि किसी को किसी का शिष्य बनना पाप है। तुम मेरे शिष्य बन कैसे गए? तुम शिष्य थे तो तुम भी गलती कर रहे थे और अनजाने मुझको भी पाप में घसीट रहे थे। यह अच्छा हुआ कि मेरी बातचीत से तुम्हारा शिष्यत्व चला गया, तुम मुझसे मुक्त हो गए। यह बहुत ही अच्छा हुआ।

अब तक होता क्या रहा है कि एक गुरु दूसरे गुरुओं से छीनने की कोशिश करता है, लेकिन अपनी गुरुडम खड़ी करने की चेष्टा करता है। तो गुरुडम नहीं मिटती, गुरु बदलते रहते हैं। उससे कोई फर्क पड़ता नहीं बहुत। जो आदमी दूसरे मंदिर में जाता था, वह दूसरे मंदिर में वही बेवकूफी करता है जाकर।

क्रिश्चिएन चर्च में जाता था तो हिंदू मंदिर में जाने लगता है, हिंदू मंदिर में जाता था तो मस्जिद में जाने लगता है। लेकिन बेसिक नानसेंस जारी रहती है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरा कहना यह है कि हमें बुनियादी गुरुडम तोड़ देनी है। दुनिया में गुरु की जरूरत नहीं है। और इधर मैंने कहना शुरू किया कि आध्यात्मिक जीवन में गुरु से ज्यादा खतरनाक कंसेप्ट दूसरा नहीं है। परमात्मा और आदमी के बीच किसी गुरु को खड़े होने की जरूरत नहीं है। और कोई खड़ा होता है तो वह आदमी को परमात्मा तक जाने से रोकता है या सत्य तक जाने से रोकता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां-हां, इररेशनल एलिमेंट हैं। लेकिन उन सबको रेशनल बनाया जा सकता है। और जब तक हम नहीं बनाते हैं तब तक आदमी अच्छा आदमी नहीं हो सकता। फ्रायड की मैं बात मानता हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

इसका मतलब यह है, इसका मतलब यह है कि रेशनेलिटी पांच हजार साल पुरानी है, मेरी बात पांच साल पुरानी है, इसका और क्या मतलब है? मेरे जैसे लोग खड़े होते रहेंगे और तोड़ते रहेंगे तो पांच हजार साल में रेशनेलिटी को हम तोड़ देंगे। यह तो मामला ऐसा है कि एक डाक्टर आपको दवा देता है और आप फ्लू को चलाए चले जाते हैं। उसका मतलब कुल इतना है कि दवा अभी फ्लू के लायक मजबूती से काम नहीं कर पा रही। उतनी मजबूत नहीं है। उतने जोर से नहीं दी जा रही। लेकिन फ्लू टूटेगा, विश्वास हमारा यह है कि बीमारी टूटेगी दवा जीतेगी। इसी विश्वास से आदमी जीता है। और कोई सारे समाज की क्रांति चलती है।

यह बात सच है कि इररेशनेल एलिमेंट बहुत ज्यादा हैं। लेकिन इसको तोड़ने का कभी प्रयोग नहीं किया गया है। यह फ्रायड के बाद संभवतः इधर इन तीस-चालीस वर्षों में, इररेशनल एलिमेंट की स्वीकृति उपलब्ध हुई है, तोड़ने की तो बात अलग। वह है यही हमें खयाल नहीं था। साफ हुआ कि वह है। अब उसको तोड़ने का सवाल है। खुद फ्रायड अपने जीवन में इररेशनल एलिमेंट नहीं तोड़ सकता। मगर उसने खोज तो की है। वह भी जरा अगर उसकी बात का आप खंडन कर दो तो गर्दन पकड़ ले आपकी। इतना गुस्सा हो जाता था कि बेहोश हो जाए गुस्से में, विवाद करने में। अगर आपसे विवाद हो जाए तो वह पिंच कर जाए। मगर इसके व्यक्तित्व में तो बात नहीं है कुछ खास, लेकिन इसने जो खोज की है वह तो मूल्यवान है। उस मूल्य को तो हम स्वीकार कर लिए हैं, असली इररेशनल एलिमेंट है। अब इस इररेशनल एलिमेंट को कैसे नष्ट करना है? उसके प्रयोग की...।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, मेरे सेक्स के बाबत मेरी पहली दृष्टि तो यह है कि अब तक हम मनुष्य को सेक्स के संबंध में छिपा कर, दमन करके, उसकी बात न करके, रोकने की कोशिश करते रहे हैं। जैसे सेक्स है ही नहीं हमने एक ऐसी सामाजिक भूमिका बना ली, जैसे सेक्स जैसी कोई चीज है ही नहीं। वह है ही नहीं कहीं। वह है चौबीस घंटे। लेकिन समाज के तल पर लाजिक की बात है—न अभिव्यक्ति है, न विचार है। तो इस भांति हमने मनुष्य को सेक्स से मुक्त होने में सहयोग नहीं पहुंचाया, बल्कि उसको गहरे से गहरा सेक्सुअल होने में सहयोग पहुंचाया। जीवन में जितने सत्य हमें स्पष्ट हो जाएं, हम उनको फेस करने में, सामना करने में, बदलने में या उनको जीने में समर्थ होते हैं। जितने सत्य जीवन के अंधेरे में खड़े किए जाएं, उतने हम उनसे सामना करने में असमर्थ होते हैं। आदमी सेक्स के मुकाबले सबसे कमजोर हो गया। क्योंकि सेक्स को हमने सबसे ज्यादा अंधेरे में डाल दिया।

तो मेरी मान्यता यह है कि सेक्स को हमें प्रकाश में लाना होगा। उसकी पूरी शिक्षा देनी होगी। उसकी खुली बात करनी होगी। उसके बाबत जो एक टैबू है भय का कि उसकी बात ही नहीं करनी, वह टैबू नष्ट कर देना होगा। और जितने ज्यादा सेक्स को हम सामान्य और साधारण स्वीकार कर सकेंगे, उतना हम समाज को सेक्सुअलिटी से बचा सकेंगे। क्योंकि सेक्सुअलिटी जो है, कामुकता जो है, वह काम के दमन से पैदा हुआ परिणाम है। इधर हम दबाते हैं वह फिर गलत रास्तों से निकलना शुरू होता है। वह निकलेगा कहीं से। और जब वह गलत रास्तों से निकलता है तो वह ठीक रास्तों के बजाए ज्यादा खतरनाक हो जाता है।

यानी बजाए इसके कि एक लड़का एक लड़की को प्रेम करे यह समझ में आने वाली बात है, लेकिन एक लड़का और एक लड़के में सेक्सुअल संबंध हो जाए, यह समझ में आने में जरा मुश्किल मामला हो गया। लेकिन जब हम लड़के और लड़कियों को रोकेंगे, तो लड़कों और लड़कों में होमोसेक्सुअलिटी पैदा होने का हम उपाय करते हैं। लड़के और लड़कियों के हॉस्टल अलग बनाएंगे, और लड़कों को एक हॉस्टल में भर देंगे और लड़कियां को एक हॉस्टल में, तो हम होमोसेक्सुअलिटी पैदा करने के उपाय करते हैं। और यह

होमोसेक्सुअलिटी जो है यह परवर्सन की बात हो गई, यह अस्वस्थ चित्त का लक्षण हो गया। और स्वस्थ मार्ग हमने रोका और अस्वस्थ मार्ग पैदा किया। तो हमने सब तरह से अस्वस्थ मार्ग पैदा किए हैं।
तो उधर मेरी बात में उनको तकलीफ होनी शुरू हुई। क्योंकि मैंने कहा कि हम एक तो बचपन से बच्चों को जितनी सहजता से वे सेक्स को ले सकें, उतनी सहजता देनी चाहिए। उन्हें पता ही नहीं होना चाहिए कि सेक्स कोई ऐसी अनूठी और कोई ऐसी खास बात है जिसे छिपाना है, जिससे डरना है। यह नहीं होना चाहिए।

सामान्य तौर से वे अपना नसीब देखते हैं। ओवर ग्लोरीफिकेशन जो आपका...जितना और जैसे प्रीस्ट डिपार्ट आया—कि...और सामाजिक स्थिति को आपने बुद्ध बनाया। इसे बड़ा अदभुत मानते हैं। ऐसा तो नाउ एवरीबडी यह कहते हैं कि सेक्स का नालेज देना मांगता। ओवर ग्लोरीफिकेशन ऑफ फैक्ट।

हां, यह जो है न, यह ओवर ग्लोरीफिकेशन नहीं है। वह फैक्ट की बात है सिर्फ। मैं जो कहता हूं, मैं जो कहता हूं, मेरी समझ यह है कि मनुष्य के सेक्स के अनुभव में, गहरे सेक्स के अनुभव में, एक क्षण को मनुष्य को वही अनुभव होता है जो ध्यान के अनुभव में होता है। ओवर ग्लोरीफिकेशन नहीं है। जस्ट ए फैक्ट। यह जो सेक्स की जो आंत्रिक अनुभूति है, संभोग की जो गहरी से गहरी अनुभूति है, उस गहरी अनुभूति में जो शांति का, थॉट लेसनेस का, एक क्षण को सारे विचार समाप्त हो जाते हैं। एक क्षण को ईगो भी मिट जाती है। दो व्यक्ति जो संभोग में गए हैं, एक क्षण को जब क्लाइमेक्स पूर्ण की भाव-दशा होती है, तो अहंकार भी मिट जाता है, विचार भी शून्य हो जाते हैं। चित्त एक गहरी अटेंशन की हालत में रह जाता है। वह जो प्रतीति है, वह जो अनुभव है, वह एक क्षण में, बहुत छोटे क्षण में ध्यान का ही क्षण है, यह मैंने कहा है। और मनुष्य को सबसे पहले ध्यान का जो बोध आया है, वह सेक्स से आया है, यह मैंने कहा है। क्योंकि मनुष्य के पास ध्यान में सीधे जाने का कोई उपाय न था। पहली दफा मनुष्य को जो अनुभव आया है कि सेक्स के एक क्षण में कोई घटना घटती है कि माइंड एक ट्रांसफार्मेशन अनुभव करता है। वह अनुभव पहले सेक्स से ही उपलब्ध हुआ है। और वह जो अनुभव है उसको हम दूसरे मार्गों से भी विकसित कर सकते हैं। तो मेरा जो कहना है, यानी योग जो है वह संभोग में उपलब्ध होने वाले अनुभव को अन्यथा मार्गों से विकसित करने का उपाय है। और जब एक व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध करने लगे सेक्स से अन्यथा, तभी वह व्यक्ति सेक्स से मुक्त होना शुरू होता है यह भी मेरा कहना है। क्योंकि तब उसे सेक्स में जाकर उस अनुभव को करने की जरूरत नहीं रह जाती। वह उस अनुभव को अन्यथा उपलब्ध कर लेता है।
तो मेरा कहना यह है कि यह मेरी मान्यता कि सेक्स का अनुभव ध्यान की ही अत्यंत प्रारंभिक अवस्था का अनुभव है। यह मेरी मान्यता इस आधार पर। और मैं मूल्य इसको देना चाहता हूं क्योंकि इसी मान्यता के आधार पर ब्रह्मचर्य में दीक्षा दी जा सकती है। और कोई रास्ता नहीं है।
जब ध्यान के मार्ग से व्यक्ति को वैसे ही सुख की बहुत बड़ी राशि उपलब्ध होने लगती है, जो उसे संभोग में बहुत कुछ खोकर, और बहुत क्षुद्रतम मिलती थी, तभी ध्यान के मार्ग से धीरे-धीरे सेक्स से चित्त उठता है और ब्रह्मचर्य की तरफ प्रवेश पाता है।

यानी मेरा कहना यह है कि ब्रह्मचर्य से ध्यान उपलब्ध नहीं होता, ध्यान से ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। और यह इसीलिए उपलब्ध होता है कि ध्यान की और सेक्स की अनुभूति कहीं समान है। नहीं तो उपलब्ध होने का सवाल ही नहीं है।

अगर मैं आपके घर आता हूं बैलगाड़ी में बैठ कर, और छह घंटे लगते हैं और हड्डी-पसली टूट जाती है, और कल मुझे कार में बैठ कर आने मिलता है आपके घर, पांच मिनट में पहुंच जाता हूं, न हड्डी-पसली टूटती है, न परेशानी होती है। तो मेरा कहना यह है कि मैं कार बदल लूंगा बैलगाड़ी की जगह, और बदलूंगा सिर्फ इसलिए कि कार और बैलगाड़ी में कोई बुनियादी समानता है, वे दोनों पहुंचाते हैं। नहीं तो बदलने का कोई सवाल ही नहीं उठता। अगर वे दोनों अलग चीजें हैं तो बदलने का कोई सवाल नहीं उठता। मैं बैलगाड़ी की जगह कार ग्रहण कर लूंगा, कल हवाई जहाज होगी तो उसको ग्रहण कर लूंगा। क्योंकि दोनों काम करते हैं। पहला जो काम था वह बहुत ही प्रिमिटिव है। यानी मेरा कहना यह है कि संभोग का जो अनुभव है वह अत्यंत प्राथमिक है, समाधि का जो अनुभव है वह उच्चतम है। लेकिन उन दोनों अनुभव के बीच एक बुनियादी समानता है, इसीलिए ट्रांसफार्मेशन हो सकता है, नहीं तो ट्रांसफार्मेशन नहीं हो सकता।

अब उस बात को उन्होंने क्या ले लिया कि मैंने कहा है कि ये दोनों एक ही चीज हैं। अब पत्रकारों के साथ मैं बड़ी मुसीबत में पड़ा हुआ हूं, क्योंकि वे क्या मतलब निकाल लेंगे और क्या शक्ल दे देंगे, तो कठिनाई हो जाती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, उसका कारण है, नहीं तो सभी बात पर पूर्ण जवाब मेनसन करेंगे। मेरा कहना है कि रेप का जो अनुभव है वह सेक्स का भी अनुभव नहीं है। मेरा कहना यह है कि रेप...

...रेप इज़ नॉट एन्जायमेंट।

इसको बात को समझ लें, इसको थोड़ा समझ लें, इसको थोड़ा समझ लें। इस पर सारी मेरी दृष्टि है। यानी मेरा कहना है कि जो आदमी जबरदस्ती किसी के साथ व्यभिचार कर रहा है, वह जबरदस्ती और वायलेंस उस हार्मनी को पैदा ही नहीं होने देते जहां कि वह जिसको मैं कह रहा हूं ध्यान का जैसा समान अनुभव हो सकता है वह पैदा हो जाए। तो रेप जो है वह मेरी दृष्टि में मास्टरबेशंस से ज्यादा नहीं है, मेरी दृष्टि में। इसको फर्क करता हूं। यानी वह सिर्फ वीर्यपात है। और इतने टेंशन में वह किया गया है और इतनी परेशानी में और इतनी जबरदस्ती में कि सिर्फ शरीर हलका हो गया। कहीं कोई भीतर कोई अनुभव नहीं हुआ। मेरा जो...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न, वह जो अनुभव है वह सेक्स का नहीं सिर्फ वीर्यपात का, यह तो फर्क करता हूं न। वीर्यपात का जो अनुभव है इट इज़ जस्ट ए रिलीफ, इट इज़ नाट एन एक्सपीरिएंस।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, मेरा कहना यह है न, सेक्स का अनुभव जो है वह बिना प्रेम के संभव नहीं है, बिना प्रेम के संभव नहीं है। वह अत्यंत लविंग हार्मनी में संभव है। और जब हम जबरदस्ती करते हैं तो सिर्फ रिलीफ, जस्ट ए रिलीफ। जैसे एक आदमी बोझ से भरा हुआ है, उसने बोझ फेंक दिया और मुक्त हो गया। यह बोझ किसी भी तरह फेंका जा सकता है। इस बोझ को फेंकने में कोई भी, इसमें कोई स्त्री की भी जरूरत नहीं है। इसमें तो एक रबड़ की स्त्री भी काम दे सकती है। यानी इसमें कोई, इसमें कुछ लेना-देना नहीं है। और इसमें तो समझदार हो तो आप कोई की भी जरूरत नहीं है। ऑटो इरोटिक हो सकते हैं। लेकिन ये इसलिए मेरा कहना है, रेप जो है वह तो बिलो सेक्सुअल है, यानी सेक्सुअल भी नहीं है वह। और ध्यान जो है वह बियांड सेक्सुअल है। लेकिन इन सबके बीच एक सेतु का संबंध है। और वह संबंध अगर हम न ध्यान में रखें तो हम सेक्स को कभी भी ट्रांसफार्म नहीं कर सकते। तो मेरा जो कहना है कि विषयानंद में भी ब्रह्मानंद की एक किरण है। तो उसको, उसका मतलब यह ले लिया कि मैं दोनों को एक ही मानता हूं कि दोनों एक ही बात है। क्रिश्चिएन किलर और मीरा एक ही है। वह किसी अखबार में छाप दिया। कि मैं यह कहता हूं कि दोनों एक ही बात है।
ये हम जो नतीजे निकाल लें, यह स्वाभाविक है एक अर्थ में। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, वे आगे का कहते हैं, पूरी बात नहीं हो पाती, कुछ नतीजे निकल आते हैं। दूसरा यह कि जो मैं कहता हूं और जब आप सुनते हैं तो जब आप अपने माइंड से सुनते हैं, तो जो माइंड में तैयारी पहले से है वह उसमें मिल जाती है, उससे कुछ हो जाता है।

...आपको भी हिप्नोटाइज कर सकते हैं।

मैं कहा इतना, बस यह आखिरी बात कर लें। मैं कहा इतना, मैं कहा यह, मैं यह नहीं कहा कि नेहरू हिप्नोटाइज करते हैं। मैं कहा यह, मैं समझा रहा था कि सम्मोहित किस तरह आदमी हो जाता है। मैं यह कहा कि जैसे कि नेहरू एक बड़े मंच पर खड़े हुए हैं या नेहरू की जगह मैं ही खड़ा हुआ हूं, इससे क्या फर्क पड़ता है। तो लोगों की आंखें घंटे भर तक ऊपर लगी हुई हैं। सम्मोहन का नियम यह है कि अगर आंख बिना झपके बहुत देर तक ऊपर उठी रहे तो वह आदमी सजेस्टिबल हो जाता है। उस आदमी को फिर जो भी बात कही जाए वह उसे बिना तर्क के स्वीकार कर लेता है।
हिटलर जैसे लोगों ने तो जान कर इसका उपयोग किया। हिटलर मंच बनाएगा तो हाल में पूरा अंधकार करवा देगा। ताकि कोई आदमी किसी दूसरे को न देख सके। सिर्फ हिटलर ही दिखाई पड़े। हिटलर पर बड़े-बड़े लाइट रहेंगे, सारा कमरा अंधकारपूर्ण रहेगा। आपको पूरे वक्त हिटलर को ही देखना पड़ेगा। इतनी ऊंची मंच होगी,

इतनी व्यवस्था की मंच होगी कि आंख ठीक उस एंगल पर रहे जहां से सजेस्टिबल हो जाता है आदमी का माइंड।

प्रीजमेंट था।

यह तो पूरा, हिटलर का तो पूरा प्रीजमेंट था। हिटलर तो प्रोपेगेंडाइज्म में जितना भी उपयोग किया जा सकता है, व्यवस्थित सारी बातों का, किया है। और हिटलर तो इसका पूरा जान कर उपयोग किया है।
मैंने कहा कि नेहरू जान कर उपयोग नहीं किए, नेहरू को पता भी नहीं हो सकता। लेकिन इससे फर्क नहीं पड़ता।

सातवां प्रवचन

भारत का भविष्य

व्यक्ति के अतिरिक्त और कोई जगह है नहीं। समाज और झूठ, जो बड़े से बड़ा झूठ है। समाज का झूठ दिखाई नहीं पड़ता। लगता ऐसा है कि वही सत्य है, और व्यक्ति तो कुछ भी नहीं। झूठ अगर बहुत पुराना हो, पीढ़ी दर पीढ़ी, लाखों साल में हमने उसे स्थापित किया हो, तो खयाल में नहीं आता।
लेकिन खयाल में आना शुरू हुआ है और दुनिया को यह धीरे-धीरे रोज अनुभव होता जा रहा है कि समाज के नाम से की गई कोई भी क्रांति सफल नहीं हुई। और समाज के नाम से हमने जो भी आज तक किया है उससे हमारी मुसीबत समाप्त नहीं हुई। मुसीबत बदल गई हो यह हो सकता है। एक मुसीबत छोड़ कर हमने दूसरी मुसीबत पा ली, यह तो हुआ है, मुसीबत समाप्त नहीं हो सकी।
मेरी तो दृष्टि ऐसी है कि सामाजिक क्रांति असंभावना है। और जब मैं ऐसा कहता हूं असंभावना है तो मेरा मतलब यह है कि आप सिर्फ धोखा खड़ा करते हैं। अब जैसे उदाहरण के लिए, मनुष्य के इतिहास में जितने लोगों ने की, समाज को ध्यान में रख कर मेहनत की है, उनकी मेहनत बिलकुल ही असफल हुई। न केवल असफल हुई बल्कि घातक भी सिद्ध हुई। अब जैसे, कभी सोच भी नहीं सकते थे हम आज से तीन सौ साल पहले, इन तीन सौ सालों में दुनिया के सभी विचारशील लोगों ने चाहा कि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो जाए, इतनी तो सामाजिक क्रांति जरूरी है। इसे कोई भी बुरा नहीं कह सकता। युनिवर्सल एजुकेशन हो। इसे कौन बुरा कहेगा?
तो इमर्सल से लेकर रसल तक सारे लोग इस पर मेहनत किए कि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो जाए। और मजा यह है कि जब हम सफल हुए और जिन मुल्कों में हमने शिक्षा पूरी फैला दी, हम वहां पा रहे हैं कि जो परिणाम हुए हैं शिक्षा के, वे अशिक्षा से कभी भी नहीं हुए हैं। सोचते थे कि शिक्षित आदमी हो जाएगा तो जिंदगी ज्यादा शांत, ज्यादा आनंदपूर्ण, ज्यादा सरल, सहज, संबंध ज्यादा मधुर और प्रीतिकर हो जाएंगे, हुआ तो नहीं, हुआ उलटा। शिक्षा से आदमी ज्यादा सरल नहीं हुआ, ज्यादा चालाक और ज्यादा शैतान हुआ। और शिक्षा से वह ज्यादा प्रेमपूर्ण भी नहीं हुआ, बल्कि ज्यादा कैलकुलेटिड और ज्यादा हिसाबी-किताबी हो गया। और उसके

हिसाबी-किताबी बनने उसको प्रेम को नष्ट किया। और सब भांति शिक्षित हो जाने के बाद पता चला कि शिक्षा ने केवल उसकी महत्वाकांक्षा की आग को प्रज्वलित कर दिया। वह विक्षिप्त हो गया। और जिन बच्चों की शिक्षा के लिए तीन सौ साल से विचारशील लोगों ने मेहनत की थी, वे बच्चे आज कह रहे हैं कि हम तुम्हारी यूनिवर्सिटीज को, तुम्हारे कालेजेज को जला देंगे। ये सब बेकार हैं।

आज अमेरिका में यह हो रहा। अमेरिका सर्वाधिक सुशिक्षित हुआ है। इसलिए सर्वाधिक शिक्षा के जो दुष्परिणाम वहां प्रकट हुए। स्कूल जाने वाले बच्चे स्कूल छोड़ रहे हैं। जो ड्राप आउट है आज, स्कूल और विश्वविद्यालय को जो छोड़ कर जा रहा है, वह विद्रोही और बगावती है। और तीन सौ साल के सब विद्रोही और बगावती इस कोशिश में लगे थे कि हम कैसे सबको शिक्षित करें?

अब सब शिक्षित हो गए! कभी-कभी ऐसा लगताः नथिंग फैलस लाइक सक्सेस। सफल होते हैं तभी पता चलता है कि बुरी तरह असफल हो गए! तीन हजार साल से आदमी कोशिश कर रहा है कि हम सभी को कम से कम रोटी-रोजी तो जुटा दें। गरीबी बुरी है, कौन इनकार करेगा? और दिक्कतें तब खड़ी होती हैं जिन चीजों को कोई इनकार नहीं करता। उन्हीं चीजों से झंझटें खड़ी होती हैं। जब कोई चीज जितनी ज्यादा ओब्विअस, सीधी-सीधी स्पष्ट मालूम पड़ती है, तो कोई इनकार नहीं करता। अब हमने गरीबी कुछ मुल्कों में मिटा दी, और हम पा रहे हैं कि गरीब इतनी मुसीबत में कभी भी न था जितनी मुसीबत में अमीर पड़ गया।

और गरीबी की मुसीबत में भी एक सुविधा थी, आशा तो थी। गरीब सदा आशा से भरा हुआ है। आज नहीं कल एक मकान बना लेगा, आज नहीं कल एक बगीचा होगा, आज नहीं कल एक गाड़ी होगी, आज नहीं कल बच्चे होंगे, ऊपर उठ जाएंगे। जहां-जहां अमीरी आ गई, वहां-वहां आशा खो गई। धन के आने के साथ ही आशा खो जाती है। और आशा खोते ही गहन निराशा उतर आती है। आज जो पश्चिम में गहन निराशा है उस गहन निराशा का कारण है कि जिस वजह से आशा बनी रहती थी वह मिटा दी गई, वह गरीबी की वजह से थी। आशा थी इसलिए कि आपके पास कुछ नहीं था और आशा बनती थी कि कल होगा और सब ठीक हो जाएगा। जिससे आप सोचते थे वह सब ठीक हो जाएगा वह आज आपके पास है। और कुछ ठीक नहीं हुआ। तो भयंकर निराशा! इतने बड़े जोर से आत्मघात हो रहा है, और जो नहीं आत्मघात कर रहे हैं वे भी करीब-करीब मुर्दा हालत में हैं। अभी पश्चिम का जो भी विचारशील व्यक्ति है, कम से कम धनी समाजों का, वह निराशा, दुख, संताप, अर्थहीनता, खालीपन उनकी बातें कर रहा है कि सब जिंदगी खाली हो जाए। गरीब की जिंदगी कभी खाली नहीं होती, बहुत भरी जिंदगी है। हालांकि उसके पास कुछ था नहीं। बड़ा मजा यह है, उसके पास कुछ था नहीं बिलकुल खाली है। मुट्ठी में उसके कुछ भी नहीं था लेकिन जिंदगी बड़ी भरी-पूरी है। गरीबी हमने मिटा दी, क्योंकि हमने माना कि बुरा है। बड़ी क्रांति हमने की। और जिनकी हमने गरीबी मिटा दी, अब वे खुद को मिटाने को तैयार हैं, क्योंकि कोई और उपाय नहीं दिखाई पड़ता अब किसको मिटाएं!

यह मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं। करीब-करीब सारा मामला ऐसा है। संयुक्त-परिवार था हमारे मुल्क में। सारी दुनिया में संयुक्त-परिवार था। समाज-सुधारकों ने कहा कि संयुक्त-परिवार से उसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता क्षीण हो जाएगी। सौ आदमी एक परिवार में हैं, तो स्वतंत्रता तो क्षीण होने वाली है। क्योंकि परिवार को चलाना है तो एक आदमी को तो प्रमुख होना पड़ेगा। स्वभावतः जो वृद्ध है, जो कमाने वाला है वह प्रमुख हो जाएगा।

फिर इस बड़े परिवार में छोटे बच्चे होंगे। गैर-कमाने वालों के भी बच्चे होंगे, उनकी प्रतिष्ठा भी कम होगी। गैर-कमाने वालों की पत्नी की भी प्रतिष्ठा कम होगी। इन सबकी तो कोई स्थिति होगी नहीं। तो किसी तरह परिधि पर चलते रहेंगे। और इनके विकास का अवसर नहीं मिलेगा। फिर यह भी कहा विचारशील लोगों ने कि जहां सौ लोग हैं वहां कुछ लोग गैर-कमाऊ हो ही जाएंगे। क्योंकि जब चलता ही है काम तो चला लिया जाए। इसलिए हम परिवार को बांटे। और व्यक्तिगत परिवार, ज्यादा प्रगतिशील परिवार होगा।

यह ठीक ही बात थी कि जितना छोटा परिवार होगा, जितना छोटा यूनिट होगा उतना संगठित भी होगा, उतना प्रत्येक व्यक्ति उत्तरदायी भी होगा। और उतना निकटता होने की वजह से, पति है, पत्नी है, बेटे, बच्चे हैं उनकी फिक्र की जा सकेगी। ज्यादा फिक्र की जा सकेगी। और यह कमाने में भी ज्यादा उपयोगी होगा। लेकिन किसी को खयाल में नहीं आया कि जहां-जहां संयुक्त-परिवार टूटा; वहां अब परिवार भी टूट रहा है।

जहां-जहां ज्वाइंट-फेमिली खत्म हुइ, वहां जिसको न्युकिलियस हैं अब, इस फेमिली को, ये भी टूट रही हैं। ये टूटेगीं। इसका कारण यह है, यह वैसे ही टूटेगी—क्योंकि यह जो पूरा बड़ा मकान है हमारा, इसमें हमने सब कमरे गिरा दिए और एक कमरा बचा लिया, यह कमरा बच नहीं सकता, क्योंकि इस कमरे को बचाने के लिए वे सारे कमरे जो थे सहारा थे। और फिर जब एक दफा तय हो गया कि जितना छोटा परिवार होगा उतना प्रोग्रेसिव होगा, तो आखिर में पति-पत्नी भी इकट्ठे क्यों हों? तो ठीक यूनिटरी फेमिली हो जाएगी, कि एक व्यक्ति अपने को सम्हाल ले, बात खत्म हो गई।

वह जो इतना बड़ा परिवार था, वह चीजों को संभालता था। असल में छोटे संबंध जो हैं बड़े संबंधों के बीच में ही फलित होते हैं। अगर मैं अपने काका के लड़के से भाईचारा नहीं निभा सकता, तो मैं अपने भाई से ज्यादा दिन नहीं निभा पाऊंगा। और अगर मैं अपने काका और अपने मामा और दूर के काका और दूर के मामा से भी भाईचारा निभा पाता हूं उनके लड़कों से, तो मेरे भाई से जो मेरा भाईचारा है वह गहरा रहेगा। जब हम परिधि को तोड़ते चले जाते हैं तो नीचे सरक आते हैं और जाकर के खत्म हो जाते हैं।

सारी कठिनाई जो है...। स्त्रियों ने भी बगावत की पश्चिम में और उन्होंने कहा कि बड़ा संयुक्त-परिवार जो है स्त्रियों के बहुत खिलाफ है। क्योंकि स्त्री की कोई प्रतिष्ठा ही नहीं रह जाती थी। प्रतिष्ठा का सवाल नहीं; पति अपनी पत्नी से मिल भी नहीं सकता रोशनी में सबके सामने। बाप अपने बेटे को कंधे पर भी नहीं रख सकता था। उसके बेटे को कंधे पर रखना बेहूदगी थी जब कि घर में और बड़े बुजुर्ग हैं। तो अपने बेटे से बोल भी नहीं सकता था ठीक। रात के अंधेरे में वह अपनी पत्नी से मिल लेता था, उसका चेहरा भी कई दफा पति वर्षों तक नहीं देख पाता था। लेकिन निश्चित ही यह लगा स्त्रियों को कि बुरा है तो एक क्रांति सारी दुनिया में हुई कि इसको तोड़ो।

लेकिन बड़े मजे की बात यह है कि पति-पत्नी जब इतने बड़े परिवार में रह रहे थे तो पति-पत्नी के बीच बहुत कम कलह होती थी, क्योंकि कलह के दूसरे उपाय थे। वह जो कलह थी वह पति-पत्नी के बीच बहुत कम होती थी, वह न के बराबर। प्रेम ज्यादा सघन था उनके बीच, मैत्री ज्यादा सघन थी। क्योंकि कलह करने को और लोग भी थे, और पत्नियां थीं भाइयों की, उनसे भी कलह चलती थी पत्नी की। और तब उस सारी कलह में भी दोनों मित्र हो पाते थे।

हमने सब कलह का उपाय तोड़ दिया। अब ये दोनों लड़ रहे हैं। अब वह लड़ने की जो सुविधा थी कहीं और वह तो समाप्त हो गई। तो पति-पत्नी लड़ेंगे। अब कोई उपाय नहीं है। और वे आमने-सामने पड़ गए हैं।

मनुष्य ने जो-जो आज तक किया है समाज की तरफ से, जिसमें उसने कोशिश की है संस्थाओं को बदलने की। समाज की बदलाहट का मतलब है संस्थाओं को बदलना। समाज को बदलने का मतलब है समूह की व्यवस्थाओं को बदलना। और यह आशा रखना कि जब संस्थाएं बदलेंगी, समूह की व्यवस्था बदलेगी, तो व्यक्ति निश्चित ही बदल जाएगा। यह आशा बिलकुल ही व्यर्थ गई। और अब मैं मानता हूं कि जो आदमी सच में क्रांतिकारी है, वह क्रांतिकारी नहीं हो सकता अब। क्योंकि क्रांति जितनी रूढ़िग्रस्त सिद्ध हुई है उतनी और कोई चीज सिद्ध नहीं हुई।

तो अब भी क्रांति की बात करना मोस्ट अनरेवलूशनरी। पाप है। क्योंकि अगर जिनको दिखाई नहीं पड़ता कि पांच हजार साल के इतिहास में क्रांति सिवाय असफलता के कहीं नहीं ले जा सकी। और क्रांति कोई नई बात भी नहीं, क्योंकि सदा से हो रही है, उसमें कुछ नया भी नहीं आता। पुरानी से पुरानी परंपरा क्रांति की परंपरा है। फिर भी वे वही सोचे जाते हैं कि कैसे इसको बदल दें, कैसे उसको बदल दें। तो मेरी नजर तो नहीं है बहुत उस पर। मेरी दृष्टि तो सीधी है और वह यह है कि अगर कोई भी बदलाहट इस दुनिया में आई है कभी, या कभी आ सकेगी, तो वह व्यक्ति की बदलाहट है।

लेकिन जिनको क्वांटिटी की फिक्र होती है बहुत, उनको ऐसा लगता है कि कब हो पाएगा व्यक्ति का, एक-एक व्यक्ति को बदलते रहेंगे तो कब हो पाएगा। इसकी फिक्र ही क्या है कि कब हो पाएगा? एक में भी हो जाता है तो ठीक है। और मजा यह है कि जिसमें जल्दी लगता है कि जल्दी सबमें हो जाए। एक में भी नहीं हो पाता। क्रांति व्यक्तिगत ही हो सकती है। समूह धोखा है। हां, व्यक्तियों में होती चली जाए और वह समूह में फलित हो जाए। क्योंकि आखिर व्यक्ति समूह बन जाते हैं। तो कोई परिणाम उसमें हो सकता है। नहीं तो उसमें कोई परिणाम नहीं होता। और चेतना के जो भी रूपांतरण हैं, क्योंकि चेतना का घर और आवास ही व्यक्ति में है।

उसका कोई समूह, समूह आत्मा जैसी कोई चीज नहीं है। और जब हम एक व्यक्ति को ऊपर उठाते हैं तो अनिवार्य रूप से हम उसके आसपास की चेतना के तंतुओं को भी बदलते हैं। आसपास जहां-जहां वह जुड़ा है वहां भी बदलाहट होनी शुरू हो जाती है। मगर यह, यह निरंतर कभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर, कभी कोई जीसस की ही बात कहता रहा है। लेकिन सदा हमने यह सोचा कि एक व्यक्ति को बदलने से, एक-एक को बदलने से कब होगी बदलाहट? और मजे की बात यह है कि बुद्ध को मरे ढाई हजार साल हो गए, और ढाई साल में अगर बुद्ध की बात मान कर चला जाता, तो शायद बदलाहट करोड़ों में हो गई होती। लेकिन हमने सोचा कि एक-एक को बदलने से कब होगी बदलाहट? तो ढाई हजार साल तो हो गए? और जिनको जिन्होंने कहा था कि बदलाहट जल्दी हो जाएगी समूह को बदलने से, उनकी सब बदलाहटें हो गइ और कोई बदलाहट नहीं हुई। आदमी वहीं का वहीं खड़ा रह गया।

तो मेरी तो कोई दृष्टि है नहीं बहुत उस तरफ। इतना ही है कि व्यक्तियों के समूह बढ़ते चले जाएं और उसका समूह का जो परिणाम हो जाए सहज, समूह को सीधा ध्यान में रख कर ही ध्यान में तो व्यक्ति को ही रखना है। फिर भी समूह में हो जाए, एज ए बाइ-प्रोडक्ट। वह स्वीकार है। न हो तो उसकी चिंता नहीं है। और अब मैं

मानता हूं कि कुछ लोग चाहिए जो इस सत्य को ठीक से समझना शुरू करें कि क्रांति की बातचीत कुछ कर पाते हैं या नहीं कर पाते हैं? और एक और मजे का सूत्र है कि जब तक किसी चीज का अभाव होता है तब तक हमें मालूम पड़ता है कि अभाव बहुत महत्वपूर्ण है। जैसे ही वह अभाव भर जाता, वह तो गैर-महत्वपूर्ण हो जाता है, उसका मूल्य खत्म हो जाता है। उसका मूल्य तत्काल खत्म हो जाता है।

अब जैसे कि जब तक रोटी नहीं तब लगता है रोटी बहुत महत्वपूर्ण है, रोटी मिल गई तो वह बेकार हो जाती, वह बात ही खत्म हो जाती है। यह भी खयाल नहीं रह जाता कि कभी वह नहीं थी। तो उसका न होना बड़ा महत्वपूर्ण था, वह समाप्त हो गई बात। और आदमी को रोटी मिली कि तब उसके दूसरे सवाल शुरू होते हैं। तब उसके दूसरे सवाल शुरू होते हैं, असली सवाल शुरू होते हैं। वे असली सवाल जो हैं वे उसको और कठिनाई में डाल जाते हैं या उलझाव में डाल जाते हैं। यह जरा सोचने जैसा है।

अब जैसे कि पचास-साठ साल से जो भी वैभवशाली देश हैं वे सोच रहे हैं कि आज नहीं कल, आदमी की तकलीफ सदा की यह रही, तब तकलीफ पहले यह थी कि आदमी को रोटी कैसे मिले? वह रोटी मिलनी शुरू हो गई। मकान कैसे मिले? वह मिल गया। अब तकलीफ अनुभव होनी शुरू हुई पचास साल से कि आदमी को श्रम करना पड़ता है, यही असली तकलीफ है। तकलीफ ही यही है। और यह बेहूदी बात है कि आदमी को रोटी के लिए श्रम करना पड़ता, जीवन बेचना पड़ता। समय बेचना, श्रम बेचना, जीवन बेचना है। अगर मैं अपनी रोटी के लिए रोज छह घंटे बेचता हूं, तो मैं छह घंटे अपनी जिंदगी बेचता हूं। जिंदगी भर में अगर मुझे जीना है अस्सी साल तो बीस साल तो मैंने रोटी खरीदने में बेच दिए। या कहें कि मैंने एक चौथाई जिंदगी रोटी कमाने में गंवाई, या यूं कहें कि मैंने अपनी एक चौथाई आत्मा जो थी वह रोटी के पलड़े पर रख दी। तो यह कहना चाहिए कि अशोभन। समाज तो ऐसा होना चाहिए जहां व्यक्ति को रोटी के लिए, तन के लिए आत्मा को न बेचना पड़े। तो जो समझदार लोग हैं वे यह कहते रहे। अब हालत यह आ गई कि अब हम मशीन तैयार कर लिए हैं, आदमी को श्रम से मुक्त किया जा सकता है।

लेकिन नये सवाल खड़े हो गए हैं कि आदमी को श्रम से मुक्त किया तो आदमी वह जो खाली है करेगा क्या? संभावना यह है कि वह हत्याएं करेगा, चोरी करेगा, बदमाशी करेगा, शराब पीएगा, एल एस डी लेगा, मारीजुआना लेगा, यह करेगा। पर इसका कभी भी उनको खयाल नहीं था जिन्होंने कहा कि हम जिस दिन आदमी को श्रम से मुक्त कर देंगे उसकी आत्मा पूर्ण मुक्त हो जाएगी। फिर वे लोग सोचते थे कि वह काव्य करेगा, चित्र बनाएगा, पेंटिंग्स करेगा, कालिदास पैदा होंगे, शेक्सपियर पैदा होंगे हजारों की संख्या में, घर-घर रवींद्रनाथ हो जाएंगे, बुद्ध और महावीर जगह-जगह पैदा हो जाएंगे। क्योंकि आदमी को सुविधा होगी। और उसकी आत्मा पहली दफा मुक्त होगी तो बहुत रूपों में प्रकट होगी।

लेकिन मामला यह दिखाई पड़ता है कि वह बुद्ध कभी-कभी एकाध पैदा होता था वह भी शायद पैदा न हो। क्योंकि जिस आदमी को हम श्रम से मुक्त कर रहे हैं, श्रम से मुक्त होते ही उसने बहुत सी इच्छाओं को सदा पोस्टपोन किया था, श्रम की वजह से वह नहीं कर पाता था। उसका भी मन था कि अगर सौ पत्नियां वह भी रख सके तो रखे। कोई वजह नहीं थी कि शाहजहां क्यों रखे और वह क्यों न रखे। शाहजहां इसलिए रख सकता

था उसको श्रम के लिए कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती थी। इन सौ स्त्रियों खिलाने-पिलाने का भी सवाल नहीं था, इसलिए हजार भी रख सकता था।

एक मजदूर को आप मुक्त कर देंगे बिलकुल श्रम से तो वह भी सोचता है कि क्यों न दस पत्नियां रख सकें। या क्यों न रोज पत्नी न बदल लें। आखिर उसका क्या कसूर है। इच्छा उसकी भी सदा यही थी, लेकिन इच्छा जरूरतों से दबी थी, उसको वह पूरा नहीं कर सकता था। अब समय है, सुविधा है, खाने का इंतजाम है, क्यों न करे। फिर सौ पत्नियों को इकट्ठा रखना एक झंझट की बात है, तो पत्नियों को समाप्त ही क्यों न करें, रोज एक नई स्त्री क्यों न खोजी जा सके।

जिन-जिन इच्छाओं को उसने अब तक मजबूरी में रोक रखा था, उन सबको वह पूरा करना चाहता था। कितने लोगों की इच्छा है कि वे कविता करें, कितने लोगों की इच्छा है कि वे ध्यान करें, कितने लोगों की? कितने लोग मोक्ष जाना चाहते हैं? और मजा यह है कि जितने अभी आपको दिखाई पड़ते हैं कि ध्यान में उत्सुक हैं, इनकी भी अगर दूसरी इच्छाएं पूरी हों तो सौ में से निन्यानबे ध्यान में उत्सुक न होंगे। इनका भी ध्यान में उत्सुक होने का सौ में निन्यानबे मौके पर यह कारण होता है कि इतने परेशान हैं जिंदगी से कि शायद ध्यान से राहत मिल जाए। अगर जिंदगी की सारी परेशानियां अलग कर दें, तो सौ संन्यासियों में से निन्यानबे भाग जाएंगे फौरन। क्योंकि वे आए इसलिए नहीं थे कि ध्यान में उनकी कोई रुचि थी या आत्मा की खोज में कोई रुचि थी, संसार इतना कष्टपूर्ण था कि यह उनके लिए पलायन था, सुविधा थी।

यानी एक आदमी आता है वह कहता है कि बड़ी मुश्किल है लड़की की शादी नहीं हो रही, नौकरी नहीं मिल रही लड़के को, पत्नी बीमार है, तो कोई रास्ता बताएं प्रार्थना का, पूजा का कि यह सब ठीक हो जाए। अगर यह सब ठीक हो जाए तो क्या यह आदमी प्रार्थना और पूजा का रास्ता पूछने आने वाला है। यह काहे के लिए आएगा। मगर ऐसा मत समझना कि इसकी पत्नी ठीक हो जाए, इसकी लड़की की शादी हो जाए, इसके लड़के को नौकरी लग जाए, तो यह बड़ा अच्छा आदमी हो जाएगा। इसने बहुत कुछ रोक रखा है इस उपद्रव की वजह से जिससे यह नहीं कर पा रहा है। यह भी चाहता है कि बैठ कर शराब पीए, यह भी चाहता है कि सड़कों पर नाचे, यह भी चाहता है कि ताश खेले, दांव लगा दे जूए पर, यह भी चाहता है कि सब थ्रिन। जिस दिन इसके सारे उपद्रव नहीं हैं, जिनकी वजह से यह दबा हुआ है, उस दिन यह बे-लगाम है। उस दिन आपके सामने सबसे बड़ा सवाल यह होगा कि इस आदमी को आक्युपाइड कैसे रखो? आज अमेरिका में वही सवाल है। क्योंकि उनको लग रहा है कि आने वाले पचास सालों में सब कुछ आटोमेटिक हो जाएगा, कम्प्यूटर से चलने लगेगा। आदमी की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। यह आदमी जो अनआक्युपाइड छूट जाएगा पहली दफा यह करेगा क्या? यह जमीन को स्वर्ग बनाएगा कि नर्क बनाएगा? आदमी को गौर से देखो तो पक्का है कि नर्क बनाएगा, स्वर्ग-वर्ग नहीं बनाएगा।

तो अब सवाल यह है कि बड़ी से बड़ी क्रांति हुई जा रही है कि आदमी को श्रम से मुक्त कर दो। अगर सच पूछा जाए तो श्रम से मुक्त करने का गहरा अर्थ यह है कि आदमी को हम शरीर की चिंता से मुक्त कर दें। लेकिन शरीर की चिंता से मुक्त करके यह आत्मा की चिंतना में पड़ने वाला है या कि सदा से जो दबाई हुई वासनाएं हैं, जिनको यह कभी पूरी नहीं कर पाया था, यह उनको पूरे करने में लगेगा। क्रांति बड़ी भारी घटित हुई जा रही है।

लेकिन हो सकता है कि फल भयंकर हो उसके। और यह फल तब तक भयंकर होंगे ही सिद्ध जब तक हम व्यक्ति को बदल नहीं देते। तब तक हम कुछ भी बदलेंगे यह बिना बदला हुआ व्यक्ति जो है उसका दुरुपयोग करने वाला है।

आइंस्टीन को कभी खयाल नहीं था कि हम जो इतना महान श्रम करके और एटामिक एनर्जी की खोज कर रहे हैं आदमी इसका क्या करेगा। आइंस्टीन ने मरते वक्त कहा कि अगर इसका हमें बोध होता कि आदमी क्या करेगा, तो बेहतर हुआ होता कि मैंने एक किराने की दुकान पर नौकरी करके जिंदगी गंवा दी होती, बजाय इस सारे...। इस खोज का अंतिम परिणाम अगर हिरोशिमा और नागासाकी होना है और आखिर में यह सारी दुनिया जल कर मरने वाली है। तो मैंने जो श्रम किया था, तब पूरी जिंदगी बर्बाद थी, और इतनी लगन से, उसका यह फल होगा! यह अगर जरा भी खयाल होता, तो एक किराने की दुकान पर या अखबार बेच कर सड़क पर जिंदगी गुजार देना बेहतर और आध्यात्मिक है।

यह सब वैज्ञानिक पागलपन सिद्ध हुआ। लेकिन यह अणु की शक्ति कारगर हो सकती है। लेकिन कारगर तभी हो सकती है जब व्यक्ति पहले बदल गया और पीछे यह अणु की शक्ति आए हाथ में। नहीं तो यह कारगर नहीं हो सकती, यह तो उपद्रव लाएगी।

अब तक हमने जो भी आदमी को दिया है उससे नुकसान हुआ। क्योंकि आदमी वही का वही है। और समूह को बदलने वाला सोचता ही है, व्यक्ति को छोड़ कर, वह सोचता है जब सब बदल जाएगा, समूह बदलेगा, संस्था बदलेगी, शक्ति बदलेगी, तो व्यक्ति तो बदलने वाला, लेकिन व्यक्ति बहुत रेसिस्टेंट है। इतना आसान नहीं व्यक्ति का बदलना। सब बदल जाए और व्यक्ति अपनी जिद जारी रखेगा। बल्कि वह पहली दफा प्रकट होगा पूरी शक्ल में जिसका आपको कभी भी पता नहीं था।

लोग कहते हैं कि आदमी बड़े पद पर पहुंचता है तो बिगड़ जाता है, पद बिगाड़ देते हैं। कोई पद नहीं बिगाड़ सकता किसी को। सिर्फ पद मौका देता है आपको पूरे खिलने का। लोग कहते हैं धन बिगाड़ देता है। धन कैसे बिगाड़ सकता है? धन की क्या सामर्थ्य है? लेकिन धन आपको मौका देता है कि जो आप थे अब प्रकट हो जाएं। गरीबी में प्रकट नहीं हो सकते थे। पुलिस पकड़ कर ले जाती अगर उपद्रव मचाते तो। अगर दूसरे की पत्नी को छेड़-छाड़ करने जाते तो जूते पड़ते। अब धन आपके पास है। अब जूते मारने की ताकत आपके पास है। अब आप कुछ कर सकते हैं जो सदा आपने रोका था।

दवाइयों ने, चिकित्सा-शास्त्र ने आदमी की उम्र बढ़ा दी। अब सवाल यह है कि उस उम्र को बढ़ा कर, नये मसले खड़े होते हैं। अब सत्तर साल का आदमी, अस्सी साल का आदमी है अब, और अभी भी वह सेक्सुअली पोटेंट है। जब आप उम्र सौ साल खींच देंगे, तो सत्तर-पचहत्तर साल का आदमी भी बच्चे पैदा कर सकता है। अब प्रॉब्लमस खड़े होंगे जो कि पिछले पचहत्तर साल के बूढ़े ने कभी खड़े नहीं किए थे। वह कभी खड़ा नहीं किया था। अब यह खड़ा करेगा।

अब यह कामवासना के बाजार में अपने नाती-पोतों का भी काम्पिटीटर होगा। उसी बाजार में खड़ा है। अब बर्ट्रेंड रसल जैसा बुद्धिमान आदमी अगर बीस-बाईस साल की लड़की से शादी करे, तो काम्पिटीशन किससे

है? अस्सी साल का आदमी अगर बाईस साल की लड़की से शादी करता है तो अपने नाती-पोतों से काम्पिटीटर है वह।

इसके प्रॉब्लमस खड़े होंगे, इसकी झंझट खड़ी होगी। और जो स्ट्रेक्चर था, जो व्यवस्था थी, उसमें आमूल रूपांतरण करने होंगे आपको। अस्सी साल का बाप अगर शादी करने जा रहा है तो क्या वह बीस साल के अपने लड़के से कह सकता है कि ब्रह्मचर्य का कोई मूल्य है? किस मुंह से? उलटी हालत भी हो सकती है कि बीस साल का लड़का अपने बाप को थोड़ा समझाए कि थोड़ा तो कुछ ध्यान रखो। तो होता क्या है कि जब हम संस्था में, व्यवस्था में कोई भी अंतर कर लेते हैं तो तकलीफ खड़ी होती है कि वह जो व्यक्ति है वह तो वही का वही रह जाता है।

ऐसा नहीं कि बर्ट्रेंड रसल ऐसा कर रहा है। जो लोग भी सौ साल की उम्र तक जी सकते हैं, वे लोग अस्सी साल में शादी कर सकते हैं। कोई अड़चन तो नहीं है, कोई कारण तो नहीं है। तो अभी अमेरिका में उनको वृद्धों के लिए कैंप्स बनाने पड़ रहे हैं। जिसको हम कभी नहीं सोच सकते थे। जिसमें बूढ़े और वृद्धों को रखना। और उन्होंने ठीक प्रेम और रोमांस की कथा शुरू...। अब वे बूढ़े और बुढ़िया जो हैं वे सब अपना प्रेम बसा रहे हैं। और उनके सब लड़के-बच्चे, उनके बच्चे वे सब अपने घर बसा रहे हैं। ये बूढ़े और बुढ़िया जो हैं ये फिर अपने रोमांटिक...। क्योंकि इनको घर बिठाना अब खतरनाक है। अब इनके कैंप अलग ही होने चाहिए। जहां कम से कम ये अपने समवयस्क लोगों के बीच फिर से प्रेम का सिलसिला शुरू कर दें।

आदमी को बिना बदले, व्यक्ति को बिना बदले आप जो भी करेंगे आप नये प्रश्न खड़े कर सकते हैं बस। तो थोड़ी देर राहत हो सकती है कि पुराने प्रश्न समाप्त हुए। अब यह सच बात यह है कि अगर बाप साठ-सत्तर साल में मर जाए, तो परिवार में उसको प्रेम मिलता रह सकता है थोड़ा-बहुत। क्योंकि उसकी ठीक दूसरी पीढ़ी, उसके बेटे ताकत में होते हैं। उसका बेटा होता है कोई सैंतालीस साल का, पचास साल का वह अभी ताकत में होता है। सत्तर साल के बूढ़े को अभी वह फिक्र करेगा।

अगर बूढ़ा नब्बे साल का हो जाए तो उसके बेटे सत्तर साल, अस्सी साल के हो जाएंगे। वे ताकत के बाहर हो जाएंगे, बेटों के बेटे ताकत में आ जाएंगे। जिनसे अब इस तीसरी पीढ़ी का कोई लेना-देना नहीं, सीधा संबंध नहीं। अब यह बूढ़ा घर पर एक फिजूल का बोझ है, इसको हटाओ यहां से, इसका कोई उपयोग नहीं, इसको हटाना चाहिए। और अगर चौथी पीढ़ी ताकत में आ जाए तो आपको चौथी पीढ़ी का तो नाम भी याद नहीं रहता। आपको अपने दादा तक का नाम याद रहता है। दादा के बाप का तो आपको नाम भी याद नहीं है। अगर वह बूढ़ा जिंदा हो जिसका आपको नाम तक याद नहीं रहा, तो आपका उससे कोई संबंध होने वाला है। कोई संबंध नहीं हो सकता।

तो या तो आपके इस संबंध की और प्रेम की क्षमता इतनी बढ़ गई हो कि इतनी दूर तक पार कर सकें। तो उस बूढ़े का जिंदा रहना ठीक है। नहीं तो वह बूढ़ा अच्छा है कि जा चुका हो। क्योंकि वह अपने ही सामने अपनी ही पीढ़ियों को देखे जिनको उसकी कोई चिंता ही नहीं है, कोई उनको देखने वाला भी नहीं है। यह बहुत कष्टपूर्ण है, यह बहुत दुखद है। सारी कठिनाई क्या खड़ी होती है, अब जैसे कि चिकित्सा ने फिक्र की आदमी की कि

हम उसकी उम्र बड़ी कर लें। अब चिकित्सक के सामने सवाल है सारी दुनिया में और सभी मेडिकल क्रांफ्रेंसस में वह सवाल उठता है कि क्या आपको किसी आदमी को उसकी इच्छा के बिना जिंदा रखने का हक है?
अब एक आदमी सौ साल का हो गया, अब मैं मरना चाहता हूं। मैं मरना चाहता हूं लेकिन कोई सरकार मुझे आत्महत्या की आज्ञा नहीं देती। क्योंकि वह कानून तब बनाया गया था जब कोई सौ साल तक जीता नहीं था। और तब किसी आदमी को आत्महत्या कर लेना समाज के लिए बहुत फिजूलखर्ची थी असल में। अगर एक आदमी को हमने तीस साल तक बड़ा किया, तो समाज ने तीस साल तक उस पर खर्च किया, भोजन दिया, मकान दिया, शिक्षा दी, सारी मेहनत की, वह आत्महत्या कर लेता है। इसका मतलब यह है कि जिस व्यक्ति को हमने तीस साल तक मेहनत की वह बीच में खत्म हो जाता है, तो समाज इसकी आज्ञा नहीं दे सकता था। तो वह आत्महत्या की आज्ञा कैसे दे? उसका मतलब वह तो खतरनाक आज्ञा है। कोई भी आदमी तैयार होने के बाद आत्महत्या कर ले तो इतनी सारी मेहनत समाज की बेकार गई। लेकिन अब सौ साल का एक आदमी हो गया, मैं सौ साल का हो गया, मैं मरना चाहता हूं, नहीं जीना चाहता। कोई सरकार मुझे आज्ञा देने को तैयार नहीं। क्योंकि उसके नियम पुराने हैं। और चिकित्सक मुझे सहायता नहीं कर सकता मरने में, अगर मैं मर रहा हूं तो वह मुझे जिलाए रखने की कोशिश करेगा। अभी सारी दुनिया में जिनकी उम्र ज्यादा हो गई उन लोगों का कहना है कि हमें मरने का सुविधापूर्ण हक होना चाहिए। यह हमारा निर्णय होना चाहिए।
और चिकित्सक भी पूछते हैं कि क्या यह नैतिक है कि एक सौ या एक सौ बीस साल के आदमी को आक्सीजन की नली लगा कर जिंदा रखना, क्या नैतिक है? क्योंकि उस आदमी को जीवन में कुछ भी नहीं बचा है सिर्फ जीना है। भारी बोझ होगा इसके लिए। पर क्या हम इसकी नली से आक्सीजन जाना बंद कर दें, उसको मरने में सहयोगी हों, क्या वह नैतिक होगा?
जब भी हम बाहर कोई बदलाहट कर लेते हैं और मनुष्य की अंतरात्मा और नैतिकता और उसके अंतर-बोधो में कोई अंतर नहीं होता, तब तक हम नये सवाल खड़े करते चले जाते हैं। और नये सवाल पुराने से बदतर भी हो सकते हैं। क्योंकि ज्यादा कांप्लेक्सीटी के तल पर होते हैं। पुराना जो है वह सरल तल पर होता है सवाल। जब हम उसको बदल लेते हैं और नया सवाल खड़ा करते हैं तो वह ऑन ए न्यू लेयर कांप्लेक्सीटी हो गया, वह ज्यादा जटिल होगा। उसको हल करने में ज्यादा मसले गहन हो जाएंगे। कोई आदमी आत्महत्या न करे यह सरल तल की उलझन है। लेकिन आत्महत्या करने का हक देना बहुत जटिल उलझन है। क्योंकि फिर आप कैसे तय करिएगा कि कौन न करे? चलिए एक आदमी कहता है मैं सौ साल में...। निन्यानबे वाला कहता है कि अगर सौ साल वाला आत्महत्या कर सकता है तो निन्यानबे वाले को क्यों हक न हो? लेकिन फिर उन्नीस साल वाले का क्या कसूर है अगर वह मरना चाहता है? यह ज्यादा जटिल मामला होगा। वह बहुत सरल मामला था कि कोई आत्महत्या न करे। एक सरल नियम था। कोई करने को आमतौर से उत्सुक भी नहीं था। कभी कोई उत्सुक भी होता था तो उसे रोका जा सकता था। लेकिन वह रुकावट मौत के खिलाफ थी। अगर हम आज्ञा देते हैं कि...आत्महत्या व्यक्ति की स्वतंत्रता का हक तो है ऐसे। क्योंकि अगर व्यक्ति ठीक से पूछे तो वह कह सकता है कि मरने का हक मेरी निजी स्वतंत्रता है और मुझे जबरदस्ती जिलाने वाले आप कौन हैं? यह किसी का हक नहीं है।

अब जैसे मैं कहूं कि हम पूरे पांच हजार साल से व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं। इंडिविजुअल फ्रीडम। अब व्यक्ति की स्वतंत्रता का जो अंतिम अर्थ हो सकता है वह यह है कि व्यक्ति को मरने का हक होना चाहिए। व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले लोगों ने कभी नहीं सोचा था यह कि मरने का हक भी व्यक्ति की स्वतंत्रता है। उन्होंने सोचा था बोलने का हक व्यक्ति की स्वतंत्रता है। वह दो कौड़ी का है बोलने का हक। मरने का हक एक्झिसटेंसिअल है। ज्यादा कीमती है। अगर मैं मर ही नहीं सकता तो मेरे बोलने, न बोलने का भी क्या मूल्य है। अगर मुझे इसलिए जीना पड़ता है कि आप मुझे मरने नहीं देना चाहते कि आपका कानून कहता है कि तुम नहीं मर सकते। तो तुम मेरी जिंदगी की न्यामक हो। मगर व्यक्ति की स्वतंत्रता वालों ने कभी नहीं सोचा था कि यह इसका अंतिम फल हो सकता है। होता, होता मतलब इसका यह है।

अभी मैं देख रहा था। नीत्शे ने एक बहुत अदभुत बात लिखी है। उसने लिखा कि दुनिया में सारे धर्म मर रहे हैं। उसका कारण यह नहीं है कि दुनिया में अधार्मिक लोग बढ़ गए हैं। उसका कुल कारण यह है कि सभी धर्मों ने सत्य के ऊपर पांच हजार साल तक इतना जोर दिया कि अब लोग कहते हैं कि जो सत्य है वही हम मानेंगे। और तुम्हारा इस पर सत्य सिद्ध नहीं हो रहा। तुम्हारी ही जिद कि धर्म सत्य की खोज है। तुमने ही समझाया है लोगों को कि सत्य को पाना अंतिम लक्ष्य है जीवन का। अब लोग कहते हैं कि सत्य ही अंतिम लक्ष्य है पाने का। लेकिन तुम्हारा ईश्वर सत्य नहीं मालूम पड़ता, झूठ मालूम पड़ता है। सरासर झूठ है। और तुम सिद्ध करो कि कहां सत्य है? और वह तुम सिद्ध नहीं कर पा रहे।

तो नीत्शे कहता है कि तुमने जो जलाई थी आग, उसके ही फल भोग रहे हो। यानी इसमें किसी का हाथ नहीं है। तुमने अगर पहले से ही, तो नीत्शे एक बहुत अजीब बात कहता है, वह कहता है कि सत्य-वत्य का कोई मूल्य नहीं। नीत्शे कहता है कि जो असत्य जीवन को आनंदपूर्ण बनाए वह असत्य ही वर्णीय है। नीत्शे यह कहता है। हम सत्य की चिंता क्यों करें। हम कोई सत्य के लिए पैदा हुए। जीवन परम मूल्य है। और अगर झूठ से सहारा मिलता है और सपने देखने में सुख मिलता है, तो मुझे...।

यह सभी धार्मिकों को लगेगा कि बड़ी उपद्रव की बात है। लेकिन इसका अंतिम फल यह हो सकता है कि धर्म वापस लौट सकते हैं। यह बात अगर ठीक से समझी जाए तो धर्म वापस लौट सकेंगे, नहीं तो धर्म अब बच नहीं सकते। क्योंकि सत्य की परख अगर बढ़ती चली जाए तो अंततः आदमी पूछेगा कि तुम्हारे ईश्वर को प्रयोगशाला में खड़ा करो, जब तक हम जांच-परख न कर लें। जब तक पक्का न हो जाए कि वह है। जब तक प्रूफ हम न जुटा लें, तब तक अब हम मान नहीं सकते। लेकिन जब चीजें पूर्णता पर टूटती हैं, अपनी क्लाइमेक्स पर, तभी उदघाटन होता है कि उपद्रव हो गया।

तभी धार्मिकों ने जोर दिया है सत्य पर, कोई धार्मिक असत्य पर जोर देने वाला नहीं हुआ कभी भी। लेकिन नीत्शे कहता है कि उनके जोर ने ही धर्म की जड़ें काट दीं। हां, जब तक चलता रहा मामला जब तक कि इस जोर को उसके अंतिम निष्कर्ष तक, लाजिकल कनक्लूजन तक नहीं खींचा गया। जैसे ही आप किसी चीज को उसके अंतिम निष्कर्ष तक खींचेंगे, तभी आपको पता चलेगा कि इसके चुकता परिणाम क्या हो सकते हैं।

अब हम कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति की गरीबी मिटनी चाहिए। क्यों? इसलिए मिटनी चाहिए कि भूख बड़ी बुरी चीज है। और एक समाज में कुछ लोग भरे पेट रहें और कुछ लोग भूखे रहें। अशोभन, अनैतिक है। लेकिन

भूख बड़ा मामला है, सिर्फ रोटी भूख नहीं। जिस दिन आप रोटी पूरी कर देंगे, उस दिन सेक्स भी भूख है। और अगर यह बात गलत है कि कुछ लोगों के पेट में रोटी पड़े और कुछ लोगों के न पड़े, तो कुछ लोगों का सेक्स ज्यादा ढंग से तृप्त हो और कुछ का न तृप्त हो, यह कब तक चलने देंगे? और अगर यह सही है कि सबको एक जैसे मकान रहने को मिलने चाहिए कि कोई महल में रहे कोई झोपड़ी में, तो यह बात कब तक ठीक रहेगी कि किसी को सुंदर स्त्री मिल जाए और किसी को कुरूप मिले। यह कैसे बर्दाश्त किया जा सके? इसको लाजिकल कनक्लूजन तक ले जाने की जरूरत है। तब आपको पता चलेगा कि जो आप कर रहे हैं उसका क्या मतलब होता है? यह कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है कि आपके पास एक सुंदर स्त्री है और मेरे पास नहीं है। तो आप मेरा शोषण कर रहे हैं। निश्चित है, क्योंकि जो स्त्री मेरे पास होनी थी वह मेरे पास नहीं, आप कब्जा किए बैठे हैं। तो कुछ बंटवारा होना चाहिए, कुछ न कुछ शेयरिंग होनी चाहिए। कुछ ऐसा होना चाहिए कि सब काम, एक दिन वह आपकी स्त्री हो एक दिन मेरी भी हो। नहीं तो क्या उपाय है। या वैसी दूसरी स्त्री मुझे मिलनी चाहिए।

मकान तो आसानी से हम बना दें, एक से भी बन सकते हैं किसी दिन। लेकिन हम एक सी स्त्रियां कहां बना पाएंगे? तो फिर शेयरिंग पर इंतजाम करना पड़ेगा। तो हम पूरे समाज को एक, एक जैसा आज बंटवारा कर रहे हैं धन का, वैसा हमें कल कामवासना के लिए बंटवारा, ठीक वैसा ही बंटवारा करना पड़ेगा। लेकिन मकान तो जिद नहीं करता है। क्योंकि मकान कहता है कैसे ही बना लो। वह स्त्री तो जिद करेगी कि माना की तुम वंचित हो रहे हो लेकिन मैं तुम्हारे साथ प्रेम करने को राजी नहीं। इसको हमें कहना पड़ेगा, यह स्त्री अनैतिक है। क्यों यह एक व्यक्ति को अपना प्रेम देने को कहती है और दूसरे को नहीं देती। व्यक्ति समान हैं।

क्या करिएगा क्या? आप ज्यादा जटिल तलों पर उलझेंगे फिर। अभी तल बहुत साधारण हैं। और जटिल तल जो हैं वे चीजों को बुरी तरह तोड़ जाएंगे। स्त्रियों को बदलने के मूवमेंट हैं, ग्रुप हैं, क्लब हैं, जहां पति-पत्नियां इकट्ठे हो रहे हैं और पत्नियों को बदल कर ताकि किसी को कोई दंश न रह जाए मन में। मगर यह चेतना को नीचे गिराएगा कि ऊपर ले जाएगा। इससे आदमी की आत्मा आकाश में उड़ेगी कि और जमीन में दब जाएगी। क्या होगा क्या उसका? उसका आखिरी फल क्या हो सकता है। मगर यह हम सब सोचते नहीं।

समाज-सुधारक जिद में होता है। एक मसले को पकड़ता है उसकी पूरी चैन को नहीं। वह कहता है इस आदमी के पास कपड़ा नहीं, इसके पास कपड़ा होना चाहिए। बस इतना पकड़ लेता है। लेकिन इस तर्क का पूरा फल क्या है? इस तर्क की पूरी अंतिम नियति क्या होगी? इस आदमी के पास आप जैसी आंख नहीं है वह भी होनी चाहिए। क्यों नहीं होनी चाहिए? यह आदमी आज नहीं कल कहेगा कि किसी आदमी के पास प्रतिभा हो और मेरी बुद्धि जड़ हो, यह नहीं चलेगा। बुद्धि का समान बंटवारा होना चाहिए। और आज नहीं कल हो सकता है। कोई कठिनाई नहीं है। अब इंप्लीमेंटस तो हैं कि हम बच्चों को जिनके पास थोड़ी ज्यादा प्रतिभा है उनको थोड़ा काट-छांट दें, उनके मस्तिष्क में थोड़े हार्मोंस कम कर दें, थोड़ी नसें काट दें, थोड़ी नर्वस सिस्टम उनकी नीचे उतार दें, तो वे समान लेविल पर आ जाएं।

अगर यह बात सच है कि एक आदमी के पास ज्यादा धन नहीं होना चाहिए तो यह बात क्यों सच नहीं कि एक आदमी के पास ज्यादा प्रतिभा नहीं होनी चाहिए। क्योंकि वह प्रतिभा का शोषण करेगा। तो रास्कल और मार्गन

या बिरला ही शोषक हैं ऐसा क्यों? कालिदास और शेक्सपियर और आइंस्टीन और बुद्ध शोषक नहीं हैं। ये भी शोषक हैं। शोषक का अगर यही मतलब है कि किसी के पास कोई चीज ज्यादा हो जाती है और किसी के पास कम पड़ जाती है, तो इसका आज नहीं कल हमें निपटारा करना पड़ेगा।

एक आदमी बुद्ध होकर बैठ जाए और दूसरा आदमी बुद्धू बना रहे यह कैसे चलेगा? यह नहीं बर्दाश्त किया जा सकता। बुद्धू कहेगा कि या तो मुझे बुद्ध बनाओ, जो कि कठिन है। तो दूसरा उपाय यह है कि बुद्ध को बुद्धू बना लो, जो कि आसान है, सुगम है।

गरीब कहता है कि बिरला को या राकफेलर। मुझे भी बिरला और राकफेलर बना दो, जो कि कठिन है। सरल यह है कि राकफेलर और बिरला को बांट कर एक गरीब बना दो, जो कि आसान है, जो कि किया जा रहा है। सारा सोशलिज्म, सारा समाजवाद वही कर रहा है। पर इसकी अंतिम नियति क्या है? इन सारे तर्कों को अगर सामायिक संदर्भ में देखें तो बड़े ठीक मालूम पड़ते हैं। लेकिन लंबा फैला कर देखें तो पता चलता है कि ये तो उपद्रव में रोज उतारते चले जाते हैं। ये रोज उतारते चले जाते हैं।

अभी मनोवैज्ञानिकों ने फ्रायड के बाद मां-बाप को समझाया कि बच्चों को डांट-डपट नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उससे उनकी आत्मा को चोट पहुंच रही। उनकी स्वतंत्रता को चोट पहुंच रही। उनको स्वतंत्रता देनी है, सुविधा देनी है। और किसी तरह का उन पर प्रतिबंध न हो, इसे सिद्ध कर दिया। पचास साल में उन्होंने समझा दिया, मां-बाप समझ गए। पहले बच्चा डर कर घुसता था घर में, अब मां-बाप डर कर घर में घुसते हैं कि कहीं बच्चे के ऊपर कहीं प्रतिबंध तो नहीं हो रहा। और बच्चे मां-बाप पर प्रतिबंध कर रहे हैं। यह कभी मनोवैज्ञानिकों को खयाल में भी नहीं था कि जिस दिन मां-बाप प्रतिबंध नहीं करेंगे उस दिन बच्चे प्रतिबंध करेंगे। उनको खयाल यह था कि मां-बाप प्रतिबंध नहीं करेंगे, बच्चे स्वतंत्र होंगे। बस इतना ही खयाल था। इसका अंतिम कनक्लूजन क्या है? इसका आखिरी कनक्लूजन यह है कि कंट्रोल तो कोई न कोई करने ही वाला है। बच्चे करेंगे।

अब यह बड़ी मुश्किल बात है। यह बेहतर था कि मां-बाप करते थे। बजाए इसके कि बच्चे करें। क्योंकि कम से कम वे अनुभवी थे। कम से कम वे बच्चे भी रह चुके थे। लेकिन बच्चों को तो इसका कोई भी पता नहीं है कि बूढ़े होने का क्या मतलब होता है। और जब एक दफा बच्चों को कह दिया कि हम उन पर प्रतिबंध नहीं करेंगे, तो किस सीमा पर रुकिएगा? आज बच्चे कहते हैं कि हम स्कूल नहीं पढ़ना चाहते हैं। तो प्रतिबंध करना है कि नहीं करना है? उनकी स्वतंत्रता पर आघात तो कर ही रहे हैं आप। कौन बच्चा पढ़ना चाहता है? कौन बच्चा पढ़ना चाहता है? अगर सुविधा होगी तो कोई बच्चा पढ़ने को राजी नहीं।

आज अमेरिका की हालत यह है कि अमेरिका को सारी की सारी बुद्धिमत्ता दूसरे मुल्कों से उधार लेनी पड़ रही है। दूसरे मुल्क चिंतित हैं यूरोप के, कहते हैं, ब्रेन ब्रेनिज हो रहा है। क्योंकि अमेरिका ज्यादा तनख्वाह देता है। और यूरोप और सारी दुनिया का जो बुद्धिमान आदमी है वह अमेरिका चला जाता है नौकरी करने। और अमेरिका की मजबूरी है कि उसको सारी दुनिया से बुद्धिमान खोजना पड़ रहा है। उसके बच्चे तो यूनिवर्सिटी से इनकार कर रहे हैं। उसके बच्चे तो पढ़ना ही नहीं चाहते। वे तो हिप्पी हैं, बीटनिक हैं वे तो अपने नाच-कूद कर रहे हैं, मारिजुआना ले रहे हैं। वे पढ़ना-वढ़ना चाहते नहीं। अमेरिका आज सारी दुनिया से बुद्धिमान आदमी को

खींच रहा है। कहीं भी बुद्धिमान आदमी हो आज नहीं कल अमेरिका चला जाएगा। उसकी भी मजबूरी है। क्योंकि आज उसके पास सबसे ज्यादा सुविधा है, सबसे ज्यादा संपन्नता है। लेकिन उसके बच्चे आगे बढ़ाने से इनकार कर रहे हैं। उसके बच्चे यह पूछ रहे हैं कि सुविधा, संपन्नता का करेंगे क्या? अब यह बड़े मजे की बात है सदा बच्चों ने पूछा था कि गरीबी कैसे मिटे? आज अमेरिका के बच्चे पूछ रहे हैं कि अमीरी कैसे मिटे? यह कभी सोचा भी नहीं था कि बच्चे यह पूछेंगे कि अमीरी कैसे मिटे!

यह प्रॉब्लम भी किसी दिन उठेगा। क्योंकि बच्चे यह कह रहे हैं कि तुम्हारी अमीरी से तुम्हें कुछ मिला तो नहीं। माना तुम्हारे पास मकान अच्छा है, कार तुम्हारे पास अच्छी है। तुम एयर कंडीशंड कमरे में हो। तुम्हारे पास बाथरूम अच्छा है, तुम्हारे पास साबुन अच्छी है। सब तुम्हारे पास अच्छा है। भोजन अच्छा, कपड़े अच्छे। बाकी तुम्हें मिला क्या जिंदगी में? तुम्हें जिंदगी में कुछ मिला नहीं। तो हम बिना बाथरूम के रह लेंगे, बिना नहाए रह लेंगे, गंदे कपड़े में रह लेंगे। साबुन हमारे पास नहीं होगी, परफ्यूम हमारे पास नहीं होगा। पसीने की बदबू आएगी। लेकिन हम जिंदगी को जीना चाहते हैं। हम तुम्हारे इस ढांचे में फंस कर मरना नहीं चाहते। यह कभी सोचा भी नहीं था कि बच्चों को पसीने की बदबू जो है, वह प्रीतिकर लगेगी। लग भी नहीं सकती थी, क्योंकि सुगंध बहुत मुश्किल मामला था पुरानी दुनिया में। कभी कोई सुगंधित हो सकता था। बाकी तो सबको पसीने की बदबू थी।

आज अमेरिका के बच्चे को पसीने की बदबू बेहतर लग रही है बजाए परफ्यूम के। वे कहते हैं, परफ्यूम धोखा है। असली शरीर की गंध चाहिए। धोखा इतना लंबा हो गया कि असली शरीर की गंध को बेहतर मानता है। नहाने से इनकार है, कपड़े बदलने से इनकार है। गंदगी सुखद है, क्योंकि वह जीवन है। और संपत्ति नहीं चाहिए।

अभी बर्कले यूनिवर्सिटी के लड़कों ने एक नई राल्स रॉयस गाड़ी खरीद कर, नई गाड़ी खरीद कर चंदा करके और कैंप्स के बीच में रख कर आग लगाई। क्योंकि यह सिंबल है धन का, धन नहीं चाहिए। किसी दूसरे की गाड़ी नहीं है, खुद चंदा करके यह गाड़ी लाकर कैंप्स के बीच में रख कर आग लगा कर होली मनाई। अब ये कारें नहीं चाहिए। आदमी वापस पैर पर लौटना चाहिए। क्योंकि पैर से चलने का सुख ही और था। पैर से चलने वालों को बिलकुल पता नहीं। भारी दुखी! और जब पास से कार गुजर जाती है तो आत्मा पर ऐसा संकट आता है जैसा कभी नहीं आता।

लेकिन जहां कार हो गई, अत्यधिक हो गई, वहां पैर से चलने का वापस सुख लौटना चाहिए। और मजा यह है कि पैर से कार तक जाना बहुत आसान मामला था, कार से पैर तक आना बहुत कठिन मामला है। बहुत कठिन मामला है। जद्दोजहद का मामला है। ज्यादा जटिल है। इधर मैं जैसा देखता हूं वह यह कि परिस्थिति, संस्था, समूह, समाज, राज्य, बदल कर हमने देख लिए हमने पांच हजार सालों में।

मेरी उत्सुकता नहीं है। मेरी उत्सुकता निपट व्यक्ति में है। सीधे व्यक्ति में है। कुछ उसके लिए कर सकूं तो ठीक। शायद उसके लिए होते होते समूह में फैल जाए तो अलग बात है। अगर किन्हीं मित्रों को उत्सुकता है कि मेरी बात ज्यादा लोगों तक फैले, तो उन्हें मेरी दृष्टि समझकर ही काम में लगना पड़ेगा।

अगर वे चाहते भी होंगे ज्यादा लोगों तक फैले; पर व्यक्तिशाही; ध्यान व्यक्ति पर ही हो। और इधर मुझे यह भी खयाल में आना शुरू हुआ कि जो लोग भी ज्यादा समूह में उत्सुक होते हैं। कई बार तो ऐसा होता है कि वे सिर्फ अपने से पलायन कर रहे होते हैं। समूह की चिंता लेकर बहुत आसानी से आदमी अपने से बच जाता है।

लैंजा दिलवास्तो का मैं जीवन पढ़ रहा हूं। वे पश्चिम में गांधी जी के...हैं, अनुयायी हैं, यूरोप के गांधी हैं। वे जब उन्नीस सौ तीस में भारत आए, तो बहुत भले आदमी हैं, एकदम भले आदमी। तो पहले वे रमण महर्षि के आश्रम गए। और रमण महर्षि उनको बिलकुल भी नहीं जंचे। जो आदमी जंचने जैसा था, वह बिलकुल भी नहीं जंजा। बल्कि लैंजा दिलवास्तो ने जो बातें अपनी डायरी में लिखी हैं वे अशुभ हैं रमण के बाबत। लिखा उसने यह है कि यह कैसा अध्यात्म कि एक आदमी सुबह से सांझ तक चुपचाप बैठा हुआ है। इस ध्यान का क्या फायदा? इस अंतर्मुख का एक व्यक्तिवाद में क्या रस? समाज को बदलना है, दुनिया को बदलना है, यह जगह मेरे लिए नहीं। उसने डायरी में लिखा हैः यह जगह मेरे लिए नहीं। मेरे लिए जगह तो वर्धा है! मुझे तो वर्धा जाना है!

और एक दिन रुका वह कि देख लें यह आदमी। तो एक दिन जो उसने डायरी में नोट किया है वह एकदम अभद्र है। मगर गांधीवादी के मन में वैसी अभद्रता होगी, अनिवार्य, रमण को देख कर। क्योंकि रमण को वहां लोग भगवान मानते हैं। तो वह लगता है कि अजीब बात है, भगवान भी सो रहे हैं, द गॉड इज़ ए स्लिपिंग। भगवान खाना खा रहे हैं। और तब तो हद हो गई जब रमण ने एक पान का पत्ता लेकर चबाया। तो उसने लिखाः अब भगवान पान चबा रहे हैं, उसने डायरी में लिखा। और फिर तो और भी हद हो गई जब उन्होंने डकार ली खाने के बाद। उन्होंने कहा, द गॉड इज़ वैलफीड। यह जगह मेरे लिए नहीं। जगह मेरी वर्धा है!

अब यह आदमी अपने को बदलने में जरा भी उत्सुक ही नहीं है। दुनिया को बदलने में उत्सुक है। रमण से इसका कोई तालमेल नहीं बैठता। गांधी से तालमेल बैठ जाएगा। मगर यह आदमी अपने को बदलने में उत्सुक क्यों नहीं है? अगर कोई भी बदलाहट की बुनियादी उत्सुकता है तो वह होनी चाहिए कि मैं अपने को कैसे बदल लूं? और मैंने कोई ठेका लिया सारी दुनिया का? और क्या मैं सारी दुनिया को बदल पाऊंगा? अपने को बदलना ही इतना मुश्किल है!

और मैंने अगर कोशिश करके दुनिया को बदलने का कुछ रास्ता भी शुरू कर दिया—समझ लें, जो कि असंभव है। तो भी मैं तो बर्बाद हो जाऊंगा ही। और अगर हर आदमी दुनिया को बदलने में लगा हो, तो हर आदमी अपने को बर्बाद कर रहा है दुनिया को बदलने में। तो दुनिया तो कभी बदलने वाली नहीं, जो बदल सकता था वह बदलने से बच जाएगा।

मेरी तो दृष्टि यह है कि उत्सुक हम हों अपनी बदलाहट में। और हमारी बदलाहट अगर संक्रामक हो जाए, वह औरों को भी पकड़ ले, तो प्रभु कृपा। और न पकड़े तो इसमें बेचैनी का कोई कारण नहीं है। और पकड़े तो भी वह व्यक्ति को ही पकड़े। संस्थावादिता जो है, समूहवादिता जो है वही मैटीरियलिज्म है, वही पदार्थवाद है। और व्यक्ति उन्मुखता जो है, और व्यक्ति को सर्वोपरि चैतन्य और जीवंत मानने की जो दृष्टि है वही अध्यात्म है। पर किसी को भी लगता हो कि मेरी बात ज्यादा लोगों के काम आ सकती है, तो वे कोशिश में लगें, बाकी मेरी उत्सुकता नहीं। इसकी भी मेरी उत्सुकता आप में है। आपसे कुछ फैल जाएगा किसी में वह दूसरी बात है।

नहीं फैलेगा तो कोई हर्जा नहीं होगा। आप तक ही पहुंचा तो काफी है। और ऐसा ही मैं चाहता हूं कि आपकी उत्सुकता भी व्यक्ति में हो। किसी व्यक्ति में लग जाए आग थोड़ी-बहुत। लग जाए चिराग। न लगे तो चिंता का कोई कारण नहीं है। क्योंकि दूसरे को तो हम बदल कर ही रहेंगे यह भी हिंसा है। और समाज को ऐसा बना कर ही रहेंगे जैसा हम चाहते हैं कि समाज होना चाहिए। यह बहुत गहरी अधिनायकशाही है। तो मैं कौन हूं। और अगर किसी आदमी को अज्ञानी रहने में ही आनंद आ रहा है तो मैं काहे के लिए उसको ज्ञानी बना कर कष्ट में डालूं। और फिर मैं कौन हूं तय करने वाला। यह उसके और परमात्मा के बीच का निर्णय है। मैं कौन हूं।

मैं इतना ही कह सकता हूं कि मुझे अज्ञानी से ज्ञानी होने में ज्यादा आनंद आया, शायद तुम्हें भी आए। यह संक्रामक हो जाए तो ठीक है। अन्यथा दूसरे को बदलना, वह जो मिस मैरी माइंड है, वह थोड़ा हिंसात्मक है ही। कोई बदल जाए यह बिलकुल दूसरी बात है। पर हम सीधे उसमें आग्रहपूर्ण भी रहें तो ठीक नहीं है।

हां, हम अपने को बदलें और उस बदलाहट, उस रोशनी में अगर किसी को कुछ दिखाई पड़ने लगे और वह फिर आए तो ठीक है। इसे इस भांति थोड़ा सोचें।

और एक कैंप में बने तो आ जाएं। तो थोड़ा कैंप एक देखें कि मैं व्यक्ति की बदलाहट के लिए क्या कर रहा हूं। वह कैसे यह सक्रिय हो पाती है घटना। अभी एक कैंप है माथेरान में, जनवरी में, आठ से सोलह के बीच। इसमें बने तो इसमें आ जाएं। और नहीं तो फिर एक मार्च में है माउंटआबू, पच्चीस मार्च से। ये कैंप बने तो आ जाएं। इसमें कोई सात सौ आठ सौ लोग एक कैंप में आते हैं। बाहर से भी कोई बीस-पच्चीस लोग आने को हैं। और यह जो व्यक्ति का...।

आठवां प्रवचन

भारत का भविष्य

ए रेडियो टॉक बॉय ओशो

...अंत तक अमल नहीं करते।

पर मैं तो बहुत कुछ करना भी चाह रही हूं बीबी जी।

सच!

हां।

यह सच फिर वही बात की आपने, आप करना चाह रही हैं या कुछ कर रही हैं। मैं तो यह जानना चाहती हूं।

बीबी देखिए देश-विवाह हमारा पहला कर्तव्य है, पहला धर्म है, बस इसी के लिए हम कुछ योजनाएं बना रहे हैं।

हां-हां, यानी और भी कुछ लोग हैं आपके पास।

हां, मेरी कुछ पड़ोसनें भी अपना सहयोग दे रही हैं।

भई वाह!

हम लोग सप्ताह में एक बार मिल बैठते हैं और फिर इस बैठक में बहुत सी बातें होती हैं।

अच्छा, जरा किस विषय पर बातें होती हैं मैं भी सुनूं।

बस देश के हित के लिए बहुत योजना बनाते हैं।

अच्छा, तब तो बहुत अच्छी-अच्छी योजनाएं होंगी। और देखिए हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि भारत के निर्माण के लिए नारी बहुत कुछ कर सकती है। उसका प्यार, उसकी प्रेरणा से क्या नहीं हो सकता, यह हमें तक नहीं, फिर हम चाहे...और आज इसी विषय पर ओशो के विचार हम बहनों को सुनवाते हैं।

भारत की संस्कृति, भारत की संपदा जीवन के एक नये द्वार पर खड़ी है। सैकडों वर्षों के अंधकार, गुलामी और दीनता के बाद फिर से एक समृद्ध जीवन का क्षण आया है। इस नये निर्माण में अकेले पुरुष का ही हाथ नहीं होगा, नारी का भी हाथ होगा। और यह सहयोग आश्चर्यजनक मालूम होता है। लेकिन सत्य है कि अब तक इस देश के निर्माण में नारी का कोई हाथ नहीं रहा है। नारी गुलाम थी, दास थी, अनुचर थी, प्रेमिका थी; लेकिन सहयोगी और सहश्रष्टा नहीं थी।

इसके दुष्परिणाम हुए हैं। एक सभ्यता बनी जो अकेले पुरुष की सभ्यता थी—कठोर, परुष, हिंसा और क्रोध और युद्ध से भरी। नारी का कोमल अनुदान उस सभ्यता को नहीं मिला। वह संस्कृति वैसी ही अधूरी थी जैसे कोई देश हो जहां सिर्फ पुरुष हों और स्त्रियां न हों। वह देश जैसा रसहीन, सौंदर्यहीन, संगीतहीन और प्रेमशून्य होगा, वैसी ही यह संस्कृति निर्मित हुई।

आने वाले भविष्य में कोई सम्यक और पूर्ण संस्कृति और सभ्यता को जन्म देना हो तो नारी का अत्यंत सहयोग और मूल्यवान स्थान उस निर्माण में होना जरूरी है। एक ऐसा देश निर्मित करना है जो अभय को उपलब्ध हो, प्रेम को उपलब्ध हो, स्वतंत्रता को, प्रकाश को, आनंद को। इस निर्माण के लिए कुछ सूत्रों पर विचार करना उपयोगी है। तीन सूत्रों पर विशेष रूप से।

नारी अब तक पुरुष से पीछे थी, अनुचर थी, गुलाम थी। उसे कोई समान स्थान न था। स्वभावतः गुलाम संस्कृतियों के निर्माण नहीं करते हैं। संस्कृति के निर्माण के लिए स्वतंत्र, चेता व्यक्ति चाहिए। नारी स्वतंत्र, चेता व्यक्ति अब तक नहीं थी।

फर्क आया है, परिवर्तन हुआ है, नारी ने मांग की है समानता की। लेकिन समानता की मांग के पीछे खतरा भी है। कहीं समान होने की दौड़ में वह पुरुष जैसे होने की प्रवृत्ति में न पड़ जाए। जैसा की सारी दुनिया में हो भी रहा है।

नारी अगर पुरुष जैसी होने की कोशिश में पड़ेगी तो फिर अनुचर रह जाएगी, फिर छाया रह जाएगी। फिर भी उसे व्यक्तित्व उपलब्ध नहीं होगा, उसे निजता और आत्मा उपलब्ध नहीं होगी। पुरुष बनने की दौड़ में नारी एक द्वितीय महत्व के स्थान पर ही खड़ी रह जाएगी। सिर्फ छाया ही होगी। व्यक्तित्व उसे मिल सकता है तभी जब यह समझ लिया जाए कि नारी भिन्न है, असमान है, लेकिन भिन्नता और असमानता का यह अर्थ नहीं कि उसे समादर उपलब्ध न हो। समादर उपलब्ध होना चाहिए, लेकिन समानता झूठी बात है। स्त्री और पुरुष समान बिलकुल भी नहीं हैं। और यही उनका आकर्षण भी है, यही उनका बल भी है।

स्त्री उतनी ही आकांक्षा के योग्य है, उतनी ही जीवन को रस से भरने वाली जितनी भिन्न है। उसकी भिन्नता में ही, उसके भिन्नता के विकास में ही न केवल उसका जीवन चरितार्थ होगा, बल्कि आने वाली संस्कृति भी सम्यक और पूर्ण हो सकती है।

तो यह पहला सूत्र ध्यान में रखने के लिए है और वह यह है कि स्त्री को हम उसकी भिन्नता में विकसित होने दें, पुरुष के समान बनाने की चेष्टा न करें। अन्यथा एक भूल पीछे हुई थी कि वह गुलाम थी और अब दूसरी भूल होगी कि वह केवल पुरुष की झूठी छाया, एक मिथ्या पुरुष बन कर रह जाएगी।

अब तक ऐसा ही हुआ कि जब भी नारी पुरुष जैसी होती है, हम प्रशंसा करते हैं। रानी झांसी की प्रशंसा करते हैं, जोनापार्क की प्रशंसा करते हैं। कहते हैंः खूब लड़ी मर्दानी। लेकिन मर्दाना होना, पुरुष जैसा होना नारी के लिए सम्मान योग्य नहीं है। उसका अपना निजी व्यक्तित्व है और वह विकसित हो—प्रेम का, संगीत का, घर का, परिवार का, परिवार के केंद्र का; वह जो आंतरिक जीवन है मनुष्य के हृदय का। उसे वह पूरा तभी सकेगी जब वह ठीक अर्थों में नारी ही हो, पुरुष जैसी न हो।

तो भारत की आने वाली संस्कृति में नारी को अपनी भिन्नता को परिपूर्ण रूप से विकसित करना है। ताकि वह ठीक-ठीक नारी का अनुदान, संस्कृति, और नये देश के निर्माण में दे सके। स्वभावतः इसके ही साथ दूसरी बात ध्यान में रखनी जरूरी है कि इसकी शिक्षा पुरुष जैसी न हो, न उसे व्यवसाय पुरुष जैसे दिए जाएं। मैं इसके अत्यंत विरोध में हूं। न तो पुरुषों जैसे व्यवसाय की नारी को जरूरत है, न वैसी शिक्षा की। क्योंकि वैसी शिक्षा, वैसी प्रतिस्पर्धा, वैसा प्रशिक्षण उसे एक झूठा व्यक्तित्व ही दे सकता है; उसकी आत्मा का सम्यक और ठीक विकास नहीं। और जिसका अपना ही व्यक्तित्व ठीक से विकसित न हुआ हो, वह देश के, समाज के व्यक्तित्व को परिपूरक नहीं बन सकती।

तीसरी बात ध्यान में रखनी जैसी है और वह यह कि नारी अगर ठीक से विकसित हो तो वह पुरुष से ज्यादा बलवान है। क्योंकि बच्चों का सारा निर्माण उसके हाथ में है, परिवार का प्राण वह है। जीवन के जो भी महत्वपूर्ण अंग है उस पर उसकी छाया और उसका प्रभाव है। सभी पुरुष उसकी छाया में बड़े होते और उसके प्रेम में जीते हैं। उसकी सहानुभूति में, उसकी करुणा में, उसकी ममता में जीते हैं। अगर यह ममता, यह प्रेम और यह करुणा ठीक-ठीक विवेकयुक्त हों तो देश के निर्माण में क्रांतिकारी परिणाम लाए जा सकते हैं।

देश के निर्माण का अंतिम अर्थ व्यक्तियों का ही निर्माण होता है। और व्यक्तियों के निर्माण का केंद्रीय तत्व मां है, पत्नी है, बहन है। वह जो नारी घेरे हुए पुरुष को चारों ओर से—अगर उसकी ममता और उसका प्रेम सृजनात्मक हो और पुरुषों को चुनौती देता हो और विकास के लिए आमंत्रण देता हो और उन दूर देश के सपनों को पूरा करने के लिए प्रेरणा देता हो, तो ही एक नया समाज, एक नया देश और एक नये भारत का जन्म हो सकता है।

लेकिन यदि नारी अतीत के ढंग की रही कि पुरुष की दासी, अगर अतीत का बहुत बोझ रहा तो यह नहीं हो सकेगा। और यदि नारी पश्चिम के ढंग की रही कि पुरुष के समकक्ष और समान खड़े होने की चेष्टा में रत, तो भी यह विकास नहीं हो सकेगा।

नारी को अगर भारत के निर्माण में अपना ठीक स्थान ग्रहण करना है तो दो बातों से बचना है। एक तरफ कुआं है, एक तरफ खाई है। एक उसका अतीत है और एक उसके सामने खड़ा हुआ पश्चिम है। अगर अतीत के बोझ से नारी बचे और पश्चिम के प्रभाव से, तो ही भारत के सम्यक निर्माण में उसका महत्वपूर्ण योगदान उपलब्ध हो सकता है। बहुत कुछ उसके हाथ में है—बहुत क्षमता, बहुत शक्ति। लेकिन सारी शक्ति और क्षमता का जब

तक उसके ही अनुकूल, उसके ही आत्मा के अनुकूल विकास न हो, तब तक देश के लिए उससे कुछ भी उपलब्ध नहीं हो सकता।

ओशो ने जो अपने विचार हमारे सामने रखे हैं, उन्हें हमें फिर सख्त...।

नवां प्रवचन

भारत का भविष्य

मेरे प्रिय आत्मन्!

बीती चर्चा के संबंध में बहुत से प्रश्न आए हैं। कुछ मित्रों ने पूछा है कि भारत सैकड़ों वर्षों से दरिद्र है, तो इस दरिद्रता में, इस दरिद्रता में तो गांधीवाद का हाथ नहीं हो सकता है। वह क्यों दरिद्र है इतने वर्षों से?

गांधीवाद का हाथ तो नहीं है, लेकिन गांधीवाद जैसी ही विचारधाराएं इस देश को हजारों साल से पीड़ित किए हुए हैं। उन विचारधाराओं का हाथ है। नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि उन विचारधाराओं को हम क्या नाम देते हैं। दो विचारधाराओं पर ध्यान दिलाना जरूरी है। एक तो भारत में कोई तीन-चार हजार वर्षों से संतोष की, कंटेंटमेंट की जीवन धारणा को स्वीकार किया है। संतुष्ट रहना है, जितना है उसमें संतोष कर लेना है। जो भी है उसमें ही तृप्ति मान लेनी है।

अगर हजारों वर्ष तक किसी देश की प्रतिभा को, मस्तिष्क को संतोष की ही बात समझाई जाए, तो विकास के सब द्वार बंद हो जाते हैं। संतोष आत्मघाती है। जरूर एक संतोष है जो आत्मज्ञान से उपलब्ध होता है। उस संतोष का इस तथाकथित संतोष से कोई संबंध नहीं है। एक संतोष है जो व्यक्ति स्वयं को जान कर या प्रभु के मंदिर में प्रवेश करके उपलब्ध करता है। वह संतोष बनाना नहीं पड़ता, समझना नहीं पड़ता, सोचना नहीं पड़ता, अपने पर थोपना नहीं पड़ता। वह परम उपलब्धि से पैदा हुई छाया है।

लेकिन जिसे हम संतोष समझते हैं कि जीवन में जो कुछ है, दीनता है, दरिद्रता है, रोग है, बीमारी है, उसमें ही संतुष्ट रह जाना है, ऐसा संतोष आत्मघाती है, स्युसाइडल है।

जीवन के विकास के लिए चाहिए एक तीव्र असंतोष। जीवन की सब दिशाओं में विकास के लिए असंतोष के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। और जो देश संतोष की बातों में अपने को भुला लेगा, संतोष की...हो जाएगा, उस देश की यही स्थिति हो सकती है जो हमारे देश की हुई। नहीं; जीवन के विकास में एक क्रिएटिव डिस्कंटेंट, एक सृजनात्मक असंतोष की जरूरत है। और यह मत सोचें कि जीवन के विकास के लिए जो सृजनात्मक असंतोष है वह भीतर अशांति बनता है। कभी भी नहीं।

सच तो यह है कि जितने लोग अपने को जबरदस्ती संतोष में ढांप लेते हैं, संतोष के वस्त्र ओढ़ लेते हैं वे भीतर निरंतर जलते रहते हैं और असंतुष्ट, परेशान और अशांत रहते हैं। थोपा हुआ संतोष कभी भी सत्य नहीं हो सकता। ऊपर से आरोपित किए गए संतोष के भीतर असंतोष की आग जलती ही रहती है। असंतोष चाहिए

बाहर, भीतर चाहिए संतोष। हमने उलटी हालत पैदा कर ली है। संतोष थोप लिया है ऊपर से और भीतर असंतोष है।

इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। हमने ऊपर से तो संतोष के वस्त्र पहन लिए हैं और भीतर? भीतर सब तरह का असंतोष, सब तरह की अशांति, सब तरह की वासना पीड़ित करती है। चाहिए उलटा। जीवन के समस्त बाह्य उपक्रम में चाहिए असंतोष, चाहिए विकास की उद्दाम तीव्रता और भीतर निरंतर बाहर के असंतोष के बीच भी चाहिए एक शांति, चाहिए एक मौन। यह हो सकता है। बैलगाड़ी का चाक आपने चलते देखा होगा। बैलगाड़ी का चाक चलता है और बीच में एक कील थिर और बिना चले हुए रहती। उसी थिर कील के ऊपर सारा चाक घूमता है। अगर कील भी घूमने लगे तो फिर चाक वहीं गिर जाएगा। बैलगाड़ी एक कदम भी आगे नहीं बढ़ेगी। बैलगाड़ी का चाक घूम सकता है इसलिए की एक न घूमने वाली कील के ऊपर खड़ा है।

भीतर तो चाहिए शांति, परिपूर्ण शांति, एक थिरता और जीवन के चक्र पर चाहिए तीव्र गति। तब तक कोई समाज, कोई देश अपनी मनीषा को इस भांति व्यवस्थित नहीं करता कि भीतर हो परम शांति और बाहर हो एक दिव्य असंतोष का चक्र। तब तक वह देश विकसित नहीं हो सकता है। तब तक वह देश रोज-रोज मरता चला जाएगा।

लेकिन हम आज तक इस पैराडॉक्सीकल, इस विरोधी दिखने वाली चीज को समझने में समर्थ नहीं हो पाए। हम यह नहीं समझ सके कि एक शांत व्यक्ति भी जीवन की गति में जीवन को बदलने के लिए आतुर हो सकता है। हम यह भी नहीं समझ पाए कि एक परिपूर्ण शांत व्यक्ति भी युद्ध के क्षेत्र पर तलवार लेकर लड़ने को तैयार हो सकता है। हम कहेंगे जो शांत है वह लड़ने कैसे जाएगा?

मैंने सुना है, खलीफा उमर के संबंध में एक बात सुनी है। उमर एक दुश्मन से सात वर्षों से लड़ रहा था। युद्ध निर्णायक नहीं हो पाता था। हर वर्ष युद्ध दोहरता था लेकिन कोई निर्णय नहीं होता था। सातवें वर्ष युद्ध के मैदान पर एक दिन उमर ने भाला फेंका। दुश्मन का घोड़ा मर गया, दुश्मन नीचे गिर पड़ा। वह उसकी छाती पर सवार हो गया, उसने भाला उठा कर उसकी छाती में भोंकने को था कि नीचे पड़े दुश्मन ने उमर के मुंह पर थूक दिया। उमर ने थूक पोंछ लिया और उस दुश्मन को कहा कि अब ठीक है, अब कल फिर से हम लड़ेंगे, आज बात खत्म हो गई।

उस दुश्मन के कहा, तुम पागल हो! सात वर्षों में यह मौका तुम्हें पहली बार मिला है कि तुम मेरी छाती पर हो और चाहो तो मुझे खत्म कर सकते हो। तुम मुझे छोड़ क्यों रहे हो?

उमर ने कहा, मैंने एक निर्णय किया था कि लडूंगा तभी तक जब तक शांत रहूंगा। तुम्हारे थूकने के कारण मैं अशांत हो गया, इसलिए अब आज लड़ाई बंद कर देता हूं। इन सात वर्षों में मैं शांति से लड़ता था, लेकिन तुमने मेरे ऊपर थूक दिया और क्रोध आ गया मुझे, अब अशांति में तुम्हारी हत्या करूं तो वह ठीक नहीं होगा।

सात वर्षों तक कोई शांति से युद्ध में लड़ सकता है? लड़ सकता है! हम कृष्ण जैसे आदमी को जानते हैं, युद्ध के मैदान में खड़ा है, लेकिन भीतर जिसकी शांति में जरा भी फर्क नहीं है। लेकिन हमने इस विरोधी दिखने वाली बात को आसान बना लिया, दो रास्ते निकाल लिए। एक तो हमने कहा कि जो अशांत हैं वे दुनिया की फिक्र करें, जो शांत हैं वे दुनिया से हट जाएं। इस तरह हमने दुनिया को दोहरा नुकसान पहुंचाया।

अशांत आदमी, भीतर से अशांत आदमी जब जीवन के उपक्रम में लगता है, तो उपक्रम में विकास तो दिखाई पड़ता है लेकिन मूलतः विकास नहीं होता और भी खतरनाक स्थितियां पैदा होती हैं। जब अशांत आदमी, भीतर से अशांत आदमी जीवन का विकास करता है तो जीवन में वह जिन चीजों को विकसित करता है, वे विध्वंसात्मक होती हैं, डिस्ट्रक्टिव होती हैं, कभी सृजनात्मक नहीं होती।

पश्चिम ने वैसी भूल कर ली है। पश्चिम लगा है अशांति और असंतोष में। भीतर है अशांति, बाहर है असंतोष। परिणाम? परिणाम यह हुआ कि वे उस जगह पहुंच गए हैं जहां जागतिक आत्मघात हो सकता है। वे वहां पहुंच गए हैं जहां हम सारी मनुष्यता को, सारे जीवन को नष्ट कर सकते हैं।

जीवन का उनका सारा विकास ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे परम मृत्यु की तरफ ले जाने वाला विकास बन गया। एक उन्होंने भूल की है, हमने दूसरी भूल की है। हम भीतर भी शांत; बाहर भी शांत होने का इंतजाम कर लिए। इस शांति का एक मतलब हुआ कि यह पूरा मुल्क एक लंबा मरघट हो गया है, जहां एक मुर्दगी छाई हुई है, जहां न कोई खुशी है, जहां न कोई आनंद है, न कोई जीवन का नृत्य है, न कोई जीवन का रस है, हम सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब भगवान हमें पृथ्वी से उठा ले और आवागमन से छुटकारा हो जाए।

नहीं; इन दोनों के बीच कोई सेतु बनाना जरूरी है। भीतर चाहिए शांति और बाहर चाहिए असंतोष। और यह हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। भीतर की शांति के सूत्र अलग हैं और बाहर के जीवन को सृजनात्मक रूप से विकसित करने के सूत्र अलग हैं। शांत होने का मतलब मर जाना नहीं है, शांत होने का मतलब पलायनवादी हो जाना नहीं है। शांत होने का मतलब है कि जो काम हम अशांति से करते थे उसे शांति से करना है। जो विकास हम अशांति से करते थे उसे शांति से करना है। जीवन को बदलने की जो चेष्टा हम अशांति से करते थे उसे शांति से करना है। और निश्चित ही शांति के माध्यम से किया गया विकास ज्यादा सुदृढ़, ज्यादा सच्चा, ज्यादा जीवन को ऊंचा ले जाने वाला होगा। लेकिन हम एक संतोष की थोपे हुए संतोष की धारणा लिए हुए बैठे हैं।

मैं एक संन्यासी के पास था। संन्यासी के पास उनके दस-पच्चीस भक्त भी इकट्ठे थे। वे संन्यासी मुझे एक गीत सुनाने लगे, जो उन्होंने लिखा था। वह गीत, उसके शब्द बहुत सुंदर थे, उसकी रचना सुंदर थी, वे बड़े भाव से गीत गाने लगे। उनके भक्तों के सिर हिलने लगे। उन्होंने गीत में कहा थाः किसी सम्राट को संबोधन किया था, कहा था कि सम्राट तुम अपने राज-सिंहासन पर हो, रहो, मुझे तुम्हारे राज-सिंहासन की कोई वासना नहीं, कोई लालसा नहीं; मैं तो अपनी इस धुन में ही मजे में हूं; मैं तुम्हारे राज-सिंहासन की कोई फिक्र भी नहीं करता, रहो तुम अपने स्वर्ण-सिंहासन पर, मैं तो अपनी धुन में भी आनंदित हूं।

फिर उन्होंने गीत गाकर मुझसे पूछा कि आपको गीत कैसा लगा?

मैंने उनसे कहा कि मैं बहुत हैरान हूं! अगर आपको स्वर्ण-सिंहासन से कोई भी मतलब नहीं है तो यह स्वर्ण-सिंहासन और यह सम्राट आपको दिखाई क्यों पड़ते हैं? मैंने तो कभी किसी सम्राट को यह गीत गाते नहीं सुना है आज तक पूरी पृथ्वी पर, इतिहास में कोई उल्लेख नहीं कि किसी सम्राट ने किसी फकीर को यह संबोधन किया हो कि तू रह मजे में अपनी धुन में, मैं अपने स्वर्ण-सिंहासन में ही मजे में हूं, मुझे तेरी कोई फिक्र नहीं। ऐसा किसी सम्राट ने अब तक नहीं कहा। लेकिन फकीर को क्यों सम्राट और उसके राज-सिंहासन दिखाई पड़ते

हैं? भीतर वासना जल रही है, भीतर आकांक्षा जल रही है, ऊपर से संतोष थोपा गया है। और यह जो गाली दी जा रही है स्वर्ण-सिंहासन को, यह उसी संतोष को थोपने की प्रक्रिया का हिस्सा है।

हम जिस चीज से भयभीत होते हैं, जिसकी हमारे भीतर आकांक्षा होती है, उसकी हम निंदा करते हैं और निंदा से अपने को समझा लेना चाहते हैं कि वह पाने योग्य नहीं है। जितने साधु-संन्यासी स्त्रियों को छोड़ कर भाग कर जाते हैं, वे निरंतर स्त्रियों को गाली देते रहते हैं। नरक का द्वार है, बचना चाहिए, स्त्री पाप का घर है। और कुल कारण इतना है कि स्त्री उन्हें भीतर से आकर्षित कर रही है। अन्यथा स्त्री को गाली देने की कोई जरूरत नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। जिनके भीतर स्त्री का आकर्षण है वह स्त्री को गाली देकर अपने आकर्षण को रोकने और दबाने की चेष्टा कर रहे हैं।

जिनके मन से वासना की समाप्ति हो गई है, उन्हें तो स्त्री-पुरुष में भेद दिखाई पड़ना भी असंभव है। उन्हें खयाल भी नहीं आ सकता—कौन स्त्री है, कौन पुरुष! लेकिन भीतर तो भेद मौजूद है, आकांक्षा मौजूद है। उस आकांक्षा से भाग कर गए हैं। आकांक्षा पीछे से धक्के दे रही है। ऊपर ब्रह्मचर्य है, भीतर वासना है। इस ऊपर के ब्रह्मचर्य का कोई भी मूल्य नहीं है। क्योंकि जो भीतर है वही सत्य है। ऊपर शांति, संतोष है, भीतर असंतोष है।

हम जो इस मुल्क में भौतिकवाद को इतनी गाली देते हैं उसका कारण यह मत समझ लेना कि हम बड़े आध्यात्मिक लोग हैं। हम से ज्यादा भौतिकवादी लोग पृथ्वी पर खोजने मुश्किल हैं। लेकिन हम भौतिकवाद को गाली देते हैं और बड़ी तृप्ति पाते हैं कि हम बड़े आध्यात्मिक हैं। भौतिकवाद को गाली देने से सिर्फ आपके भीतर छिपे हुए भौतिकवादी वासनाओं का पता चलता है और कुछ भी नहीं।

मैं एक घर में ठहरता था। उस घर के ऊपर स्विटजरलैंड के कुछ दो परिवार रहते थे। जब भी मैं उनके घर में गया, उस घर के लोगों ने मुझे कहा कि ये बड़े भौतिकवादी हैं, बड़े मैटीरियलिस्ट हैं। सिवाय खाने-पीने के, नाच-गाने के इन्हें कोई काम ही नहीं। रात बारह-बारह बजे तक नाचते रहते हैं। एकदम निरे भौतिकवादी हैं। इन्हें सिवाय सुख-सुविधा की किसी चीज से कोई प्रयोजन नहीं। न आत्मा से कोई मतलब है, न परमात्मा से कोई मतलब है। बस धन, धन, खाना-कमाना, मौज करना, बस यही इनका जीवन है।

फिर दुबारा में उनके घर गया, तब वे स्विस लोग जा चुके थे। वह घर की गृहिणी मुझे कहने लगी, वे लोग चले गए, बड़े अजीब लोग थे! वे अपनी भासन, बर्तन मलने वाली नौकरानी को सारे स्टील के बर्तन दे गए, बिलकुल असली स्टील! वे अपना रेडियो पड़ोसियों को भेंट कर गए! वे अपने कपड़े-लत्ते सब बांट गए मोहल्ले में! बड़े अजीब लोग थे!

मैंने उनसे पूछा कि तुम्हें भी कुछ उन्होंने बांटा, दिया। वे कहने लगे कि नहीं। हमें तो वे यह सोच कर कि ये लोग पैसे वाले हैं कहीं दुखी न हों, कुछ भी नहीं दे गए। लेकिन उन्होंने जब यह कहा तब उनका मन बड़ा दुखी था कि वे कुछ भी नहीं दे गए। फिर भी मैंने कहा, कि उनकी लड़की भीतर से एक रस्सी उठा लाई, एक रेशम की रस्सी। उसने कहा कि यह भर, वे लोग छोड़ गए थे पीछे आंगन में बंधी, तो हमारी मां खोल लाई। बड़ी, बहुत बढ़िया रस्सी है यह, हिंदुस्तान में नहीं मिल सकती। भौतिकवादी, भौतिक संपन्नता से कोई भौतिकवादी नहीं होता। पदार्थ को पकड़ लेने की कामना से, वासना से कोई भौतिकवादी होता है।

मैं जयपुर में था एक मित्र आए और कहने लगे कि एक बहुत बड़े मुनि ठहरे हुए हैं, आप उनसे मिलने चलेंगे। मैंने कहा, वे बहुत बड़े मुनि हैं तुमने किस तराजू पर और कैसे तोला? उन्होंने कहा, इसमें क्या बड़ी बात है! खुद जयपुर महाराज उनके चरण छूते हैं! तो मैंने कहा कि इसमें जयपुर महाराज बड़े हो गए कि मुनि बड़े हो गए, कौन बड़ा हुआ? अगर जयपुर महाराज उनके चरण न छुएं तो मुनि छोटे हो जाएंगे? जयपुर महाराज चरण छूते हैं तो मुनि बड़े हो गए! क्यों? क्योंकि जयपुर महाराज बड़े हैं। यह धन की प्रतिष्ठा हुई या त्याग की प्रतिष्ठा हुई? यह प्रतिष्ठा किसकी है? यह प्रतिष्ठा धन की प्रतिष्ठा है। हमारे मन में धन की वासना है, ऊपर से निर्धनता का संतोषपूर्ण स्वीकार है। हमसे ज्यादा धन को पकड़ने वाले लोग कहां मिलेंगे! लेकिन हम गालियां देते रहेंगे कि सारी दुनिया भौतिकवादी है और हम अध्यात्मवादी हैं। वह जो भौतिकवाद को हम गाली देते हैं वह भीतरी हमारी इच्छाओं को दबाने का फल है। वह सूचना है। जिस दिन हिंदुस्तान आध्यात्मिक होगा उस दिन किसी को भौतिकवादी कहने जैसी निम्नतम शब्दों का उपयोग नहीं करेगा।

हम सिवाय गालियों के और कुछ भी नहीं उपयोग कर रहे हैं। यह सब ऊपर से दिखाई पड़ने वाला संतोष झूठा है। इसने विकास को अवरुद्ध किया, मनुष्य को विकसित नहीं किया। न तो इसने आत्मा की तरफ पहुंचाने में सहायता दी और न जीवन की सुविधाओं को जुटाने के लिए ये मार्ग बन सका। इसने हमें एक कुंठा में, एक भीतरी पीड़ा में, एक अंधकार में घेर कर खड़ा कर दिया है।

नहीं; गांधीवादी तो नहीं था लेकिन ठीक गांधीवादी जैसी विचारधारा सदा से इस मुल्क के मन को पकड़े रही है। एक तो संतोष ने हमें नुकसान पहुंचाया और दूसरी विचारधारा हमने जो कर्म-फल का सिद्धांत अपने मुल्क में तीन हजार वर्ष से पकड़ रखा है, वह हमारे प्राण ले रहा है। हमने यह मान रखा है कि एक आदमी गरीब इसलिए है कि उसके पिछले जन्मों के कर्मों का फल भोग रहा है। उसने बुरे कर्म किए हैं इसलिए वह गरीब है। और एक आदमी इसलिए अमीर है कि उसने अच्छे कर्म किए हैं।

इस व्याख्या ने हमारे मुल्क को विकास के परिवर्तन के समाज के ढांचे को बदलने की सारी संभावना समाप्त कर दी। हमने यह मान लिया कि गरीब इसलिए गरीब है कि उसने पाप किए, अमीर इसलिए अमीर है कि उसने पुण्य किए। तब फिर समाज की व्यवस्था को बदलने का कोई उपाय न रहा। क्योंकि गरीबी-अमीरी को हमने समाज की व्यवस्था से अलग करके व्यक्ति के कर्मों की अनंत व्यवस्था से जोड़ दिया।

यह तरकीब बहुत कारगर साबित हुई। इसलिए हिंदुस्तान में दरिद्रों की तरफ से कोई क्रांति नहीं हो सकी। और आज भी नहीं हो पा रही है और कल भी संभावना कम दिखाई पड़ती है। जब तक कर्म-फल की इस भ्रांत धारणा से हम बंधे हैं तब तक हिंदुस्तान की सामाजिक ढांचे और रचना को बदलना मुश्किल है।

मैं यह नहीं कहता हूं कि कर्म-फल नहीं होते, न मैं यह कहता हूं कि पिछले जन्म नहीं होते। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूं कि संपत्ति का बंटवारा किन्हीं कर्म-फलों से संबंधित नहीं हैं। संपत्ति का बंटवारा सामाजिक व्यवस्था का बंटवारा है। संपत्ति का विभाजन सामाजिक ढांचे का विभाजन है। उसका कर्म-फलों से कोई संबंध नहीं। और यह भी मैं कहना चाहता हूं कि कर्म-फल एक-एक दो-दो जन्मों तक प्रतीक्षा नहीं करते हैं। अभी मैं आग में हाथ डालूंगा तो अगले जन्म में नहीं जलूंगा, अभी जल जाऊंगा। यह अगले जन्म तक प्रतीक्षा नहीं करेगी आग कि आप हाथ अभी डालिए और अगले जन्म में जलिएगा।

जीवन के नियम, कॉज़ेलिटी के नियम, कार्य-कारण के नियम तत्काल फल लाने वाले हैं। अगर मैं क्रोध करूंगा तो क्रोध की आग में अभी जल जाऊंगा, अभी दुख भोग लूंगा। अगर मैं प्रेम करूंगा तो प्रेम के आनंद की वर्षा अभी हो जाएगी, अभी मैं प्रेम के आनंद को भोग लूंगा। मैं जो भी कर रहा हूं, तत्क्षण, उसी क्षण, उसके साथ लगा हुआ फल है, अगले जन्म तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। लेकिन यह अगले जन्म की प्रतीक्षा का नियम क्यों खोजना पड़ा हमें? यह खोजना पड़ा गरीबी और अमीरी को समझाने के लिए। क्योंकि हमारे पास कोई उपाय न था।

उपाय यह था, एक आदमी गरीब दिखाई पड़ता है और साथ में यह भी दिखाई पड़ता है कि वह जो गरीब आदमी है, भला है, अच्छा है, ईमानदार है, साथ में यह भी दिखाई पड़ता है कि धनी है, सब कुछ है उसके पास लेकिन न ईमान है, न सच्चाई है। अब धार्मिक गुरु कैसे समझाए? वह कहता था, अच्छे कर्मों का फल अच्छा मिलता है, बुरे कर्मों का फल बुरा मिलता है। अच्छे आदमी दुख में दिखाई पड़ते हैं, बुरे आदमी सुख में दिखाई पड़ते हैं। अब इसको कैसे समझाए? इसको समझाने का एक ही रास्ता था, क्योंकि अगर अभी कर्म-फल मिलता है तो बुरे आदमी दुख भोगने चाहिए, अच्छे आदमी सुख भोगने चाहिए। वह दिखाई नहीं पड़ता। बुरे आदमी सुख में और अच्छे आदमी दुख में दिखाई पड़ते हैं। अब कैसे समझाए इसे? एक ही रास्ता है, पिछले जन्मों से समझाओ। इस आदमी ने पिछले जन्म में बुरे कर्म किए होंगे, अभी अच्छे कर रहा है इसलिए दुख भोग रहा है क्योंकि यह पिछले जन्मों का कर्म-फल है। अब यह अच्छे करेगा, अगले जन्म में अच्छे फल भोगेगा। अगले जन्मों का कोई ठिकाना नहीं है, कोई पता नहीं है।

यह आदमी बुरा है, आज धन है, महल है, यह पिछले जन्मों के अच्छे कर्मों का फल है। अभी बुरे कर रहा है अगले जन्म में बुरे फल भोगेगा। सिवाय इसके हमारे पास कोई तरकीब न थी। लेकिन यह तरकीब बहुत महंगी पड़ गई।

मैं आपसे कहना चाहता हूंः जन्म है, पुनर्जन्म है, कर्मों का फल है, लेकिन कर्मों का फल प्रतिक्षण उपलब्ध हो जाता है आगे के लिए शेष नहीं रहता। आप अभी बुरा करेंगे और आप पाएंगे कि सिर्फ उस बुराई के कारण सारे दुख झेल लिया, सारी पीड़ाएं झेल लीं। आप अभी भला करेंगे और पाएंगे कि भले के पीछे एक शांति की, एक आनंद की लहर दौड़ गई, उसका फल उपलब्ध हो गया है। आप हमेशा अपने कर्मों को करके फल भोग कर उनके बाहर निकल जाते हैं, अगले जन्मों तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

इस दूसरे सिद्धांत ने—दरिद्रता और अमीरी को समझाने की व्यवस्था कर दी। और फिर जब व्यवस्था मिल गई, व्याख्या मिल गई, फिर जीवन को बदलने का कोई सवाल न रहा। हमने जीवन को स्वीकार कर लिया। अपने-अपने कर्म बदलने हैं जीवन और समाज को नहीं बदलना है।

तीसरी बात, जिसने हमारे जीवन को और बुरी तरह से ग्रस लिया, वह यह था कि हमने प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत दृष्टि दी, सामाजिक दृष्टि, एक कलेक्टिव जीवन की सोचने की धारणा हमने विकसित नहीं की। हमने कहा, एक-एक आदमी के अपने-अपने कर्म-फल हैं, अपना-अपना जीवन है, अपनी यात्रा है। दूसरे से कोई संबंध नहीं, दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं।

समाज की धारणा कि सारा समाज सुख-दुख में सहभागी है कि सारा समाज जैसा है वैसा व्यक्ति को भोगना पड़ता है, समाज के साथ जीना और निर्मित होना पड़ता है। वह धारणा हमने विकसित नहीं की।

हिंदुस्तान ने एक सेल्फ-सेंटर्ड, एक-एक व्यक्ति को आत्म-केंद्रित बना दिया। समाज-केंद्रित, समाज से संबंधित धारणा हमने विकसित नहीं की। स्वभावतः एक-एक व्यक्ति इतने बड़े समाज को बदलने में असमर्थ है, जब तक हम समाज को आमूल, सामूहिक रूप से बदलने का कोई उपाय न करें।

इसी बात में एक-एक व्यक्ति को अपना-अपना ध्यान रखना है। एक और नई बात पैदा कर दी। वह बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने पिछले जन्मों, आने वाले जन्मों का विचार करना है। यह जन्म, यह जीवन तो सराय में ठहरने जैसा है, विश्रामालय में थोड़ी देर रुके हैं फिर आगे बढ़ जाना है।

हमने जीवन का सम्मान नहीं किया है, हमने जीवन का बहुत अपमान किया है। और ध्यान रहे, जो समाज जीवन का अपमान करेगा, वह समाज जीवन के रस और आनंद को उपलब्ध करने में समर्थ नहीं हो सकता है। हमने सदा यही कहा कि जीवन है असार, जीवन है व्यर्थ, जीवन है बेकार, जीवन तो किसी तरह गुजार देना है और स्मरण करते रहना है परमात्मा का कि कब मुझे इस जीवन से छुटकारा मिले?

जीवन को हमने धन्यता नहीं माना है। जीवन को हमने अनुग्रह नहीं माना। जीवन को पाकर हम भगवान को धन्यवाद नहीं दिए। हमने क्रोध प्रकट किया है, जीवन के लिए हम पछताए हैं। यह कैसी अजीब दृष्टि! यह कैसी जीवन-विरोधी! यह कैसी लाइफ निगेटिव! यह जीवन के प्रतिकार की, विरोध की, निषेध की कैसी दृष्टि है! और जिसका हम निषेध करेंगे उससे हम कैसे आनंद को, समृद्धि को, वैभव को, ऐश्वर्य को, श्री को उपलब्ध हो सकते हैं? कैसे उपलब्ध हो सकते हैं? मैं एक अदभुत सी हालत देखता हूं कि हम निरंतर कंडेमनेशन में, निंदा में ही लगे रहेंगे। और ध्यान रहे, हम जीवन के प्रति जो दृष्टि लेते हैं, धीरे-धीरे जीवन वैसा ही दिखाई पड़ने लगता है। जीवन हमारी दृष्टि का प्रतिफलन बन जाता है। हम अगर जीवन को बुरा सोचते हैं, निंदनीय, तो धीरे-धीरे जीवन निंदनीय हो जाता है, बुरा हो जाता है। हम कैसा सोचते हैं जीवन के प्रति इस पर ही निर्भर करता है कि जीवन कैसा हो जाएगा। हमारी धारणा जीवन को निर्मित करती है। और अगर हम पांच हजार वर्षों से निरंतर जीवन से शत्रु का व्यवहार किए हैं तो जीवन भी अगर हमारा मित्र न रह गया हो तो इसमें आश्चर्य क्या है? हम प्रत्येक चीज की निंदा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर रहे हैं।

मैं एक गांव में था। मेरे एक मित्र पूर्णिमा की रात थी और मुझे पहाड़ियों में एक जल-प्रपात दिखाने ले गए। अदभुत जल-प्रपात था। हम उस जल-प्रपात के पास पहुंचे, रास्ते पर गाड़ी रोकी, कोई एक मील पैदल जाना था। पहाड़ियों में प्रपात की गूंज सुनाई पड़ने लगी। उसका निमंत्रण, उसका बुलावा। मैं और मेरे मित्र उतर कर चलने लगे, तो मुझे खयाल आया कि ड्राइवर गाड़ी में भीतर रह गया। मैंने अपने मित्र को कहा कि अपने ड्राइवर को भी बुला लें, वह क्यों इस अंधेरी गाड़ी में बैठा रहे। इतना चांद बरसता है, इतना प्रपात निकट है, इतने जोर से उसकी आवाज आती है, पहाड़ियां बुलाती हैं। उसे बुला लें।

वे हंसने लगे और कहा कि आप ही बुला लें। मैं उनके हंसने का मतलब नहीं समझा। मतलब बाद में समझ में आया। मैं उस ड्राइवर के पास गया और मैंने कहा कि दोस्त तुम भी बाहर आ जाओ, चलो हमारे साथ, यहां अंधेरे में बैठे हुए क्या करोगे?

तो उसने कहा, क्या रखा है वहां उस जल-प्रपात में! कुछ पहाड़, कुछ पत्थर और ऊपर से पानी गिर रहा! मैं तो हैरान हूं कि लोग इतनी अंधेरी रात में, उजली रात में, दिन में, दोपहर में, धूप में कि क्या देखने वहां आते हैं? वहां कुछ भी नहीं है! कुछ पत्थर पड़े हैं और पानी गिर रहा है। पत्थरों के ऊपर पानी गिर रहा है और लोग उसे देखने जाते हैं। आप ही जाइए, मुझे जाने की जरूरत नहीं है।

मैं बहुत हैरान हुआ! मैंने अपने मित्र से कहा कि तुम्हारे ड्राइवर ने बड़ा गलत धंधा चुन लिया, अगर वह धर्मगुरु हो जाता तो बड़ा सफल हो सकता था। उसे जीवन को निंदा करने का सूत्र मालूम है। जल-प्रपात जैसी अभूतपूर्व घटना को उसने दो छोटी सी चीजों में तोड़ दिया—पत्थर और पानी! और क्या रखा है वहां! अब उसकी बात को आप गलत भी नहीं कह सकते हैं। बिलकुल ही वैज्ञानिक बात मालूम पड़ती है कि पत्थर और पानी और है क्या वहां!

लेकिन यह जल-प्रपात पत्थर और पानी ही नहीं है। जल-प्रपात पत्थर और पानी से कुछ बहुत बड़ी बात है। लेकिन वह उन्हीं को दिखाई पड़ सकता है, जो पत्थर और पानी के भीतर और गहरे और पार देखने में समर्थ हों। किसी को मैं प्रेम से गले से लगा लूं, तो कोई मुझसे आकर कह सकता है कि क्या रखा है गले से लगाने में! हड्डियों से हड्डियां मिल जाती हैं और क्या होता है!

वह ठीक कहता है। अगर हम प्रयोगशाला में जाएं और जांच-पड़ताल करें तो हड्डियों से हड्डियां ही गले लगने से मिलेंगी, कुछ और मिलता हुआ दिखाई नहीं पड़ेगा। लेकिन जिन्होंने कभी भी किसी को हृदय से लगाया है प्रेम से, वे जानते हैं कि हड्डियों के पीछे कुछ और भी है जो मिल जाता है। लेकिन उसे प्रयोगशाला में जांचने का कोई उपाय नहीं।

धर्मगुरु कहता है: क्या है जीवन में? जन्म, जरा, मृत्यु! क्या है जीवन में? रोग, शोक, दुख, बीमारियां! क्या है जीवन में? शरीर में रखा क्या है? कुछ हड्डी, मांस-मज्जा, स्तन! जोड़ है!

वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी के शरीर को अगर हम तोड़ें-फोड़ें तो मुश्किल से पांच-छह रुपये का सामान उसमें से निकलता है।

आप किसी को प्रेम करते हैं। बेकार प्रेम करते है। पांच-छह रुपये खीसे में रख लें, उन्हीं को प्रेम करते रहें। क्योंकि आदमी या किसी स्त्री के शरीर में पांच-छह रुपये से ज्यादा का सामान नहीं है। कुछ थोड़ा एल्युमिनियम है, कुछ लोहा है, कुछ फास्फोरस है, कुछ हड्डियां हैं, यह सब मिला-जुला कर वे कहते हैं पांच-छह रुपये का सामान है। पांच-छह रुपये के सामान के लिए लोग जान लगा देते हैं दांव पर, जीवन गंवा देते हैं!

पागल हैं बिलकुल! गलती में पड़े हैं वे! जीवन की निंदा के सूत्र हमने पकड़ रखे हैं और वे सूत्र क्या हैं? वे सूत्र हैं: विश्लेषण। जीवन की बड़ी इकाई को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ दो और निंदा कर दो।

शायद आपने मार्कट्वेन का नाम सुना हो। मार्कट्वेन अमेरिका का एक अदभुत हंसोड़ विचारक था। एक मित्र था मार्कट्वेन का वह मित्र एक बहुत बड़ा उपदेशक था। सारी अमेरिका में उसकी ख्याति थी। एक दिन उसने मार्कट्वेन को कहा कि कभी मेरे व्याख्यान सुनने जरूर आओ। हजारों-लाखों लोग सुनने आते हैं। तुम कभी नहीं आए।

मार्कट्वेन ने कहा, क्या रखा है तुम्हारे व्याख्यान में, कुछ शब्दों के सिवाय, ओंठों को हिलाने और गले से आवाज करने के सिवाय वहां होगा क्या?

उस मित्र ने कहा, आश्चर्य! तुम व्याख्यान का इतना ही अर्थ लेते हो? फिर भी तुम आज आओ मुझे सुनोगे तो शायद तुम्हारी धारणा बदल जाए।

नहीं माना तो मार्कट्वेन सुनने गया। हजारों लोग सुनने आए थे। मार्कट्वेन सामने ही बैठ गया। उसके मित्र ने जो कुछ भी उसके जीवन में श्रेष्ठतम धारणाएं रही होंगी, जो भी उसके मन में काव्य रहा होगा, जो भी उसके जीवन में सौंदर्य के अनुभव रहे होंगे, सब उंडेल दिए उस दिन। लेकिन बार-बार उसने देखा मार्कट्वेन की तरफ, वे हजारों लोग मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे, लेकिन मार्कट्वेन ऐसे बैठा हुआ था कि जैसे कोई शिक्षक परीक्षार्थी के सामने बैठा रहता है। वह ऐसे देख रहा था जैसे कोई इंस्पेक्टर किसी चोर की खानातलाशी ले रहा हो। मार्कट्वेन, एक क्षण को भी उसके चेहरे पर ऐसा भाव नहीं आया कि कुछ बात कही गई है। मित्र तो घबड़ा गया। उतरा, लौटा, गाड़ी में बैठा तो हिम्मत न पड़ी पूछने की। आखिर में उसने पूछा घर पहुंच कर, आपको कैसा लगा? मार्कट्वेन ने कहा, लगने का क्या था एक घंटा मेरा खराब किया। तुम सिवाय शब्दों के कुछ भी नहीं बोलते थे! शब्द ही शब्द! शब्दों में क्या रखा है! और भी मैं तुम्हें बता दूं कि तुमने जो भी बोला, रात ही मैं एक किताब पढ़ रहा था उसमें एक-एक शब्द लिखा हुआ है जो भी तुमने बोला है। उस किताब में सब तुम्हारे शब्द लिखे हुए हैं। एक भी शब्द तुमने अपना नहीं बोला, कोई विचार नया नहीं था।

उस मित्र ने कहा, हद करते हो! यह तो हो सकता है कि मैंने जो कहा उसका कोई विचार किसी किताब में लिखा हो, लेकिन मैंने जो बोला एक-एक शब्द लिखा हो! बिलकुल झूठ बोलते हो!

मार्कट्वेन ने कहा, यह हाथ रहा है, सौ-सौ रुपये की, सौ-सौ डालर की शर्त लग जाए! शर्त लग गई! मित्र ने सोचा कि मार्कट्वेन हार ही जाएगा। क्योंकि ऐसी किताब कहां खोजी जा सकती है जिसमें मेरे सारे शब्द हों। लेकिन दूसरे दिन मार्कट्वेन जीत गया और मित्र को सौ डालर उसे देने पड़े। उसने सुबह ही एक डिक्शनरी, एक शब्दकोश भेज दिया कि इसमें तुम्हारे सब शब्द लिखे हुए हैं। एक-एक शब्द तुम जो बोले हुए हो इसमें लिखा हुआ है। तुम कोई मौलिक और नई बात नहीं बोले हो। एक काव्य, एक सत्य, एक कही गई आनंद की बात, शब्दकोश के शब्दों में छोड़ी जा सकती है, और सब व्यर्थ हो गई, बेमानी हो गई। जीवन की निंदा हमने इस भांति की है कि जीवन में कुछ भी नहीं है। जो भी है उसे तोड़-तोड़ कर बताया और लगा कि जीवन में कुछ भी नहीं है।

हिंदुस्तान को हिंदुस्तान की प्रतिभा को जीवन को प्रेम करना सीखना पड़ेगा; तो ही हम जीवन की संपदा, जीवन के विकास को उपलब्ध हो सकते हैं। जीवन की निंदा से कभी नहीं; जीवन के विरोध से कभी नहीं; जीवन के दुश्मन और शत्रु बन कर कभी नहीं; जीवन के प्रेमी बन कर, जीवन में रस लेकर, जीवन में आनंदित होकर, जीवन के लिए परमात्मा को धन्यवाद देकर ही हम जीवन को विकसित कर सकते हैं। अन्यथा हम जीवन को विकसित नहीं कर सकते।

गांधीवाद तो नहीं था लेकिन इन तीन विचारधाराओं ने इस देश के प्राणों को संघातक चोट पहुंचाई। और आज भी हमारा धर्मगुरु, हमारा विचारक, हमारा नेता उन्हीं बातों को किए चला जा रहा है। बिना जाने, बिना सोचे।

जिनसे हमारे प्राण जड़ हो गए हैं, कुंठित हो गए हैं, अवरुद्ध हो गए हैं। जीवन की धारा को तोड़ने के लिए वापस जीवन की धारा फिर उद्याम वेग से बह सके इस देश में। तो हम एक जीवन को प्रेम की कोई फिलासफी, जीवन को प्रेम करने वाला कोई दर्शन, कोई लाइफ अफरमेटीव फिलासफी, कोई जीवन को सिद्ध करने वाली, जीवन को स्वीकार करने वाली दृष्टि अंगीकार करनी जरूरी है। अन्यथा हम विकसित नहीं हो सकते हैं।

यह सवाल कुछ मित्रों ने पूछा कि क्या सिर्फ टेक्नालॉजी के विकास से सब हो जाएगा?

वे ध्यान रखें कि टेक्नालॉजी के सिर्फ विकास से कुछ न हो जाएगा। टेक्नालॉजी भी तभी विकसित होगी जब भीतर जीवन को विधेय के रूप में हम स्वीकार करेंगे। टेक्नालॉजी या विज्ञान, वे सब जीवन को विस्तार करने वाली बातें हैं। जो लोग जीवन का निषेध करते हैं वे उन बातों को पैदा कैसे कर सकते हैं। यह थोड़ा सोचने जैसा है कि हमारे मुल्क में विचारकों की कमी नहीं रही और यह भी जानने जैसी बात है कि हमने जितने बड़े विचारक दिए हैं, शायद हमने जितने बड़े विचारक पैदा किए हैं, कोई एक अकेला देश उतने बड़े विचार के धनी लोगों की दावा नहीं कर सकता है।

पतंजलि से लेकर अरविंद तक हमारी एक लंबी परंपरा है। इतने अदभुत लोग हमने पैदा किए हैं, जिनकी बौद्धिक क्षमता की कोई टक्कर नहीं है। नागार्जुन, या बिजनाक, या धर्मकीर्ति, या शंकराचार्य इनका कोई मुकाबला है दुनिया में? लेकिन इतने बड़े विचारक पैदा करने के बाद—बुद्ध, गौतम और कोणार्क जैसे अदभुत मनीषी पैदा करने के बाद भी हम वैज्ञानिक पैदा नहीं कर पाए। एक आइंस्टीन पैदा नहीं कर पाए। एक न्यूटन पैदा नहीं कर पाए। यह आश्चर्य की बात है! इतने बड़े विचारक जिस देश में पैदा हुए हैं वहां कोई भी विचार का धनी वैज्ञानिक क्यों नहीं हो पाया? उसका कारण है, जीवन का विरोध है हमारा। विज्ञान जीवन का प्रेम से पैदा होता है। विज्ञान जीवन के विरोध से पैदा नहीं होता।

जीवन के विरोध हमारे व्यक्तित्व में घर कर गया, खून में मिल गया, इसलिए हमने विचारक पैदा किए मोक्ष की तरफ ले जाने वाले। हमने वे विचारक पैदा नहीं किए जो जीवन की तरफ ले जाते हैं। हमारी सारी विचार की शक्ति—मोक्ष, ब्रह्म, परमात्मा उसकी खोज में लग गई।

हमारे जीवन की सारी शक्ति जीवन को समृद्ध करने की दिशा से बिलकुल मुड़ गई। वह धारा कहीं और ही चली गई। इस धारा को वापस लौटाना है। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम जीवन की धारा में सम्मिलित, संयुक्त हो जाएं, तो हम परमात्मा और प्रभु को सोचना बंद कर देंगे। मेरी अपनी समझ यह है कि जो जीवन को भी जीने में समर्थ नहीं हैं वे परमात्मा को पाने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? जीवन को जीने में जो समर्थ हो जाते हैं उनको ही जीवन की गहराइयों में पहली बार परमात्मा के वास्तविक हस्ताक्षर दिखाई पड़ते हैं। जीवन के अनुभव की गहराइयों में ही प्रभु का मंदिर है। प्रभु जीवन के विरोध में पीठ किए हुए नहीं खड़ा है।

अगर प्रभु जीवन के विरोध में होता तो इस जीवन को कभी का नष्ट कर देना चाहिए था। इस जीवन को रचे जाने की, सृजन किए जाने की जरूरत क्या है? लेकिन हमारे महात्मा परमात्मा से भी ज्यादा बुद्धिमान होने का

सबूत देना चाहते हैं। वे कहते हैं कि परमात्मा भूल में है जो जीवन को सृजन कर रहा है। वे कहते हैं, असली समझदार तो वे हैं जो जीवन को छोड़ कर भाग रहे हैं।

जीवन को छोड़ कर नहीं भागना है, जीवन को जीना है उसकी परिपूर्णता में। और उसकी परिपूर्णता के रस से ही जो अनुभव उपलब्ध होगा, वही अनुभव प्रभु की ओर ले जाने वाला अनुभव बनता है। पीठ दिखा कर जीवन की तरफ, सूर्य की तरफ पीठ करके कोई भी प्रकाश को उपलब्ध नहीं हो सकता। इस बात की तीव्रतम घोषणा हम कर सकें मुल्क के प्राणों में, तो मुल्क में विज्ञान पैदा होगा। क्योंकि विज्ञान किसी अंतर्दृष्टि का परिणाम है। तो टेक्नालॉजी पैदा होगी। क्योंकि टेक्नालॉजी कोई ऊपर से नहीं थोपी जा सकती। इसलिए तो हम पश्चिम से जाकर सीख कर आ जाते हैं। हमारा युवक जाता है, वह टेक्नीशियन होकर आ जाता है। हमारा युवक जाता है, वह विज्ञान का एक नाटक होकर आ जाता है। लेकिन विज्ञान बुद्धि, साइंटिफिक आउट लुक पैदा नहीं होता। साइंटिफिक आउट लुक जरा भी पैदा नहीं होता। वह यूरोप से लौट आएगा, आक्सफोर्ड और क्रेमरीज से होकर लौट आएगा, और उसकी टोपी के नीचे देखो तो चोटी में राख दबी मिल जाएगी।

एक संन्यासी की किताब में पढ़ रहा था। वह वैज्ञानिक विज्ञान पढ़े हुए संन्यासी ने और उन्होंने उस किताब में यह सिद्ध करने की कोशिश की कि हिंदुस्तान में जो कुछ भी चलता है सब वैज्ञानिक है। चोटी भी वैज्ञानिक है। मैं तो बहुत हैरान हुआ कि चोटी कैसे वैज्ञानिक है? किताब पढ़ी तो दंग रह गया कि इस बीसवीं सदी में भी कोई ये बातें लिख सकता है।

विज्ञान का स्तानक है यह आदमी। लिखा है कि चोटी वैज्ञानिक है और उदाहरण दिया है कि आपने देखा होगा कि बड़ी-बड़ी बिल्डिगों पर लोहे की लकड़ी लगाते हैं ताकि बिजली का असर न पड़े। हिंदुओं ने बहुत पहले यह खोज कर ली थी इसलिए चोटी को बांध कर खड़ा रखते थे। जिससे बिजली का कोई असर आदमी के ऊपर न पड़े।

चोटी वैज्ञानिक है! खड़ाऊं वैज्ञानिक है! क्योंकि हमने बहुत पहले हमारे ऋषि-महर्षिओं ने खोज कर ली थी कि अंगूठे में एक नस होती है वह अगर दबी रहे तो आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है।

सारे शरीर-शास्त्र की खोज-बीन भी हो चुकी है, अंगूठे में ऐसी कोई नस नहीं है जिसके दबे रहने से आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाए। अगर ऐसी कोई नस मिल जाए तो संतति-निरोध वगैरह की कोई जरूरत न रहे। सबको खड़ाऊं पहना दी जाए और काम हल हो जाए। और खड़ाऊं में भी खतरा है, कभी खड़ाऊं उतारोगे न, कम से कम रात सोते वक्त तो खड़ाऊं उतारनी पड़ेगी। तो हम नस का कोई आपरेशन नहीं कर सकते हैं, नस को स्थायी रूप से बांध सकते हैं। लेकिन हमारी बुद्धि वैज्ञानिक नहीं हो पाती, हमारे जीवन को देखने का ढंग वैज्ञानिक नहीं हो पाता। उसका कारण है, हजारों साल से हमें श्रद्धा सिखाई गई है, बिलीफ। जहां-जहां श्रद्धा का प्रभाव है वहां-वहां विज्ञान पैदा नहीं होता। विज्ञान पैदा होता है संदेह से, डाउट से। बिलीफ से नहीं।

विज्ञान का जन्म होता है संदेह से। जब हम अतीत पर संदेह करते हैं तो हम विकसित होते हैं। जो लोग अतीत पर श्रद्धा किए चले जाते हैं, वे विकसित कभी भी नहीं होते।

अगर इस देश में टेक्नालॉजी और विज्ञान को पैदा करना है और उसके बिना हमारा कोई भविष्य नहीं हो सकता। तो ध्यान रहे, हमारे चिंतन की सारी प्रक्रिया के आधार बदलने होंगे। श्रद्धा की जगह संदेह को मूल्य देना होगा।

एक-एक विद्यार्थी को बचपन से ही संदेह की कला सिखाई जानी चाहिए। आर्ट ऑफ डाउट। कैसे संदेह करें हम? कैसे संदेह करते चले जाएं और तब तक न मानें जब तक कि हम उस निःसंदिग्ध रूप से संदेह करने की आगे कोई संभावना न रह जाए। और तब भी इतना ही माने कि अभी जितना हम संदेह कर सकते हैं उसमें यह सत्य मालूम पड़ता है। हो सकता है कल हम और संदेह कर सकें और यह सत्य न रह जाए। तब विज्ञान विकसित होता है, तब वैज्ञानिक दृष्टि विकसित होती है।

विज्ञान का जन्म होता है संदेह से। अविज्ञान का जन्म होता है विश्वास से, श्रद्धा से। हम श्रद्धालु लोग हैं, हमारा धंधा विश्वास करने का रहा, हमने संदेह नहीं किया, इसलिए संदेह नहीं किया तो जीवन विकसित नहीं हुआ। संदेह होगा तो जीवन विकसित होगा। हर बाप को यह कामना करनी चाहिए कि उसका बेटा उस पर संदेह करे। हर गुरु को यह कामना करनी चाहिए, उसका विद्यार्थी उस पर संदेह करे। क्योंकि आने वाली पीढ़ी जितना संदेह करेगी उतनी ही पिछली पीढ़ी से आगे जाएगी और अगर विश्वास करेगी तो पिछली पीढ़ी के ही साथ बंधी रह जाएगी, आगे नहीं जा सकती।

ये सारी बातें थीं जिन्होंने इस मुल्क के प्राणों को जकड़ रखा है। एक इनप्रिजनमेंट में, एक कारागृह में बांध रखा है। एक-एक जगह छोड़ देने की जरूरत है तब इस देश की चित्तधारा फैलेगी। लेकिन हमें डर लगता है, हमें डर यह लगता है कि अगर विश्वास उठ गया तो क्या होगा? हमें डर लगता है अगर पुरानी पीढ़ियों पर नई पीढ़ियों ने संदेह किया तो क्या होगा? हमें डर लगता है कि अगर सारा पुराना-पुराना छोड़ कर लोग आगे बढ़ गए तो क्या होगा? कुछ भी नहीं होगा। जितनी देर तक आप पकड़ते हैं उतनी देर तक परेशानी होगी। जिस दिन आप परिपूर्ण रूप से नई पीढ़ियों को मुक्त करने के लिए राजी हो जाएंगे, बल्कि उनकी मुक्ति में सहयोगी हो जाएंगे, उसी दिन आप पाएंगे कि नई पीढ़ियां आपके प्रति अत्यंत आदर से भर गई हैं।

यह जो आप सारी दुनिया में और इस मुल्क में, किसी विद्यार्थी ने यह पूछा है कि हमारे और पुरानी पीढ़ी के बीच फासला बढ़ता जा रहा है। कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। हम क्रोध में हैं, हम चीजों को तोड़ रहे हैं, हम क्या करें? ये बच्चे तब तक तोड़े चले जाएंगे जब तक इनके भीतर की जो प्रतिभा है उसको हम विकसित होने के परिपूर्ण स्वतंत्र मार्ग नहीं खोल देते। जब तक पुरानी पीढ़ियां इनको जकड़ने की कोशिश करेंगी, तब तक ये क्रोध में चीजों को तोड़ेंगे। चीजों को नुकसान पहुंचाएंगे। जिस दिन पुरानी पीढ़ियां इन्हें मुक्त करने के लिए पूरी तरह राजी हो जाएंगी, उस दिन ये उनके अनुगत हो जाएंगी। उस दिन एक फेथ, एक अनुशासन, एक डिसिप्लीन पैदा होगी। जो अनुशासन जबरदस्ती नहीं लाया जाता बल्कि विवेक से उत्पन्न होता है। यह इस देश की प्रतिभा को मुक्त करने के लिए पुरानी पीढ़ी को बड़ी सोच की, बड़ी समझ की जरूरत है।

नहीं; मत बांधे इन्हें पुराने विश्वास से। इनसे कहें कि जगाओ विवेक को, इनसे कहें कि जगाओ विचार को, इनसे कहें कि जगाओ संदेह को। तुम्हारे लिए एक बहुत नये देश, तुम्हारे लिए बहुत नये लोग, तुम्हारे लिए बहुत नया भविष्य जीतना है। अतीत हो चुका, अतीत से बंधे मत रह जाओ। अतीत को तुम्हारे चित्त पर बोझ मत बनने दो। वह तुम्हारा बर्डन न। बने तुम उसके ऊपर खड़े हो जाओ अतीत के। वह तुम्हारे पैर की शिला बने, तुम्हारे सिर का बोझ नहीं। तुम खड़े हो जाओ अतीत के कंधे पर और देखो आगे भविष्य में जहां नये सूरज

उगेंगे, जहां नई प्रभात होगी, जहां नया समाज होगा, जहां नया ज्ञान होगा, जहां नया जीवन होगा। वहां तुम देखो, उसकी पुकार सुनो भविष्य की, छोड़ो अतीत को, आगे जाओ।

जीवन की धारा निरंतर आगे जाती है। गंगा निकलती है गंगोत्री से फिर पीछे तो नहीं लौटती, फिर पीछे लौट कर भी तो नहीं देखती; फिर भागती है, भागती है उस अज्ञात सागर की तरफ जिसका उसे कोई भी पता नहीं, कहां होगा? अगर वह डर जाए और सोचे कि कहां जाती हूं अनजान रास्तों, पर पहाड़ होंगे, खाइयां होंगी, खंदक होंगे, जंगल होंगे, न मालूम कैसा क्या होगा? कहां जाऊं? यहीं गंगोत्री में सिकुड़ कर रह जाऊं, पीछे लौट कर देखती रहूं, पकड़े रहूं गंगोत्री को ही। तो फिर गंगा सागर तक नहीं पहुंचेगी। ऐसी भयभीत गंगा सागर तक नहीं पहुंच सकती। नहीं, उसे छोड़ देना पड़ता है गंगोत्री को। बही जाती है आगे, पीछे को छोड़ती चली जाती है। अनजान-अपरिचित रास्तों पर, न कोई पुलिस का आदमी मिलता है रास्ते में जिससे पूछ ले कि सागर कहां है, न कोई धर्मगुरु मिलते हैं जिनसे पता लगा ले कि सागर कहां है। नहीं; अतीत तो ज्ञात है भविष्य सदा अज्ञात है। भागती जाती है, भागती जाती है। लेकिन एक दिन सागर पर पहुंच जाती है।

जीवन की सारी धारा भविष्य की तरफ है। एक बच्चा मां के पेट से पैदा हुआ। रुक नहीं जाता मां के गर्भ को पकड़ कर, कहे कि नहीं जाता कहां भेजती है, कहां जाऊं, अनजान रास्ते हैं, अपरिचित दुनिया है। क्या होगा, क्या नहीं होगा? गर्भ बहुत सुरक्षित है, सिक्योरिटी है, कंफर्टेबल है। उससे ज्यादा सुविधापूर्ण जगह दुनिया में फिर मिलने वाली नहीं है। कितने भी अच्छे कोच बनाओ, कितने ही अच्छे कमरे बनाओ, मां के गर्भ से ज्यादा सुविधापूर्ण और आनंददायी जगह मिलने वाली फिर नहीं है। कहां जाऊं? न भोजन की फिक्र है, न कोई चिंता है, न कोई नौकरी है, न कोई बेकारी है। आनंद में हूं, चौबीस घंटे आनंद में हूं। कहां जाऊं? बच्चा अगर इंकार कर दे और मां के गर्भ में रह जाए तो क्या होगा?

नहीं; लेकिन जाना पड़ता है, जीवन की धारा आगे की तरफ है। मां को उसे छोड़ देना पड़ता है, मां बहुत प्यारी है। छोड़ने का मतलब यह नहीं कि मां के प्रति प्रेम कम हो गया। लेकिन जीवन का सूत्र यह है कि मां को बच्चे को छोड़ देना पड़ेगा। वह अलग होगा मां से, बढ़ेगा। कुछ दिन फिर भी मां से चिपटा रहेगा, असहाय है, फिर जवान हो जाएगा, फिर अपनी दुनिया के रास्ते पर चला जाएगा। शायद मां उसे भूल भी जाएगी, कोई और स्त्री उसके प्रेम को पकड़ लेगी, किसी और स्त्री के पीछे वह पागल हो जाएगा। शायद मां की स्मृति भी खो जाएगी। जीवन आगे जा रहा है, आगे जा रहा है, आगे जा रहा है। आगे बढ़ता चला जा रहा है। इसमें पीछे रुकने का उपाय नहीं। जीवन की पूरी चेतना निरंतर आगे जा रही है।

एक बीज है; टूट जाता है, मिट जाता है फिर एक अंकुर की यात्रा शुरू होती है। तो यह हम ध्यान में रखें कि अतीत के साथ जकड़ जाना जीवन के विकास में बाधा है और हमारा मुल्क अतीत के साथ बहुत बुरी तरह जकड़ा हुआ है। उन सिद्धांतों के नाम कुछ रहे हों, उन वादों के नाम कुछ रहे हों, लेकिन हमारा देश, हमारी प्रतिभा अतीत से जकड़ी हुई प्रतिभा है। इसकी अतीत से मुक्ति चाहिए। इसका अतीत से मुक्त हो जाए बिना इसको भविष्य में गति नहीं मिल सकती।

एक छोटी सी बात और मैं अपनी बात पूरी कर दूंगा। कुछ मित्रों ने यह पूछा है कि आपकी टेक्नालॉजी और साइंस के विकास की बातें हमें भौतिकवादी न बना देंगी। तुमने कभी यह नहीं पूछा तुम्हारा शरीर तुम्हें

भौतिकवादी नहीं बना देता। तो हत्या कर लो अपनी, गर्दन काट दो क्योंकि शरीर भौतिकवाद है। तुमने कभी नहीं सोचा कि खाना खाने से भौतिकवादी हो जाओगे। क्योंकि भोजन, भोजन भूख है, पदार्थ है। तुमने कभी नहीं सोचा यह कि जीवन भौतिकता और अध्यात्म का जोड़ है। जीवन अकेली आत्मा नहीं है और जीवन अकेला शरीर भी नहीं है, जीवन दोनों का जोड़ है। शांति विकसित होनी चाहिए, ध्यान विकसित होना चाहिए, मेडिटेशन विकसित होना चाहिए। वह टेक्नालॉजी है अंतस में जाने की। वह भी टेक्नालॉजी है। ध्यान है, योग है, समाधि है, धर्म है, प्रार्थना है, वह भी टेक्नालॉजी है। वह टेक्नालॉजी है आत्मा में जाने की। विज्ञान है, तर्क है, वह टेक्नालॉजी है पदार्थ में जाने की। और जीवन, जीवन दोनों का जोड़ है।

मैंने सुना है कि रोम में एक सम्राट बीमार पड़ा था। वह इतना बीमार था कि मरने के करीब था। चिकित्सकों ने कह दिया कि ठीक नहीं हो सकेगा। फिर अचानक एक खबर आई कि एक फकीर आया है गांव में, कहते हैं वह तो मुर्दों को जिला देता है, उसे ले आओ। उस फकीर को लाया गया, उस फकीर ने कहा कि कौन कहता है कि सम्राट बीमार है? जरा सी बीमारी है ठीक हो जाएगी। एक छोटा सा इंतजाम कर लो। जाओ नगर में किसी समृद्ध और सुखी आदमी के वस्त्र ले आओ। वे वस्त्र इसे पहना दो, यह ठीक हो जाएगा।

वजीर भागे। उन्होंने कहा यह तो बड़ा सरल उपाय है। वे गए, नगर में जो सबसे बड़ा धनपति था उसके पास और कहा कि तुम अपने कपड़े दे दो। सम्राट मरण-शय्या पर है और एक फकीर ने कहा है अगर सुखी और समृद्ध आदमी के कपड़े मिल जाएं तो अभी ठीक हो जाएगा। जल्दी कपड़े दे दो। उस धनपति ने कहा, कपड़े, मैं अपनी जान भी दे सकता हूं सम्राट को बचाने के लिए। लेकिन मेरे कपड़े काम नहीं करेंगे, नहीं पड़ेंगे काम। मैं समृद्ध तो बहुत हूं लेकिन सुख, सुख से मेरा कोई भी संबंध नहीं है।

फिर वे गांव के बड़े से बड़े लोगों के पास भटकते रहे। शाम हो गई। सभी जगह यही उत्तर मिला। जिनके पास धन था उन्होंने कहा धन तो है लेकिन सुख, सुख हमारे पास नहीं है, सुख से हम अपरिचित हैं। फिर तो वजीर घबड़ा गया और अपने साथ दौड़ते हुए नौकर से कहने लगा अब क्या होगा? मैं तो सोचता था कि बड़ा सरल उपाय है। वह नौकर हंसने लगा उसने कहा मालिक, तुम जब दूसरे की तरफ कपड़े मांगने गए तभी मैं समझ गया कि उपाय आसान नहीं। सम्राट का वजीर खुद अपने कपड़े देने की नहीं सोच रहा, किसी और के पास मांगने जाए!

वह वजीर कहने लगा किस मुंह को लेकर जाएं हम सम्राट के पास? अंधेरा पड़ जाने दो, रात उतर आने दो, फिर हम चलेंगे अंधेरे में, कह देंगे कि नहीं हो सकता है महाराज। नहीं, उपाय नहीं बनता। रात होते-होते वे पहुंचे। महल के पास पहुंचे थे पीछे कि महल के पास नदी उस पार कोई जंगल से बांसुरी बजाता था। महल की दीवालों तक, नदी की लहरों पर उस बांसुरी की आवाज गूंजती थी। वह बांसुरी की आवाज कुछ ऐसी शांत थी, कुछ ऐसी आनंदपूर्ण थी कि वह वजीर कहने लगा, हो सकता है इस आदमी को आनंद मिल गया हो, सुख मिल गया हो। चलो इससे और पूछ लें। वे नदी पार करके उस व्यक्ति के पास गए। जो एक अंधेरे वृक्ष के नीचे, एक चट्टान पर बैठ कर बांसुरी बजाता था। अंधेरा था, कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। उस व्यक्ति के पास जाकर उन्होंने पूछा कि मेरे भाई तुम्हें शायद शांति मिल गई हो, तुम्हारे संगीत में ऐसा आनंद मालूम होता है। शायद तुमने सुख

जाना हो, क्या तुमने सुख जाना है? उस व्यक्ति ने कहा, सुख, मैं सुख से भरा हुआ हूं, सुख ही सुख है मेरे पास। कहो कैसे आए?

वे कहने लगे, हम बहुत खुश हुए, धन्य हमारा भाग्य तुम मिल गए। सम्राट मरण-शय्या पर है उसके लिए वस्त्रों की जरूरत है। एक फकीर ने कहा किसी सुखी और समृद्ध आदमी के वस्त्र मिल जाएं तो सम्राट बच सकता है। वह आदमी एकदम चुप हो गया बांसुरी बजाने वाला और कहने लगा मैं अपनी जान दे सकता हूं सम्राट को बचाने के लिए। सुखी भी मैं बहुत हूं, शांत भी बहुत हूं, लेकिन वस्त्र! मैं नंगा बैठा हूं! अंधेरे में तुम्हें शायद दिखाई नहीं पड़ता, मेरे पास कपड़े नहीं हैं। कपड़े मेरे पास हैं ही नहीं, मैं क्या कर सकता हूं?

उस रात वह सम्राट मर गया। क्योंकि लोग मिले जिनके पास कपड़े थे लेकिन शांति न थी। फिर एक आदमी मिला जिसके पास शांति थी लेकिन कपड़े न थे।

पश्चिम मर रहा है कपड़ों के कारण। हम मर रहे हैं नंगेपन के कारण! इन दोनों के बीच कोई सेतु चाहिए। इन दोनों के बीच कोई सिंथेसिस, कोई समन्वय चाहिए। एक ऐसी मनुष्यता चाहिए जिसके पास शांति भी हो और समृद्धि भी हो। अगर हम ऐसी मनुष्यता नहीं खोज सकते तो आदमी इस पृथ्वी पर बहुत दिन नहीं रह सकेगा। या तो वस्त्रों के ढेर में दब कर मर जाएगा या नंगेपन में मर जाएगा। इसके सिवाय बचने का कोई उपाय नहीं।

नहीं, यह मत सोचें कि टेक्नालॉजी और विज्ञान के विकास से आप भौतिकवादी हो जाएंगे। जीवन तो द्वैत है, जीवन में मैटर की जगह है और जीवन में आत्मा की भी जगह है। उन दोनों को एक ही साथ साधा जा सकता है। वे एक साथ सधे हुए हैं। आपके पास कहां शरीर समाप्त होता है, कहां आत्मा शुरू होती है? दोनों जुड़े हैं। दोनों एक साथ हैं। जीवन एक अदभुत समन्वय है। और जब हम अपने विचार-दृष्टि में भी मैटर और परमात्मा के बीच समन्वय स्थापित करते हैं तो हम समग्र संस्कृति को पैदा करने की आधारशिला रखते हैं। अब तक की सारी संस्कृतियां खंडित संस्कृतियां थीं। या तो भौतिकवादी थीं या अध्यात्मवादी थीं। पहली बार, एक संपूर्ण संस्कृति चाहिए जो भौतिकवादी और अध्यात्मवादी एक साथ हो। तब उस संस्कृति के पास शरीर भी होगा और आत्मा भी होगी। और तभी हम मनुष्य को सुख-शांति, सुव्यवस्था और सब कुछ देने में समर्थ हो सकते हैं।

इन तीन दिनों में मेरी इन सब बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दसवां प्रवचन

भारत का भविष्य

एक बहुत पुराने नगर में उतना ही पुराना एक चर्च था। वह चर्च इतना पुराना था कि उस चर्च में भीतर जाने में भी प्रार्थना करने वाले भयभीत होते थे। उसके किसी भी क्षण गिर पड़ने की संभावना थी। आकाश में बादल गरजते थे तो चर्च के अस्थि-पंजर कंप जाते थे। हवाएं चलती थीं तो लगता था चर्च अब गिरा, अब गिरा।

ऐसे चर्च में कौन प्रवेश करता। कौन प्रार्थना करता। धीरे-धीरे उपासक आने बंद हो गए। चर्च के संरक्षकों ने कभी दीवाल का पलस्तर बदला, कभी खिड़की बदली, कभी द्वार रंगे। लेकिन न द्वार रंगने से, न पलस्तर

बदलने से, न कभी यहां ठीक कर देने से, वहां ठीक कर देने से, वह चर्च इस योग्य न हुआ कि उसे जीवित माना जा सके। वह मुर्दा ही बना रहा।

लेकिन जब सारे उपासक आने बंद हो गए। तब चर्च के संरक्षकों को भी सोचना पड़ा। क्या करें? और उन्होंने एक दिन कमेटी बुलाई। वह कमेटी भी चर्च बाहर ही मिली, भीतर जाने की उनकी भी हिम्मत न थी। वह किसी भी क्षण गिर सकता था। रास्ते चलते लोग भी तेजी से निकल जाते थे।

संरक्षकों ने बाहर बैठ कर चार प्रस्ताव स्वीकृत किए। उन्होंने पहला प्रस्ताव स्वीकृत किया बहुत दुख से कि पुराने चर्च को गिराना पड़ेगा। और हम सर्वसम्मति से तय करते हैं कि पुराना चर्च गिरा दिया जाए। लेकिन तत्क्षण उन्होंने दूसरा प्रस्ताव भी पास किया कि पुराना चर्च हम गिरा रहे हैं इसलिए नहीं कि चर्च को गिरा दें, बल्कि इसलिए की नया चर्च बनाना है। दूसरा प्रस्ताव किया कि एक नया चर्च शीघ्र से शीघ्र बनाया जाए। और तीसरा प्रस्ताव उन्होंने किया कि नये चर्च में पुराने चर्च की ही इटें लगाई जाएं, पुराने चर्च के ही दरवाजे लगाए जाएं, पुराने चर्च की ही शक्ल में नया चर्च बनाया जाए। पुराने चर्च के जो आधार हैं, बुनियादें हैं, उन्हीं पर नये चर्च को खड़ा किया जाए। ठीक पुरानी जगह पर, ठीक पुराना, ठीक पुराने सामान से ही वह निर्मित हो। इसे भी उन्होंने सर्वसम्मति से स्वीकृत किया। और फिर चौथा प्रस्ताव उन्होंने स्वीकृत किया वह भी सर्वसम्मति से और वह यह कि जब तक नया चर्च न बन जाए तब तक पुराना न गिराया जाए।

वह पुराना चर्च अब भी खड़ा है। वह पुराना चर्च कभी भी नहीं गिरेगा। लेकिन उसमें कोई उपासक अब नहीं जाते हैं। उस रास्ते से भी अब कोई नहीं निकलता है। उस गांव के लोग धीरे-धीरे भूल ही गए हैं कि कोई चर्च भी है।

भारत के धर्म की अवस्था भी ऐसी ही है। वह इतना पुराना हो चुका, वह इतना जराजीर्ण, वह इतना मृत कि अब उसके आसपास कोई भी नहीं जाता है। उस मरे हुए धर्म से अब किसी का कोई संबंध नहीं रह गया है। लेकिन वे जो धर्म के पुरोहित हैं, वे जो धर्म के संरक्षक हैं, वे उस पुराने को बदलने के लिए तैयार नहीं। वे निरंतर यही दोहराए चले जाते हैं कि वह पुराना ही सत्य है, वह पुराना ही जीवित है, उसे बदलने की कोई भी जरूरत नहीं है।

मैं आज की सुबह इसी संबंध में कुछ बातें आपसे करना चाहता हूं। क्या भारत धार्मिक है? भारत इसी अर्थों में धार्मिक है जिस अर्थों में वह नगर धार्मिक था, क्योंकि उस नगर में एक चर्च था। भारत धार्मिक है क्योंकि भारत में बहुत मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गुरुद्वारे हैं। भारत इसी अर्थों में धार्मिक है जिस अर्थों में उस गांव के लोग धार्मिक थे। इसलिए नहीं कि वे मंदिर जाते थे बल्कि वे मंदिर जाने से बचने की कोशिश करते थे। भारत इसी अर्थों में धार्मिक है कि हर आदमी धर्म से बचने की चेष्टा कर रहा है।

लेकिन उस गांव के लोग थोड़े ईमानदार रहे होंगे। वे मंदिर नहीं जाते थे तो उन्होंने यह मान लिया था कि हम नहीं जाते हैं। उन्होंने यह मान लिया था कि मंदिर पुराना है और उसके नीचे जान गंवाई जा सकती है, जीवन नहीं पाया जा सकता।

लेकिन भारत के लोग इतने भी ईमानदार नहीं है कि वे यह मान लें कि धर्म पुराना हो गया। जान गंवाई जा सकती है उससे लेकिन जीवन नहीं पाया जा सकता। हम थोड़े ज्यादा बेईमान हैं। हम धर्म से सारा संबंध भी तोड़ लिए हैं। लेकिन हम ऊपर से यह भी दिखाने की चेष्टा करते हैं कि हम धर्म से संबंधित हैं।

हमारा कोई आंतरिक नाता धर्म से नहीं रह गया है। हमारे कोई प्राणों के [illegible] धर्म से नहीं हैं। लेकिन हम ऊपर से दिखावा जारी रखते हैं। हम ऊपर से यह प्रदर्शन जारी रखते हैं कि हम धर्म से संबंधित हैं, हम धार्मिक हैं। यह और भी खतरनाक बात है। यह अधर्म को छिपा लेने की सबसे आसान और कारगर तरकीब है।

अगर यह भी स्पष्ट हो जाए कि हम अधार्मिक हो गए हैं तो शायद इस अधर्म को बदलने के लिए कुछ किया जा सके। लेकिन हम अपने को यह धोखा दे रहे हैं। एक आत्मवंचना में हम जी रहे हैं कि हम धार्मिक हैं और यह आत्मवंचना रोज महंगी पड़ती जा रही है।

किसी न किसी को यह दुखद सत्य कहना पड़ेगा कि धर्म से हमारा कोई भी संबंध नहीं है। हम धार्मिक भी नहीं हैं और हम इतने हिम्मत के लोग भी नहीं हैं कि हम कह दें कि हम धार्मिक नहीं हैं। हम धार्मिक भी नहीं हैं और अधार्मिक होने की घोषणा कर सकें इतना साहस भी हमारे भीतर नहीं हैं। तो हम त्रिशंकु की भांति बीच में लटके रह गए हैं। न हमारा धर्म से कोई संबंध है। न हमारा विज्ञान से कोई संबंध है, न हमारा अध्यात्म से कोई संबंध है, न हमारा भौतिकवाद से कोई संबंध है। हम दोनों के बीच में लटके हुए रह गए हैं, हमारी कोई स्थिति नहीं है। हम कहां हैं यह कहना मुश्किल है क्योंकि हमने यह बात जानने की स्पष्ट कोशिश नहीं की है कि हम क्या हैं और कहां हैं। हम कुछ धोखों को बार-बार दोहराए चले जाते हैं और उन धोखों को दोहराने के लिए हमने तरकीबें ईजाद कर ली हैं, हमने डिवाइसेज बना ली हैं और उन तरकीबों के आधार पर हम विश्वास दिला लेते हैं कि हम धार्मिक हैं।

एक आदमी रोज सुबह मंदिर हो आता है और वह सोचता है कि मैं धर्म के भीतर जाकर वापस लौट आया हूं। मंदिर जाने से धर्म तक जाने का कोई भी संबंध नहीं है। मंदिर तक जाना एक बिलकुल भौतिक घटना है, शारीरिक घटना है। धर्म तक जाना एक आत्मिक घटना है। मंदिर तक जाना एक भौतिक यात्रा है, मंदिर तक जाना एक आध्यात्मिक यात्रा नहीं है। सच तो यह है कि जिनकी आध्यात्मिक यात्रा शुरू हो जाती है, उन्हें सारी पृथ्वी मंदिर दिखाई पड़ने लगती है। फिर उन्हें मंदिर को खोजना बहुत मुश्किल हो जाता है कि वह कहां है?

नानक ठहरे थे मदीना में और सो गए थे रात मंदिर की तरफ पैर कर के। पुजारियों ने आकर कहा था कि हटा लो ये पैर अपने, तुम पागल हो या कि नास्तिक हो या कि अधार्मिक हो, तुम पवित्र मंदिर की तरफ पैर किए हुए हो। नानक ने कहा था मैं खुद बहुत चिंता में हूं कि अपने पैर कहां करूं, तुम मेरे पैर वहां कर दो जहां परमात्मा न हो, जहां उसका पवित्र मंदिर न हो।

वे पुजारी ठगे हुए खड़े रहे गए। कोई रास्ता न था कि नानक के पैर कहां करें? क्योंकि जहां भी था, अगर था तो परमात्मा था। जहां भी जीवन है वहां प्रभु का मंदिर है। तो जिन्हें धर्म की यात्रा का थोड़ा सा भी अनुभव हो जाता है उन्हें तो सारा जगत मंदिर दिखाई पड़ने लगता है।

लेकिन जिन्हें इस यात्रा से कोई भी संबंध नहीं है वे दस कदम चल कर जमीन पर और एक मकान तक पहुंच जाते हैं और लौट आते हैं और सोचते हैं कि धार्मिक हो गए हैं। ऐसे हम धार्मिक होने का धोखा देते हैं अपने को।

एक आदमी रोज सुबह बैठ कर भगवान का नाम ले लेता है। निश्चित ही बहुत जल्दी में उसे नाम लेने पड़ते हैं क्योंकि और बहुत काम हैं और भगवान के लायक फुर्सत किसी के पास नहीं। बहुत जल्दी में, एक जरूरी काम है, वह भगवान के नाम लेकर निपटा देता है और चल पड़ता है। और कभी उसने अपने से नहीं पूछा कि जिस भगवान को मैं जानता नहीं उस भगवान के नाम का मुझे कैसे पता है? मैं क्या दोहरा रहा हूं? मैं भगवान का नाम दोहरा रहा हूं।

भगवान का स्मरण हो सकता है भगवान का नाम स्मरण नहीं हो सकता। क्योंकि भगवान का कोई नाम नहीं है। भगवान की प्यास हो सकती है, भगवान को पाने की तीव्र आकांक्षा हो सकती है लेकिन भगवान का नाम स्मरण नहीं हो सकता। क्योंकि नाम उसका कोई भी नहीं है।

एक आदमी बैठ कर राम-राम दोहरा रहा है, दूसरा आदमी जिनेंद्र-जिनेंद्र कर रहा है, तीसरा आदमी नमो बुद्धा और कोई चौथा आदमी कुछ और नाम ले रहा है। ये सब नाम हमारी अपनी ईजादें हैं, इन नामों से परमात्मा का क्या संबंध। परमात्मा का कोई नाम नहीं है। जब तक हम नाम दोहरा रहे हैं तब तक हमारा परमात्मा से कोई संबंध न होगा। हम आदमी के जगत के भीतर चल रहे हैं, हम मनुष्य की भाषा के भीतर यात्रा कर रहे हैं। और वहां जहां मनुष्य की सारी भाषा बंद हो जाती हैं, सारे शब्द खो जाते हैं, वहां हम किन नामों को लेकर जाएंगे?

सब नाम आदमी के दिए हुए हैं। सच तो यह है कि आदमी खुद भी बिना नाम के पैदा होता है। आदमी के नाम भी सब झूठे हैं, कामचलाऊ हैं, यूटेलिटेरीयन हैं। उनका सत्य से कोई भी संबंध नहीं। हम जब पैदा होते हैं तो बिना नाम के और जब हम मृत्यु में प्रविष्ट होते हैं तो फिर बिना नाम के। बीच में नाम का थोड़ा सा संबंध हम पैदा कर लेते हैं। और उस नाम को हम मान लेते हैं कि यह हमारा होना है। हमने अपने लिए नाम देकर एक धोखा पैदा किया है। वहां तक ठीक था। आदमी क्षमा किया जा सकता था। उसने भगवान को भी नाम दे दिए। और नाम देने से एक तरकीब मिल गई उसे कि उस नाम को दोहरा ले वह दस मिनट और सोचता है कि मैंने परमात्मा का स्मरण किया।

नाम से परमात्मा का कोई भी संबंध नहीं है। आप बैठ कर कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी दोहरा लें दस मिनट, दरवाजा, दरवाजा, दरवाजा दोहरा लें, पत्थर, पत्थर दोहरा लें, या आप कोई और नाम लेकर दोहरा लें। इस सबसे कोई भी धर्म का संबंध नहीं है।

शब्दों को दोहराने से धर्म का कोई संबंध नहीं है। धर्म का संबंध है निःशब्द से, धर्म का संबंध है मौन से, धर्म का संबंध है परिपूर्ण भीतर जब विचार शून्य हो जाते और शांत हो जाते तब, तब धर्म की यात्रा शुरू होती है। और एक आदमी बैठ कर रिपीट कर लेता है एक नाम को—राम-राम, राम-राम, दस-पांच दफा कहा और उसने निपटारा हो गया, उसने भगवान को स्मरण कर लिया।

तो हमने तरकीबें ईजाद कर ली हैं धार्मिक दिखाई पड़ने की बिना धार्मिक हुए। और उन तरकीबों में हम जी रहे हैं और सोच रहे हैं कि पूरा मुल्क धार्मिक हो गया है।

तिब्बत में वे और भी ज्यादा होशियार हैं। उन्होंने प्रेयर-व्हील बना रखा है, उन्होंने एक चक्र बना रखा है। उसको वे प्रार्थना-चक्र कहते हैं। उस चक्र के एक सौ आठ स्पोक हैं। एक-एक स्पोक पर एक-एक मंत्र लिखा हुआ है। सुबह से आदमी बैठ कर उस चक्र को घुमा देता है। जितना चक्का चक्कर लगा लेता है उतनी बार, उतनी बार एक सौ आठ में गुणा करके वह समझ लेता है कि इतनी बार मैंने मंत्र का पाठ किया।

वह प्रेयर-व्हील सुबह से आदमी दस दफे घुमा देता है, वह सौ दफे घूम जाता है, एक सौ आठ में सौ का गुणा कर लिया, इतनी बार मैंने भगवान का नाम लिया, अपने काम पर चला जाता है।

वे हमसे ज्यादा होशियार हैं। नाम लेने की झंझट भी उन्होंने छोड़ दी। अपना काम भी करते रहते हैं और चक्कर लगा देते हैं। हम भी यही कहते हैं। मन हमारा दूसरा काम करता रहता है और जबान हमारी राम-राम करती रहती है। जबान राम-राम कर रही हो कि एक प्रेयर-व्हील पर राम-राम लिखा हो, क्या फर्क पड़ता है!

भीतर मन हमारा कुछ और कर रहा है। अब तो और व्यवस्था हो गई, अभी तब तिब्बत में बिजली नहीं पहुंची थी, अब पहुंच गई होगी। तो अब तो उनको हाथ से भी घुमाने की जरूरत नहीं, बिजली से प्लग लगा देंगे चक्र घूमता रहेगा दिन भर और हजारों दफा राम का स्मरण करने का लाभ मिल जाएगा।

आदमी ने अपने को धोखा देने के लिए हजार तरह की तरकीबें ईजाद कर लीं हैं। उन्हीं तरकीबों को हम धर्म मानते रहे हैं। और इसीलिए हमारे मुल्क में यह दुविधा खड़ी हो गई है कि हम कहने को धार्मिक हैं और हम जैसा अधार्मिक आचरण आज पृथ्वी पर कहीं भी खोजने से नहीं मिल सकता। हमसे ज्यादा अनैतिक लोग, हमसे ज्यादा चरित्र में गिरे हुए लोग, हमसे ज्यादा ओछे, हम से ज्यादा संकीर्ण, हमसे ज्यादा क्षुद्रता में जीने वाले लोग और कहीं मिलने कठिन हैं, और साथ हमें धार्मिक होने का भी सुख है कि हम धार्मिक हैं। ये दोनों बातें एक साथ चल रही हैं। और कोई यह कहने को नहीं है कि ये दोनों बातें एक साथ कैसे चल सकती हैं।

यह ऐसा ही जैसे किसी घर में लोगों को खयाल हो कि हजारों दीये जल रहे हैं और घर अंधकार से भरा हो और जो भी आदमी निकलता हो दीवाल से टकरा जाता हो, दरवाजों से टकरा जाता हो। घर में पूरा अंधकार हो, हर आदमी टकराता हो, फिर भी घर के लोग यह विश्वास करते हैं कि अंधेरा कहां है दीये जल रहे हैं। और रोज हर आदमी टकरा कर गिरता हो। फिर भी घर के लोग मानते चले जाते हों कि दीये जल रहे हैं, रोशनी है, अंधेरा कहां है?

हमारी हालत ऐसी कंट्राडिक्ट्री, ऐसे विरोधाभास से भरी हुई है। जीवन हमें रोज बताता है कि हम अधार्मिक हैं और हमने जो तरकीबें ईजाद कर ली हैं वे रोज हमें बताती हैं कि हम धार्मिक हैं। कि तो देखो दुर्गा उत्सव आ गया और सारा मुल्क धार्मिक हुआ जा रहा है, कि देखो गणेश उत्सव आ गया, कि देखो महावीर का जन्मदिन आ गया और सारा मुल्क मंदिरों की तरफ चला जा रहा है, पूजा चल रही है, प्रार्थना चल रही है। अगर इस सबको कोई आकाश से देखता होगा तो कहता होगा कितने धार्मिक लोग हैं। और कोई हमारे भीतर जाकर देखे, कोई हमारे आचरण को देखे, कोई हमारे व्यक्तित्व को देखे तो हैरान हो जाएगा।

शायद मनुष्य-जाति के इतिहास में इतना धोखा पैदा करने में कोई कौम कभी सफल नहीं हो सकी थी जिसमें हम सफल हो गए हैं। यह अदभुत बात है। यह कैसे संभव हो गया? इसका जिम्मा आप पर है ऐसा मैं नहीं कहता हूं। इसका जिम्मा हमारे पूरे इतिहास पर है। यह आज की पीढ़ी ऐसी हो गई है ऐसा मैं नहीं कहता हूं। आज तक

हमने धर्म के प्रति जो धारणा बनाई है उसमें बुनियादी भूल है। और इसलिए हम बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने के खयाल से भर गए हैं। उन भूलों के कुछ सूत्रों पर मैं आपसे बात करना चाहता हूं। ताकि यह दिखाई पड़ सके कि हम धार्मिक क्यों नहीं हैं। और यह भी दिखाई पड़ सके कि हम धार्मिक कैसे हो सकते हैं। इसके पहले की वे चार सूत्र में आपसे कहूं, यह भी आपसे कह देना चाहता हूं कि जब तक कोई जाति, कोई समाज, कोई देश, कोई मनुष्य धार्मिक नहीं हो जाता तब तक उसे जीवन के पूरे आनंद का, पूरी शांति का, पूरी कृतार्थता का कोई भी अनुभव नहीं होता है।

जैसे विज्ञान है बाहर के जगत के विकास के लिए, और बिना विज्ञान के जैसे दीन-हीन हो जाता है समाज, दरिद्र हो जाता है, दुखित और पीड़ित और बीमार हो जाता है। विज्ञान न हो आज तो बाहर के जगत में हम दीन-हीन पशुओं की भांति हो जाएंगे। वैसे ही भीतर के जगत का विज्ञान धर्म है और जब भीतर का धर्म खो जाता है तो भीतर एक दीनता आ जाती है, हीनता आ जाती है, भीतर एक अंधेरा छा जाता है। और भीतर का अंधेरा बाहर के अंधेरे से ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि बाहर का अंधेरा दो पैसे के दीये को खरीद कर मिटाया जा सकता है। लेकिन भीतर का अंधेरा तो तभी मिटता है जब आत्मा का दीया जल जाए और वह दीया कहीं बाजार में खरीदने से नहीं मिलता। उस दीये को जलाने के लिए तो श्रम करना पड़ता है, संकल्प करना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है। उस दीये को जलाने के लिए तो जीवन को एक नई दिशा में गतिमान करना पड़ता है।

लेकिन इतना निश्चित है कि आज तक पृथ्वी पर सबसे ज्यादा प्रसन्न और आनंदित लोग वे थे जो धार्मिक थे। उन लोगों ने ही इस पृथ्वी पर स्वर्ग को अनुभव किया। उन लोगों ने ही इस जीवन के पूरे आनंद को, कृतार्थता को अनुभव किया। उनके जीवन में ही अमृत की वर्षा हुई है जो धार्मिक थे। जो अधार्मिक हैं वे दुख में, पीड़ा में और नर्क में जीते हैं। धार्मिक हुए बिना कोई मार्ग नहीं है। लेकिन धार्मिक होने के लिए सबसे बड़ी बाधा इस बात से पड़ गई है कि हम इस बात को मान कर बैठ गए हैं कि हम धार्मिक हैं।

फिर अब और कुछ करने की कोई जरूरत नहीं रह गई। एक भिखारी मान लेता है कि मैं सम्राट हूं। फिर बात खत्म हो गई। फिर अब उसे सम्राट होने के लिए कोई प्रयत्न करने का कोई सवाल न रहा। सस्ती तरकीब निकाली उसने, सम्राट हो गया कल्पना करके। असली में सम्राट होने के लिए श्रम करना पड़ता, यात्रा करनी पड़ती, संघर्ष करना पड़ता। उसने सपना देख लिया सम्राट होने का। लेकिन उस भिखारी को हम पागल कहेंगे। क्योंकि पागल का यही लक्षण है कि वह जो नहीं है वह अपने को मान लेता है।

मैंने सुना है एक पागलखाने को नेहरू निरीक्षण करने गए थे। उस पागलखाने में उन्होंने जाकर पूछा कि कभी कोई यहां ठीक होता है, स्वस्थ होता है, रोग से मुक्त होता है। तो पागलखाने के अधिकारियों ने कहा कि निश्चित ही अक्सर लोग ठीक होकर चले जाते हैं। अभी एक आदमी ठीक हुआ है और हम उसे तीन दिन पहले छोड़ने को थे लेकिन हमने रोक रखा कि आप के हाथ से ही उसे मुक्ति दिलाएंगे।

उस पागल को लाया गया जो ठीक हो गया था। उसे नेहरू से मिलाया गया। नेहरू ने उसकी शुभकामनाएं की कि तुम स्वस्थ हो गए, बहुत अच्छा। चलते-चलते उस आदमी ने पूछा कि लेकिन मैं आपका नाम नहीं पूछ पाया कि आप कौन हैं? नेहरू ने कहा, मेरा नाम जवाहरलाल नेहरू है। वह आदमी हंसने लगा उसने कहा, आप घबड़ाइए मत, कुछ दिन आप भी इस जेल में रह जाएंगे तो ठीक हो जाएंगे। पहले मुझे भी यही खयाल था

की मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। तीन साल पहले जब आया था। तो मुझको भी यही भ्रम था। यही भ्रम मुझको भी हो गया था कि मैं जवाहरलाल हूं लेकिन तीन साल में इन सब अधिकारियों की कृपा से मैं बिलकुल ठीक हो गया हूं। मेरा यह भ्रम मिट गया। आप भी घबड़ाइए मत, आप भी दो-तीन साल रह जाएंगे तो बिलकुल ठीक हो सकते हैं।

आदमी के पागलपन का लक्षण यह है कि वह जो है नहीं समझ पाता और जो नहीं है उसके साथ तादात्म्य कर लेता है कि वह मैं हूं।

भारत को मैं धार्मिक अर्थों में एक विक्षिप्त स्थिति में समझता हूं, मैडनेस की स्थिति में समझता हूं। हम धार्मिक नहीं हैं और हम अपने को धार्मिक समझ रहे हैं। लेकिन यह दुर्घटना कैसे संभव हो सकी? यह दुर्घटना कैसे फलित हुई? यह कैसे हो सका? उसके होने के कुछ सूत्रों पर आपसे बात करनी है।

पहला सूत्रः भारत धार्मिक नहीं हो सका क्योंकि भारत में धर्म की एक धारणा विकसित की जो पारलौकिक थी, जो मृत्यु के बाद के जीवन के संबंध में विचार करती थी। जो इस जीवन के संबंध में विचार नहीं करती थी।

हमारे हाथ में यह जीवन है, मृत्यु के बाद का जीवन अभी हमारे हाथ में नहीं है। होगा तो मरने के बाद होगा। भारत का धर्म जो है वह मरने के बाद के लिए तो व्यवस्था करता है लेकिन जीवन जो अभी हम जी रहे हैं पृथ्वी पर, उसके लिए हमने कोई सुव्यवस्थित व्यवस्था नहीं की। स्वाभाविक परिणाम हुआ, परिणाम यह हुआ कि यह जीवन हमारा अधार्मिक होता चला गया। और उस जीवन की व्यवस्था के लिए जो कुछ हम कर सकते थे थोड़ा-बहुत वह हम करते रहे। कभी दान करते रहे, कभी तीर्थयात्रा करते रहे, कभी गुरु के, साधु के चरणों की सेवा करते रहे। और फिर हमने यह विश्वास किया कि जिंदगी बीत जाने दो जब बूढ़े हो जाएंगे तब धर्म की चिंता कर लेंगे।

अगर कोई जवान आदमी उत्सुक होता है धर्म में, तो घर के बड़े-बूढ़े कहते हैं अभी तुम्हारी उम्र नहीं कि तुम धर्म की बातें करो। अभी तुम्हारी उम्र नहीं, अभी खेलने-खाने के, मजे-मौज के दिन हैं, यह तो बूढ़ों की बातें हैं जब आदमी बूढ़ा हो जाए तब धर्म की बातें करता है। मंदिरों में जाकर देखें, मस्जिदों में जाकर देखें, वहां वृद्ध लोग दिखाई पड़ेंगे, वहां जवान आदमी शायद ही कभी दिखाई पड़े। क्यों? हमने यह धारणा बना ली कि धर्म का संबंध है उस लोक से, मृत्यु के बाद जो जीवन है उससे। तो जब हम मरने के करीब पहुंचेंगे तब विचार करेंगे।

फिर जो बहुत होशियार थे उन्होंने कहा कि मरते क्षण में अगर एक दफे राम का नाम भी ले लो, भगवान का स्मरण कर लो, गीता सुन लो, गायत्री सुन लो, नमोकार मंत्र कान में डाल दो। आदमी पार हो जाता है तो जीवन भर परेशान होने की जरूरत क्या। मरते-मरते आदमी के काम में मंत्र फूंक देते हैं और निपटारा हो जाता आदमी धार्मिक हो जाता।

यहां तक बेईमान लोगों ने कहानियां गढ़ ली हैं कि एक आदमी मर रहा था, उसके लड़के का नाम नारायण था। मरते वक्त उसने अपने लड़के को बुलाया कि नारायण तू कहां हैं। और भगवान धोखे में आ गए। वे समझे कि मुझे बुलाता है और उसको स्वर्ग भेज दिया।

ऐसे बेईमान लोग, ऐसे धोखेबाज लोग, जिन्होंने ऐसी कहानियां गढ़ी होंगी, ऐसे शास्त्र रचे होंगे, उन्होंने इस मुल्क को अधार्मिक होने की सारी व्यवस्था कर दी।

यह देश धार्मिक नहीं हो पाया पांच हजार वर्षों के प्रयत्न के बाद भी। क्योंकि हमने जीवन से धर्म का संबंध नहीं जोड़ा, मृत्यु से धर्म का संबंध जोड़ा। तो ठीक है, मरने के बाद, वह बात इतने दूर है कि जो अभी जिंदा हैं उन्हें उसका खयाल भी नहीं हो सकता।

बच्चों को कैसे उसका खयाल होगा, अभी बच्चों को मृत्यु का कोई सवाल नहीं है, जवानों को मृत्यु का कोई सवाल नहीं है। सिर्फ वे लोग जो मृत्यु के करीब पहुंचने लगे और मृत्यु की छाया जिन पर पड़ने लगी, उन वृद्धजनों के लिए भर धर्म का विचार जरूरी था। और स्मरण रहे कि वृद्धों से जीवन नहीं बनता; जीवन बच्चों और जवानों से बनता है।

जो जीवन से विदा होने लगे वे वृद्ध हैं। तो वृद्ध अगर धार्मिक भी हो जाएं तो जीवन धार्मिक नहीं होगा क्योंकि वृद्ध धार्मिक होते-होते विदा के स्थान पर पहुंच जाएंगे। वे विदा हो जाएंगे।

जिनसे जीवन बनना है, जो जीवन के घटक हैं, उन छोटे बच्चों और जवानों से धर्म का क्या संबंध? उनके लिए धर्म ने कोई भी व्यवस्था नहीं की कि वे कैसे धार्मिक हों? फिर जब पारलौकिक बात हो गई धर्म की, तो कवि लोगों के लिए चिंता रही उसकी। क्योंकि परलोक इतनी दूर है कि उसकी चिंता सामान्य मनुष्य के लिए करनी कठिन है।

कुछ लोग जो अतिलोभी हैं, इतने लोभी हैं कि वे इस जीवन का भी इंतजाम करना चाहते हैं और मरने के बाद का भी इंतजाम करना चाहते हैं। जिनकी ग्रीड, जिनका लोभ इतना ज्यादा है, वे लोग भर धार्मिक होने का विचार करते हैं। जिनका लोभ थोड़ा कम है, वे फिक्र नहीं करते कि मरने के बाद जो होगा वह देखा जाएगा। तो अजीब बात हो गई! हमारे बीच जो सबसे ज्यादा लोभी लोग हैं, वे लोग संन्यासी हो जाते हैं। क्योंकि उन्हें इसी जीवन का इंतजाम नहीं करना, उन्हें अगले जीवन का इंतजाम भी करना है। लेकिन जो सामान्य लोभ के लोग हैं, वे कहते हैं, ठीक है, मकान बन जाए, धन हो जाए, फिर देखा जाएगा। मौत जब आएगी तब देखेंगे। अभी इतना मौत का विचार करने की जरूरत नहीं।

और यह स्वस्थ लक्षण है। यह कोई अस्वस्थ लक्षण नहीं है। जो आदमी जिंदा रहते हुए मृत्यु का बहुत चिंतन करता है वह अस्वस्थ है, वह बीमार है, वह रुग्ण है। उस आदमी के जीवन-ऊर्जा ने कहीं कोई कमी है, वह जीने की कला नहीं जानता है इसलिए मृत्यु के बाबत सोचना शुरू कर दिया।

स्वामी राम जापान गए। जिस जहाज पर वे थे एक नब्बे वर्ष का जर्मन बूढ़ा चीनी भाषा सीख रहा था। अब चीनी भाषा सीखनी बहुत कठिन बात है, शायद मनुष्य की जितनी भाषाएं हैं उन में सबसे ज्यादा कठिन बात। क्योंकि चीनी भाषा के कोई वर्णाक्षर नहीं होते, कोई क ख ग नहीं होता, वह तो चित्रों की भाषा है।

इतने चित्रों को सीखने नब्बे वर्ष की उम्र में, अंदाजन किसी भी आदमी को दस वर्ष लग जाते हैं ठीक से चीनी भाषा सीखने में। तो नब्बे वर्ष का बूढ़ा सीख रहा है सुबह से शाम तक। यह कब सीख पाएगा? सीखने के पहले इसके मर जाने की संभावना है। और अगर हम यह भी मान लें बहुत आशावादी हों कि यह जी जाएगा दस-पंद्रह साल, तो भी उस भाषा का उपयोग कब करेगा?

जिस चीज को दस साल सीखने में लग जाएं, अगर दस-पच्चीस वर्ष उसके उपयोग के लिए न मिले तो वह सीखना व्यर्थ है। लेकिन वह बूढ़ा सुबह से शाम तक डेक पर बैठा हुआ और सीख रहा है।

रामतीर्थ के बर्दाश्त के बाहर हो गया। उन्होंने जाकर तीसरे दिन उससे कहा कि क्षमा करें? मैं आपको बाधा देना चाहता हूं एक बात मुझे पूछनी है। आप यह क्या कर रहे हैं? यह चीनी भाषा आप कब सीख पाएंगे? आपकी उम्र तो नब्बे वर्ष हुई! उस बूढ़े आदमी ने रामतीर्थ की तरफ देखा और उसने कहा कि जब तक मैं जिंदा हूं तब तक जिंदा हूं और जब तक में जिंदा हूं तब तक मर नहीं गया हूं, मरने का चिंतन करके मैं मरने के पहले नहीं मरना चाहता हूं।

और अगर मरने का हम चिंतन करें कि कल मैं मर जाऊंगा तो यह तो मुझे जन्म के पहले दिन से ही विचार करना पड़ता कि कल मैं मर सकता हूं, कभी भी मैं मर सकता हूं। तो फिर मैं जी भी नहीं पाता। लेकिन नब्बे साल मैं जीया हूं। और जब तक मैं जी रहा हूं तब तक सीखूंगा, ज्यादा से ज्यादा जानूंगा, ज्यादा से ज्यादा जीऊंगा। क्योंकि जब तक जी रहा हूं तब तक एक-एक क्षण का पूरा उपभोग करना जरूरी है। ताकि मेरा पूरा आत्म-विकास हो। और उसने रामतीर्थ से पूछा कि आपकी उम्र क्या है? रामतीर्थ की उम्र तो केवल बत्तीस वर्ष थी। वे बहुत झेंपे होंगे मन में और कहा कि सिर्फ बत्तीस वर्ष!

तो उस बूढ़े आदमी ने जो कहा था वह पूरे भारत को सुन लेना चाहिए। उस बूढ़े आदमी ने कहा था तुम्हें देख कर मैं समझता हूं कि तुम्हारी पूरी कौम बूढ़ी क्यों हो गई है! तुम्हारे पूरे कौम से यौवन, शक्ति, ऊर्जा क्यों चली गई है! तुम क्यों मुर्दे की तरह जी रहे हो पृथ्वी पर! क्योंकि तुम मृत्यु के संबंध में अत्यधिक विचार करते हो और जीवन के संबंध में जरा भी नहीं!

शास्त्र भरे पड़े हैं, जो नर्क में क्या है और कहां, पहला नर्क कहां है और दूसरा नर्क कहां है, तीसरा कहां है, सातवां कहां है, उस सबके ब्योरेवार व्यवस्था बताते हैं। पूरे नक्शे बनाए हैं, स्वर्ग कहां है। सात स्वर्ग है कि कितने स्वर्ग हैं। उन सबका हिसाब दिया हुआ है। नर्क और स्वर्ग की पूरी ज्याग्राफी हमने खोज ली, लेकिन पृथ्वी की ज्याग्राफी खोजने के लिए पश्चिम के लोगों का हमें इंतजार करना पड़ा, वह हम नहीं खोज पाए। क्योंकि पृथ्वी पर हम जीते हैं, उसके भूगोल की जानकारी की हमने कोई फिक्र न की। लेकिन जिन स्वर्गों और नर्कों का हमें कोई संबंध नहीं, उनके हमने संबंध में पूरी जानकारी कर ली है! हमने इतने डिटेल्स में व्यवस्था की है कि अगर कोई पढ़ेगा तो यह नहीं कह सकता कि यह कोई काल्पनिक लोगों ने लिखा होगा। एक-एक इंच हमने इंतजाम कर दिया है कि वहां कैसा नर्क है, कितनी आग जलती है, कितने कढाएं जलते हैं, कितने राक्षस हैं और किस तरह लोगों को जलाते हैं और क्या करते हैं। स्वर्ग में क्या है वह हमने इंतजाम कर दिया। लेकिन इस जमीन पर क्या है? इस जमीन की हमने कोई फिक्र नहीं की क्योंकि यह जमीन तो एक विश्रामगृह है। मर जाना है यहां से तो जल्दी। इसकी चिंता करने की क्या जरूरत है। जीवन अधार्मिक है क्योंकि जीवन की चिंता हमने नहीं की। जीवन धार्मिक नहीं हो सकता जब तक धर्म इस जीवन के संबंध में विचार करे, इस जीवन को व्यवस्था दे, इस जीवन को वैज्ञानिक बनाए, जब तक यह नहीं होगा तब तक जीवन धार्मिक नहीं हो सकता।

पहली बात है, परलोक के संबंध में अतिचिंतन ने भारत को अधार्मिक होने में सहायता दी, धार्मिक होने में जरा भी नहीं। सोचा शायद हमने यही था कि परलोक का यह भय लोगों को धार्मिक बना देगा। सोचा शायद हमने यही था कि परलोक की चिंता लोगों को अधार्मिक नहीं होने देगी। लेकिन हुआ उलटा, हुआ यह कि परलोक इतना दूर मालूम पड़ा कि वह हमारा कोई कनफर्म नहीं है, वह हमारा कोई उससे संबंध, नाता नहीं है।

हमारा नाता है जीवन से और इस जीवन को कैसे जीया जाए, इस जीवन की कला क्या है, वह सिखाने वाला हमें कोई भी न था। धर्म हमें सिखाता था जीवन कैसे छोड़ा जाए! जीवन कैसे जीया जाए यह बताने वाला धर्म न था। धर्म बताता जीवन कैसे छोड़ा जाए, जीवन कैसे त्यागा जाए, जीवन से कैसे भागा जाए! इसकी सारी नियम, क से लेकर आखिर तक हमने सारे नियम इससे खोज लिए कि जीवन को छोड़ने की पद्धति क्या हैं। लेकिन जीवन को जीने की पद्धति क्या है? उसके संबंध में धर्म मौन है। परिणाम स्वाभाविक था।

जीवन को छोड़ने वाली कौम कैसे धार्मिक हो सकती है। जीना तो है जीवन को। कितने लोग भागेंगे। और जो भाग कर भी जाएंगे वे जाते कहां हैं, संन्यासी भाग कर, साधु भाग कर जाता कहां है, भागता कहां है। सिर्फ धोखा पैदा होता है भागने का। सिर्फ श्रम से भाग जाता है, समाज से भाग जाता है लेकिन समाज के ऊपर पूरे समय निर्भर रहता है। समाज से रोटी पाता है, इज्जत पाता है, समाज से कपड़े पाता है, समाज के बीच जीता है, समाज पर निर्भर होता है। सिर्फ एक फर्क हो जाता है, वह फर्क यह है कि वह विशुद्ध रूप से शोषक हो जाता है, श्रमिक नहीं रह जाता। वह कोई श्रम नहीं करता, सिर्फ शोषण करता है।

कितने लोग संन्यासी हो सकते हैं? अगर पूरा समाज भागने वाला समाज हो जाए तो पचास वर्ष में उस देश में एक भी जीवित प्राणी नहीं बचे। पचास वर्षों में सारे लोग समाप्त हो जाएंगे। लेकिन पचास वर्ष भी लंबा समय है, अगर सारे लोग संन्यासी हो जाएं, तो पंद्रह दिन भी बचना बहुत मुश्किल है। क्योंकि किसका शोषण करिएगा, किसके आधार पर जीएगा।

भागने वाला धर्म, एस्केपिस्ट रिलीजन, कभी भी जिंदगी को बदलने वाला धर्म नहीं हो सकता। थोड़े से लोग भागेंगे और जो भाग जाएंगे वे उन पर निर्भर रहेंगे जो भागे नहीं हैं। अब यह बड़े चमत्कार की बात है कि संन्यासी गृहस्थ पर निर्भर है और गृहस्थ को नीचा समझता है अपने से, जिस पर निर्भर है उसको नीचा समझता है। उसको चौबीस घंटे गालियां देता है, उसके पाप का व्याख्यान करता है, उसको नरक जाने की योजना बनाता है और निर्भर उस पर है। और अगर ये गृहस्थ सब नरक जाएंगे तो इनकी रोटी खाने वाले, इनके कपड़े पहनने वाले संन्यासी इनके पीछे नरक नहीं जाएंगे तो और कहां जा सकते हैं! कहीं जाने का कोई उपाय नहीं हो सकता। लेकिन भागने की एक दृष्टि जब हमने स्पष्ट कर ली कि जो भागता है वह धार्मिक है। तो जो जीता है वह तो अधार्मिक है। उसको धार्मिक ढंग से जीने का, सोचने का कोई सवाल न रहा। वह तो अधार्मिक है क्योंकि जीता है, भागता जो है वह धार्मिक है। तो जीने वाले को धार्मिक होने का कोई विधान, कोई विधि, कोई टेक्नीक, कोई शिल्प हम नहीं खोज पाए।

मेरा कहना है भारत धार्मिक हो सकता है, अगर हम धर्म को जीवनगत, उसे लाइफ अफरमेटिव, जीवन की स्वीकृति का धर्म बनाए, जीवन के निषेध का नहीं।

दूसरी बात, धर्म ने एक अतिशय से काम किया। तो वह अति एक वीर संकेत प्रतिक्रिया थी। सारी दुनिया में ऐसे लोग थे जो मानते थे कि मनुष्य केवल शरीर है। शरीर के अतिरिक्त कोई आत्मा नहीं है। धर्म ने ठीक दूसरी अति, दूसरी एक्सट्रीम पकड़ ली और कहा कि आदमी सिर्फ आत्मा है, शरीर तो माया है, शरीर तो झूठ है। ये दोनों ही बातें झूठ हैं। न तो आदमी केवल शरीर है, न आदमी केवल आत्मा है। ये दोनों बातें समान रूप से झूठ हैं।

एक झूठ के विरोध में दूसरा झूठ खड़ा कर लिया। पश्चिम एक झूठ बोलता रहा है कि आदमी सिर्फ शरीर है और भारत एक झूठ बोल रहा है कि आदमी सिर्फ आत्मा है। ये दोनों सरासर झूठ हैं। पश्चिम अपने झूठ के कारण अधार्मिक हो गया, क्योंकि सिर्फ शरीर को मानने वाले लोग, उनके लिए धर्म का कोई सवाल न रहा। भारत अपने झूठ के कारण अधार्मिक हो गया है। क्योंकि सिर्फ आत्मा को मानने वाले लोग। शरीर का जो जीवन है उसकी तरफ आंख बंद कर लिए हैं। जो माया है उसका विचार भी क्या करना। जो है ही नहीं उसके संबंध में सोचना भी क्या। जब कि आदमी की जिंदगी शरीर और आत्मा का जोड़ है। वह शरीर और आत्मा का एक सम्मिलित संगीत है।

अगर हम आदमी को धार्मिक बनाना चाहते हैं तो उसके शरीर को भी स्वीकार करना होगा, उसकी आत्मा को भी। निश्चित ही उसके शरीर को बिना स्वीकार किए हम उसकी आत्मा की खोज में भी एक इंच आगे नहीं बढ़ सकते हैं। शरीर तो मिल ही जाए बिना आत्मा का कहीं लेकिन आत्मा बिना शरीर के नहीं मिलती।

शरीर आधार है, उस आधार पर ही आत्मा अभिव्यक्त होती है। वह मीडियम है, वह माध्यम है। इस माध्यम को इनकार जिन लोगों ने कर दिया, उन लोगों ने इस माध्यम को बदलने का, इस माध्यम को सुंदर बनाने का, इस माध्यम को ज्यादा सत्य के निकट ले जाने का सारा उपाय छोड़ दिए हैं।

शरीर का एक विरोध पैदा हुआ, एक दुश्मनी पैदा हुई, हम शरीर के शत्रु हो गए। और शरीर को जितना सताने में हम सफल सके हम समझने लगे कि उतने हम धार्मिक हैं। हमारी सारी तपश्चर्या शरीर को सताने की अनेक-अनेक योजनाओं के अतिरिक्त और क्या है!

जिसे हम तप कहते हैं, जिसे हम त्याग कहते हैं, वह शरीर की शत्रुता के अतिरिक्त और क्या है! धीरे-धीरे यह खयाल पैदा हो गया कि जो आदमी शरीर को जितना तोड़ता है, जितना नष्ट करता है, जितना दमन करता है, उतना ही आध्यात्मिक है।

शरीर को तोड़ने और नष्ट करने वाला आदमी विक्षिप्त तो हो सकता है आध्यात्मिक नहीं। क्योंकि आत्मा का भी जो अनुभव है उसके लिए एक स्वस्थ, शांत, और सुखी शरीर की आवश्यकता है।

उस आत्मा के अनुभव के लिए भी एक ऐसे शरीर की आवश्यकता है जिसे भूला जा सके। क्या आपको पता है, दुखी शरीर को कभी भी नहीं भूला जा सकता।

पैर में दर्द होता है तो पैर का पता चलता है, दर्द नहीं होता तो पैर का कोई पता नहीं चलता। सिर में दर्द होता है तो सिर का पता चलता है, दर्द नहीं होता तो सिर का कोई पता नहीं चलता। स्वास्थ्य की परिभाषा ही यही है कि जिस आदमी को अपने पूरे शरीर का कोई पता नहीं चलता वह आदमी स्वस्थ है, वह आदमी हेल्दी है। जिस आदमी को शरीर के किसी भी अंग का बोध होता है, पता चलता है, वह आदमी उस अंग में बीमार है।

शरीर स्वस्थ हो तो शरीर को भूला जा सकता है और शरीर भूला जा सके तो आत्मा की खोज की जा सकती है। लेकिन हमने जो व्यवस्था ईजाद की उसमें शरीर को कष्ट देने को हमने अध्यात्म का मार्ग समझा। शरीर को कष्ट देने वाले लोग शरीर को कभी भी नहीं भूल पाते। कष्ट देकर शरीर को भूला नहीं जा सकता, कष्ट देने से शरीर और याद आता है। आपने ठीक से खाना खा लिया है तो पेट की आपको कोई याद न आएगी और आप उपवासे रह गए हैं तो पेट की चौबीस घंटे याद आती रहेगी। पेट पीड़ा में है, पीड़ा खबर दे रही है।

जीवन के नियम का अंग है यह कि शरीर अगर कहीं कष्ट में हो तो आपको खबर दे, क्योंकि अगर वह खबर न देगा तो उसको कष्ट को दूर करने का फिर कोई मार्ग न रहा।

संस्कृत में तो वेदना के दो अर्थ होते हैं। वेदना का अर्थ दुख भी होता है, वेदना का अर्थ बोध भी होता है। इसलिए वेद जिस शब्द से बना, वेदना उसी से बनी है। वेदना का मतलब हैः दुख और वेदना का अर्थ हैः बोध। दुख का बोध होता ही है। तो जितना आदमी अपने शरीर को कष्ट देगा उतना शरीर का ज्यादा बोध होगा। शरीर को कष्ट देने वाले लोग एकदम शरीर को ही अनुभव करते रहते हैं। आत्मा का उन्हें कभी कुछ पता नहीं चलता।

लेकिन हमने हजारों साल में एक धारा विकसित की, शरीर की शत्रुता की और शरीर के शत्रु हमें आध्यात्मिक मालूम होने लगे। तो जो आदमी अपने शरीर को कष्ट देने में जितना अग्रणी हो सकता था, कांटों पर लेटे जाए कोई आदमी तो वह महात्यागी मालूम होने लगा। शरीर को कोड़े मारे कोई आदमी और लहूलुहान हो जाए।

यूरोप में कोड़े मारने वालों का एक संप्रदाय था। उस संप्रदाय के साधु सुबह से उठ कर कोड़े मारने शुरू करते। और जैसे हिंदुस्तान में उपवास करने वाले साधु हैं जिनकी पैड छपती है कि फलां साधु ने चालीस दिन का उपवास किया, फलां साधु ने सौ दिन का उपवास किया। वैसे यूरोप में वे जो कोड़े मारने वाले साधु थे उनकी भी फेहरिस्त छपती थी कि फलां साधु सुबह एक सौ एक कोड़े मारता है, फलां साधु दो सौ एक कोड़े मारता है। जो जितने ज्यादा कोड़े मारता था वह उतना बड़ा साधु था।

आंखें फोड़ लेने वाले लोग हुए, कान फोड़ लेने वाले लोग हुए, जननेंद्रिय काट लेने वाले लोग हुए। शरीर को सब तरह से नष्ट कर देने वाले लोग हुए।

यूरोप में एक वर्ग था। जो अपने पैर में जूता पहनता था तो जूतों में नीचे कीलें लगा लेता था ताकि पैर में कीलें चुभते रहें। वे महात्यागी समझे जाते थे। लोग उनके चरण छूते थे कि ये महात्यागी हैं। आपका संन्यासी उतना त्यागी नहीं है, बिना जूते के चलता है सड़क पर। वह जूता भी पहनता था, नीचे कीलें भी लगाता था। तो पैर में घाव हमेशा हरे होने चाहिए, खून गिरता रहना चाहिए। कमर में पट्टे बांधता था, पट्टों में कीलें छिपे रहते थे, जो कमर में अंदर छिपे रहें और घाव हमेशा बने रहें।

लोग उनके पट्टे खोल-खोल कर देखते थे कि कितने घाव हैं। कहते थे कि कितने बड़े महान व्यक्ति हैं आप। सारी दुनिया में शरीर के दुश्मनों ने धर्म के ऊपर कब्जा कर लिया है। ये आत्मवादी नहीं हैं। क्योंकि आत्मवादी को शरीर से कोई शत्रुता नहीं है। आत्मवादी के लिए शरीर एक व्हीकल है, शरीर एक सीढ़ी है, शरीर एक माध्यम है, उसे तोड़ने का कोई सवाल नहीं।

एक आदमी बैलगाड़ी पर बैठ कर जा रहा था। बैलगाड़ी को चोट पहुंचाने से क्या मतलब है? हम शरीर पर यात्रा कर रहे हैं, शरीर एक बैलगाड़ी है। उसे नष्ट करने से क्या प्रयोजन? वह जितना स्वस्थ होगा, जितना शांत होगा, उतना ही उसे भूला जा सकता है।

तो दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं, भारत का धर्म चूंकि शरीर को इनकार किया इसलिए अधिकतम लोग अधार्मिक रह गए। वे शरीर को इतना इनकार नहीं कर सके। तो उन्होंने एक काम किया जो शरीर को इनकार करते थे उनकी पूजा की लेकिन खुद अधार्मिक होने को राजी रह गए। क्योंकि शरीर को बिना चोट पहुंचाए

धार्मिक होने का कोई उपाय न था। अगर भारत को धार्मिक बनाना है तो एक स्वस्थ शरीर की विचारणा धर्म के साथ संयुक्त करनी जरूरी है। और यह ध्यान दिलाना जरूरी है कि जो लोग शरीर को चोट पहुंचाते हैं वे न्यूरोटिक हैं, वे विक्षिप्त हैं, वे मानसिक रूप से बीमार हैं। वे आदमी स्वस्थ नहीं हैं। और स्वस्थ भी नहीं है, आध्यात्मिक तो बिलकुल नहीं है। इन आदमियों की मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। लेकिन ये हमारे लिए आध्यात्मिक थे। तो यह अध्यात्म की गलत धारणा हमें धार्मिक नहीं होने दी।

तीसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं, अब तक आज तक की हमारी सारी विचारणा इस बात को मान कर चलती रही है कि धर्म एक विश्वास है, बिलीफ, फेथ। विश्वास कर लेना है और धार्मिक हो जाना है। यह बात बिलकुल ही गलत है। कोई आदमी विश्वास करने से धार्मिक नहीं हो सकता। क्योंकि विश्वास सदा झूठा है। विश्वास का मतलब है जो मैं नहीं जानता उसको मान लेना। झूठ का और क्या अर्थ हो सकता है। जो मैं नहीं जानता उसको मान लूं।

धार्मिक आदमी जो नहीं जानता उसे मानने को राजी नहीं होगा। वह कहेगा कि मैं खोज करूंगा, मैं समझूंगा, मैं विचार करूंगा, मैं प्रयोग करूंगा, मैं अनुभव करूंगा, जिस दिन मुझे पता चलेगा मैं मान लूंगा, लेकिन जब तक मैं नहीं जानता हूं मैं कैसे मान सकता हूं।

लेकिन हम जिन बातों को बिलकुल नहीं जानते उनको मान कर बैठ गए हैं। और इनको मान कर बैठ जाने के कारण हमारी इंक्वायरी, हमारी खोज, हमारी जिज्ञासा बंद हो गई। विश्वास ने भारत के धर्म के प्राण ले लिए। जिज्ञासा चाहिए, विश्वास नहीं। विश्वास खतरनाक है, पायज़नस है। क्योंकि विश्वास जिज्ञासा की हत्या कर देता है। और हम छोटे-छोटे बच्चों को धर्म का विश्वास देने की कोशिश करते हैं। सिखाने की कोशिश करते हैं कि ईश्वर है, आत्मा है, परलोक है, मृत्यु है, यह है, वह है, पुनर्जन्म है, कर्म है, यह हम सब सिखाने की कोशिश कर रहे हैं। हम जबरदस्ती इस बच्चे को सिखा देते हैं जिस बच्चे को इन बातों का कोई भी पता नहीं है। उसके भीतर प्राणों के प्राण कह रहे होंगे, मुझे तो कुछ पता ही नहीं।

लेकिन अगर वह कहे कि मुझे पता नहीं, तो हम कहेंगे तू नास्तिक है। जिनको पता है वे कहते हैं कि ये चीजें हैं इनको मान। हम उसके संदेह को दबा रहे हैं और ऊपर से विश्वास थोप रहे हैं। उसका संदेह भीतर सरक जाएगा प्राणों में और विश्वास ऊपर बैठ जाएगा। जो प्राणों में सरक गया वही सत्य है जो ऊपर कपड़ों की तरह टंगा हुआ है वह सत्य नहीं है। इसलिए आदमी धार्मिक दिखाई पड़ता है। धार्मिक नहीं है। धर्म केवल वस्त्र है। उसकी आत्मा में संदेह मौजूद है। उसकी आत्मा में शक मौजूद है कि ये बातें हैं।

आदमी मंदिर में हाथ जोड़ कर सामने खड़ा हुआ है। ऊपर से हाथ जोड़े हुए है कह रहा है कि हे भगवान! और भीतर संदेह मौजूद है कि मैं एक पत्थर की मूर्ति के सामने खड़ा हूं इसमें भगवान है! वह संदेह हमेशा मौजूद रहेगा। वह संदेह तभी मिटेगा जब हमारा अनुभव होगा कि यह भगवान है। उसके पहले वह संदेह नहीं मिट सकता। और उसको जितनी छिपाने की कोशिश करिएगा, वह उतने ही गहरे भीतर उतर जाएगा। और जितने गहरे उतर जाएगा उतना ही आदमी गलत रास्ते पर पहुंच गया क्योंकि आदमी दो हिस्सों में विभाजित हो गया। उसकी आत्मा में संदेह है और बुद्धि में विश्वास है। तो बौद्धिक रूप से हम सब धार्मिक हैं, आत्मिक रूप से हम कोई भी धार्मिक नहीं।

मेरे एक शिक्षक थे। अपने गांव जाता था तो उनके घर जाता था। एक बार सात दिन गांव पर रुका था। दो या तीन दिन उनके घर गया। चौथे दिन उन्होंने अपने लड़के को एक चिट्ठी लिख कर भेजा कि अब कल से कृपा करके मेरे घर मत आना। तुम आते हो तो मुझे खुशी होती है, मैं वर्ष भर प्रतीक्षा करता हूं कि कब तुम आओगे और इस वर्ष मैं जीऊंगा कि नहीं, तुम्हें मिल पाऊंगा कि नहीं। लेकिन नहीं; अब मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे घर आज से मत आना। क्योंकि कल रात तुमसे बात हुई और जब मैं सुबह प्रार्थना करने बैठा अपने मंदिर में, जहां मैं चालीस वर्षों से भगवान की पूजा करता हूं, तो मुझे एकदम ऐसा लगा कि मैं पागलपन तो नहीं कर रहा हूं। सामने एक मूर्ति रखी है, जिसको मैं ही खरीद लाया था और उस मूर्ति के सामने मैं आरती कर रहा हूं। अगर कहीं यह सिर्फ पत्थर है तो मैं पागल हूं! और चालीस साल मैंने फिजूल गंवाए! नहीं, मैं डर गया! मुझे बहुत संदेह आ गया और चालीस साल की मेरी पूजा डगमगा गई! अब तुम यहां मत आना।

मैंने उनको वापस उत्तर दिया कि एक बार तो मैं और आऊंगा, फिर नहीं आऊंगा। क्योंकि एक बार मेरा आना बहुत जरूरी है। सिर्फ यह निवेदन करने मुझे आना है कि चालीस साल की पूजा और प्रार्थना के बाद अगर एक आदमी आ जाए और घंटे भर की उसकी बात, चालीस साल की पूजा और प्रार्थना को डगमगा दे तो इसका मतलब क्या है?

इसका मतलब यह है कि चालीस साल की पूजा और प्रार्थना झूठी थी, ऊपर खड़ी थी, भीतर संदेह मौजूद था। इस आदमी की बातचीत ने उस संदेह को फिर जगा दिया। वह हमेशा वहां भीतर सोया हुआ था। हम किसी के भीतर संदेह डाल नहीं सकते अगर उसके भीतर मौजूद न हो। संदेह डालना असंभव है। संदेह डालना बिलकुल असंभव है अगर उसके भीतर मौजूद न हो। संदेह भीतर मौजूद हो, बाहर से कोई बात कही जाए भीतर से संदेह वापस उठ कर खड़ा हो जाएगा। क्योंकि वह प्रतीक्षा कर रहा है बाहर निकलने की, आप उसको दबा कर बिठाए हुए हैं।

सारे दुनिया के धर्म, भारत के धर्म, और सारे धर्म यह चेष्टा करते हैं कि कभी नास्तिक की बात मत सुनना, कभी अधार्मिक की बात को सुनना, कान बंद कर लेना, कभी ऐसी बात मत सुनना, क्यों? डर किस बात का है?

नास्तिक की बात इतनी मजबूत है कि आस्तिक के ज्ञान को मिटा देगी। अगर यह सच है तो आस्तिक का ज्ञान दो कौड़ी का है। लेकिन सच्चाई यह है, सच में जो आस्तिक है, जो जीवन को जानता है, परमात्मा को पहचानता है, जिसने आत्मा की जरा सी भी झलक पा ली, उसे दुनिया भर की नास्तिकता भी डगमगा नहीं सकती। लेकिन हम आस्तिक हैं ही नहीं! भीतर हमारे नास्तिक बैठा हुआ है, ऊपर आस्तिकता पतले कागज की तरह घिरी हुई है।

असली भीतर आस्तिक नहीं है तो कोई जब बाहर से नास्तिकता की बात करता है, भीतर वह जो सोया हुआ नास्तिक उठने लगता है और कहता है कि ठीक है यह बात। भारत इसलिए धार्मिक नहीं हो सका कि हमने धर्म को विश्वास पर खड़ा किया, ज्ञान पर नहीं। धर्म खड़ा होना चाहिए ज्ञान पर, विश्वास पर नहीं। अगर ठीक धार्मिक मनुष्य चाहिए हों इस देश में तो हमें जिज्ञासा जगानी चाहिए, इंक्वायरी जगानी चाहिए, विचार जगाना चाहिए, चिंतन-मनन जगाना चाहिए, विश्वास बिलकुल ही छोड़ देना चाहिए।

बच्चों को विश्वास की कोई शिक्षा देनी की जरूरत नहीं। शिक्षा दी जानी चाहिए विचार करने की कला, चिंतन करने का ढंग, मनन करने का मार्ग, ध्यान करने की व्यवस्था, ताकि तुम जान सको कि सत्य क्या है। और जिस दिन सत्य की थोड़ी सी भी झलक मिलती है, एक किरण भी मिल जाए सत्य की, आदमी की जिंदगी दूसरी हो जाती है, वह जिंदगी धार्मिक हो जाती है। विश्वासी आदमी झूठा आदमी है, डिसेप्टिव है वह, आत्मवंचक है। इसलिए सारा मुल्क धोखे में पड़ गया।

और चौथी बात, अब तक हमें यह समझाया जाता रहा है कि सत्य दूसरे से मिल सकता है, गुरु से मिल सकता है, ज्ञानी से मिल सकता, ग्रंथ से मिल सकता है, शास्त्र से मिल सकता है। यह बात बिलकुल ही गलत है। सत्य किसी से किसी दूसरे को नहीं मिल सकता। सत्य खुद ही खोजना पड़ता है। सत्य कोई इतनी सस्ती बात नहीं है कि कोई आपको दे दे। सत्य तो खुद के प्राणों की सारी शक्ति को लगा कर ही खोजनी पड़ती है। वह यात्रा खुद ही करनी पड़ती है। आपकी जगह कोई मर सकता है? आपकी जगह कोई प्रेम कर सकता है? कभी आपने सोचा कि आपकी जगह कोई और प्रेम कर ले और आप प्रेम का आनंद ले लें? कभी आपने सोचा कि कोई दूसरा मर जाए और आपको मृत्यु का अनुभव हो जाए? यह कैसे हो सकता है? जो आदमी मरेगा वह मृत्यु का अनुभव करेगा। जो आदमी प्रेम में जाएगा वह प्रेम का आनंद लेगा। लेकिन हमने एक बड़ा धोखा दिया। हमने मृत्यु और प्रेम से भी सत्य को सस्ता समझा। हम यह समझते रहे कि सत्य दूसरे को मिल जाएगा और वह हमको दे देगा। महावीर हमको दे देंगे, बुद्ध दे देंगे, राम और कृष्ण हमको दे देंगे।

कोई किसी को सत्य नहीं दे सकता। अगर सत्य दिया जा सकता होता तो आज तक सारी दुनिया में सबके पास सत्य पहुंच गया होता। क्योंकि महावीर की करुणा इतनी है, बुद्ध की और क्राइस्ट का प्रेम इतना है कि अगर वे दे सकते, तो वह बांट दिया होता। लेकिन नहीं; वह नहीं दिया जा सकता। वह एक-एक आदमी को खुद ही खोजना पड़ता है। लेकिन हमें अब तक यही सिखाया गया है कि खुद खोजने का कहां सवाल है। गीता में लिखा है, रामायण में उपलब्ध है, उपनिषद में छपा हुआ है, समयसार में है, बाइबिल में है, कुरान में है, वहां से ले लें। पाठ कर लें, कंठस्थ कर लें सूत्रों को, सत्य मिल जाएगा।

इससे एक झूठा धर्म पैदा हुआ। जो शब्दों का धर्म है, सत्यों का धर्म नहीं। शास्त्रों से, गुरुओं से शब्द मिल सकते हैं सत्य नहीं मिल सकता। सत्य तो स्वयं ही खोजना पड़ता है। और एक-एक आदमी को अपने ही ढंग से खोजना पड़ता है। और एक-एक आदमी को अपनी ही पीड़ा से जन्म देना पड़ता है। जैसे मां को प्रसव पीड़ा से गुजरना पड़ता है, ताकि उसका बच्चा पैदा हो सके। ऐसे ही प्रत्येक व्यक्ति को एक साधना से गुजरना पड़ता है, ताकि उसका सत्य पैदा हो सके। सत्य उधार और बारोड नहीं है।

लेकिन हमारा मुल्क अब तक यही मानता रहा कि सत्य किताब से मिल सकता है, शास्त्र कंठस्थ कर लेने से मिल सकता है। कृष्ण को मिल चुका अब हमें खोजने की क्या जरूरत है! अब हम गीता को कंठस्थ कर लें, बस हमें मिल गया। तो गीता से मिल जाने के शब्द और शब्द हो जाएंगे कंठस्थ और ऐसा भ्रम पैदा होगा कि मैंने भी जान लिया। लेकिन मैंने बिलकुल नहीं जाना! गीता के शब्द स्मृति में भर गए हैं उन्हीं को मैं दोहरा रहा हूं, दोहरा रहा हूं। मैंने क्या जाना है? मेरा अपना अनुभव क्या है? मेरा अपना एक्सपीरिएंस क्या है? इसलिए इन चार सूत्रों के आधार पर भारत धार्मिक दिखाई पड़ता है और धार्मिक नहीं है।

और ये चारों सूत्र बदले जा सकते हैं। तो भारत के जीवन में धर्म के अनुभव की दिशा में एक नई यात्रा का उदघाटन हो सकता है। वह उदघाटन अत्यंत जरूरी है। उस उदघाटन के बिना हमारे कौम का कोई भी भविष्य नहीं। उस द्वार के खोले बिना हमने जीवन खो दिया है। चर्च हमारा गिरने के करीब है। वह भवन जिसे हम धर्म कहते थे सड़-गल चुका। वह भवन जिसे हमने धर्म समझा था वहां कोई उपासक नहीं जाता है। वह भवन जिसे हम समझे थे कि इससे परमात्मा मिलेगा, उसकी तरफ हमारी पीठ हो गई है। लेकिन हम उस भवन को बदलने को तैयार भी नहीं, नया भवन बनाने के लिए उत्सुक भी नहीं, ऐसी हालतों में हम दोहराते रहेंगे सारी दुनिया के सामने कि हम धार्मिक हैं और हम भलीभांति भीतर जानते हैं कि हम धार्मिक नहीं हैं।

क्या यह स्थिति बदलने जैसी नहीं है? क्या इस स्थिति को ऐसे ही बैठे हुए देखते रहना उचित है? इस प्रश्न पर ही मैं अपनी बात छोड़ देना चाहता हूं। जिनके भीतर भी थोड़ी समझ है और जिनके भीतर भी थोड़ा जीवन है और जो थोड़ा सोचते हैं और विचारते हैं उनके सामने आज एक ही काम है—भारत के प्राण अधार्मिक हो गए हैं, उन्हें धार्मिक कैसे किया जाए? वे धार्मिक किए जा सकते हैं। थोड़ा ठीक चिंतन और ठीक मार्गों में हम खोज करेंगे तो भारत की आत्मा धार्मिक हो सकती है।

भारत की आत्मा धर्म के लिए प्यासी है। लेकिन झूठे पानी से हम उसे तृप्त करते रहे हैं। प्यास को फिर से जगाना जरूरी है ताकि हम उस सरोवर को खोज सकें जहां प्यास बुझ जाती है और उससे मिलन हो जाता है। जिसे पा लेने के बाद फिर पा लेने को कुछ भी नहीं बचता और वह जीवन उपलब्ध हो जाता है जिस जीवन की कोई मृत्यु नहीं। और वह सुवास और सुगंध और वह संगीत हाथ में आ जाता है जिसे कोई मोक्ष कहता है, कोई प्रभु कहता है, कोई किंगडम ऑफ गॉड कहता है, कोई और नाम लेता है। प्रत्येक आदमी अधिकारी है उसे पाने का लेकिन गलत रास्तों से उसे नहीं पाया जा सकता है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

ग्यारहवां प्रवचन

भारत का भविष्य

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक नये भारत की ओर? इस संबंध में थोड़ी सी बातें मैं आपसे कहना चाहूंगा। पहली बात तो यह कि भारत को हजारों वर्ष तक यह पता ही नहीं था कि वह पुराना हो गया है। असल में पुराने होने का पता ही तब चलता है जब हमारे पड़ोसी नये हो जाएं। पुराने के बोध के लिए किसी का नया हो जाना जरूरी है।

भारत को हजारों वर्ष तक यह पता नहीं था कि वह पुराना हो गया है। इधर इस सदी में आकर हमें यह प्रतीति होनी शुरू हुई है कि हम पुराने हो गए हैं। इस प्रतीति को झुठलाने की हम बहुत कोशिश करते हैं। क्योंकि यह बात मन को वैसे ही दुख देती है जैसे किसी बूढ़े आदमी को जब पता चलता है कि वह बूढ़ा हो गया है तो दुख शुरू होता है।

बूढ़ा होना जैसा दुखद है वैसे किसी राष्ट्र के बूढ़े हो जाने का भी दुख है। बूढ़ा आदमी चाहे तो अपने बुढ़ापे को झुठलाने की कोशिश कर सकता है। लेकिन झुठलाने से बुढ़ापा कम नहीं होता।

भारत भी इधर पचास वर्षों से निरंतर यह बात इनकार करने की कोशिश कर रहा है कि हम पुराने हो गए हैं। इस इनकार करने की उसने कुछ मानसिक व्यवस्था की है वह समझना जरूरी है।

एक तो भारत यह कहता है कि जो भी श्रेष्ठ, जो भी सत्य, जो भी सुंदर है वह उसे उपलब्ध ही हो चुका है। इसलिए नये होने की अब कोई जरूरत नहीं है। विकास की जरूरत तो वहां है जहां अविकसित हो कोई। लेकिन जिस देश को यह खयाल हो कि विकास हो ही चुका है, वहां अब विकास के परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है। हमें विकास न करना पड़े, हमें परिवर्तन न करना पड़े, इस बात को इनकार करने के लिए हम यह मान कर बैठ गए हैं कि हमने सब पा लिया है।

यह भ्रम हम पाल सकते थे अगर दुनिया के हम संपर्क में न आए होते। अपने-अपने कुएं में हर आदमी यह सोच सकता है कि उसने सब पा लिया है। अपने कुएं में बंद, अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता के घेरे में घिरे हुए, इस बात को मानने में बहुत कठिनाई न थी कि हम पूर्ण हो गए हैं। लेकिन चारों तरफ दुनिया की हवाओं ने हमारी पूर्णता की नींद को पूरी तरह तोड़ दिया है। हजार वर्ष की लंबी गुलामी ने हमें यह भी बता दिया है कि हमारी शक्ति कितनी है। सैकड़ों वर्ष की दरिद्रता ने हमें यह भी बता दिया है हमारी सामर्थ्य, हमारी संपदा कितनी है। दुनिया भर के सामने भीख मांग कर हम किसी भांति जिंदा हैं उसने हमें यह भी बता दिया है कि हमारी समझ कितनी है। सारी दुनिया ने हमें एक ऐसी स्थिति में खड़ा कर दिया है जहां हमें यह अहसास करना अनिवार्य हो गया है कि हम बूढ़े हो गए हैं, पुराने हो गए हैं। और नये हुए बिना जीवन का अब कोई रास्ता आगे नहीं हो सकता है। लेकिन हम इसे इनकार अगर करें तो हम इनकार करते रह सकते हैं। हम मानते रह सकते हैं कि हम पूर्ण हो गए हैं। और डर यही है कि हजारों वर्ष की अपनी मान्यता को हम जिंदगी के नये तथ्यों के सामने आंख बंद करके मानते ही चले जाएं। उस हालत में सिवाय मृत्यु के भारत के सामने कोई रास्ता न रह जाएगा। और इसे मृत्यु कहना भी ठीक न होगा, इसे आत्मघात, स्युसाइड कहना ही ठीक होगा। क्योंकि इसके लिए और कोई जिम्मेवार नहीं है हम ही जिम्मेवार होंगे।

दूसरी बात, भारत ने कभी भी नये की स्वीकृति नहीं की है। असल में भारत मानता ही नहीं रहा कि पृथ्वी पर कुछ नया भी होता है। हम मानते रहे हैं कि पृथ्वी पर चांद-तारों के नीचे जो भी है सब पुराना है। इसलिए भारत ने इतिहास नहीं लिखा, हिस्ट्री नहीं लिखी। हमें कोई हिस्टारिक सेंस, इतिहास का बोध भी नहीं है। न लिखने का कारण था, क्योंकि अगर दुनिया में नई चीजें घटती हों तो इतिहास लिखने का कोई अर्थ है। क्योंकि पुरानी चीजें दुबारा नहीं घटेंगी उनकी स्मृति रखना जरूरी है। लेकिन अगर वही-वही चीजें रोज-रोज घटती हों तो इतिहास बेमानी है। इसलिए भारत ने कोई इतिहास नहीं लिखा। न तो हम राम के बाबत निश्चित हो सकते हैं कि वे कभी हुए, न हम कृष्ण के बाबत निश्चित हो सकते हैं कि वे कभी हुए। हम कभी सुनिश्चित रूप से घोषणा नहीं कर सकते। क्योंकि हमने कोई इतिहास लिख कर नहीं रखा। नहीं रखा इसीलिए कि जो बातें बार-बार हुई हैं उन्हें लिखने कि क्या जरूरत है? जब सभी कुछ पुराना है पृथ्वी पर तो इतिहास की कोई जरूरत नहीं है।

भारत का भविष्य

इतिहास की जरूरत तो केवल उन लोगों को है जो मानते हैं कि पुराना दुबारा नहीं घटेगा, रोज सब नया होता चला जाएगा। इसलिए पुराने की स्मृति को संरक्षित रखना जरूरी है। हम तो पुराने को ही संरक्षित किए हुए हैं तो पुराने की स्मृति को संरक्षित करने की क्या जरूरत है? इसलिए हमने कभी इतिहास नहीं लिखा। और हमारे सामने भविष्य की कभी कोई दृष्टि नहीं रही, हमारे सामने अतीत ही सब कुछ रहा। भविष्य हमारे लिए अर्थहीन है। अर्थ है तो अतीत में है वह जो बीत गया। क्यों? क्योंकि जो बीत गया वही बीतता रहेगा बार-बार। भविष्य में कुछ भी नया छिपा नहीं है जो हमारे लिए प्रकट होगा।

इस मानसिक व्यवस्था से हम पुराने रहने की तैयारी जुटाए रखे हैं। हम पुराने थे लेकिन हमें पता नहीं चलता था। गरीबी भी तब पता चलती है जब हम किसी अमीरी के निकट आ जाएं, और कुरूपता का भी बोध तब होता है जब सौंदर्य पास खड़ा हो जाए, और सफेद रेखाएं काले ब्लैक-बोर्ड पर दिखाई पड़नी शुरू होती हैं। चारों तरफ सारी दुनिया नई हो गई है, सब कुछ नया हो गया है, उसके बीच हम एक म्यूजियम की भांति पुराने रह गए हैं। जहां भी आंख उठाते हैं वहां हमें फौरन पता लगता है कि हम पुराने पड़ गए हैं।

अब हमारे बीच जिनकी बुद्धि शुतुरमुर्ग जैसी है, और वैसे बुद्धिमान लोग हमारे बीच बड़ी तादाद में हैं। तो हम जानते हैं कि शुतुरमुर्ग का अपना लाजिक है, अगर दुश्मन उस पर हमला कर रहा हो तो वह सिर को रेत में गड़ा कर खड़ा हो जाता है। जब उसका सिर रेत में गड़ जाता है तो उसे दिखाई नहीं पड़ता कि दुश्मन सामने है। और शुतुरमुर्ग का तर्क यह है कि जब दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता तो दुश्मन है नहीं। लेकिन दुश्मन नहीं दिखाई पड़ने से मिट नहीं जाता। बल्कि दिखाई पड़ते हुए दुश्मन से तो हम सुरक्षा का उपाय कर सकते हैं, संघर्ष कर सकते हैं। न दिखाई पड़ने वाले दुश्मन के हाथ में हम निहत्थे हो जाते हैं, निशस्त्र हो जाते हैं। और दुश्मन पूरी ताकत हमारी आंख बंद होने की वजह से पा जाता है।

भारत में जिन्हें हम बुद्धिमान लोग कहते हैं वे सारे बुद्धिमान शुतुरमुर्गी तर्क को विश्वास करते हैं। वे मानते हैं: देखो मत चारों तरफ, आंख बंद रखो, तो हम अपने पुराने सपनों में खोए रह सकते हैं और हम कह सकते हैं कि हम पुराने नहीं हैं।

इसलिए भारत में हजारों-सैकड़ों साल तक परदेश जाने की पाबंदी रखी। दूसरे देश जाने पर हमने अपने बच्चों पर रोक लगाई। रोक इसलिए लगाई कि दूसरे देश में देख कर नये की संभावनाएं शुरू हो जाएंगी। सैकड़ों वर्षों तक हमने दूसरों के शास्त्र नहीं देखे। सैकड़ों वर्षों तक हमने दूसरों के दर्शन और दूसरों के विज्ञान पर आंख न डाली। हम शुतुरमुर्ग की तरह अपने सिर को खपा कर खड़े रहे। लेकिन अब अजीब दुश्मन से पाला पड़ा है! वह शुतुरमुर्ग की गर्दन को बाहर निकाल कर उसको दर्शन दे रहा है। और अब कोई उपाय नहीं है, हमें दर्शन करने ही पड़ेंगे।

यह जो दुनिया है बहुत अर्थों में छोटी हो गई है। मार्शल मेकलुहान ने एक शब्द का उपयोग किया है वह ठीक है। उसका कहना है कि दुनिया अब एक ग्लोबल विलेज, एक जागतिक गांव हो गई है, एक छोटा गांव। इसलिए अब पड़ोसियों से बचना मुश्किल है। और चारों तरफ नई होती जिंदगी अब हमें पुराना न रहने देगी। अब दो ही उपाय हैं, या तो हम स्वीकार से और आनंद से नये होने की तैयारी में लग जाएं या हम जबरदस्ती

और परेशानी में नये बनाए जाएंगे। अगर हम नये बनाए गए तो वह दुखद होगा, अगर हम नये बने तो वह सुखद हो सकता है।

लेकिन अभी भी हम अपनी दलीलें दिए चले जाते हैं। अभी भी हम कहे चले जाते हैं कि हम जगतगुरु हैं। अभी भी हम कहे चले जाते हैं कि दुनिया हमारी तरफ देख रही है। अब भी हम कहे चले जाते हैं कि दुनिया को हमसे सीखना है, हमसे दुनिया को सीखना पड़ेगा, ये बड़ी खतरनाक बातें हैं। यह असल में दुनिया से हमें न सीखना पड़े इसकी तरकीब है।

अगर दुनिया से हमें नहीं सीखना है तो हमें यह घोषणा करते ही रहनी चाहिए कि दुनिया हमारी तरफ देख रही है और दुनिया हमसे सीखने को आतुर है। अगर दुनिया से हमें नहीं सीखना है तो हमें अपने मन में यह बात मजबूती से पकड़े रखनी चाहिए कि हम जगतगुरु हैं और सारी दुनिया को ज्ञान देने का ठेका हमारा है। लेकिन ध्यान रहे, इस ठेके में हम रोज अज्ञानी होते चले जाएंगे, इस ठेके में हम रोज दीनता और दरिद्रता में गिरते चले जाएंगे।

बहुत कुछ है जो भारत को सीखना पड़ेगा, बहुत कुछ है जो भारत को तोड़ना पड़ेगा और बहुत कुछ है जो नया निर्माण करना पड़ेगा।

इस संबंध में दो-तीन बातें स्मरणीय हैं। अल्डुअस हक्सले ने एक शब्द का निर्माण किया है और उसे कहा हैः कल्चर शॉक। असल में दूसरी संस्कृति के संपर्क में जब हम आते हैं तो एक धक्का लगता है। अपरिचित संस्कृति का धक्का! जो उस धक्के को झेल लेता है और उस धक्के का मुकाबला कर लेता है, वह सबल हो जाता है। जो उस धक्के से भाग खड़ा होता है, एस्केप कर जाता है, पीठ दिखा देता है, वह कमजोर हो जाता है। संस्कृति का धक्का तो ठीक ही है, हमें सारी विश्व-संस्कृति का धक्का झेलना पड़ रहा है। किसी एक संस्कृति से टक्कर नहीं है अब, अब सारे विश्व की आधुनिकता से हमारी प्राचीनता की टक्कर है। अगर एकाध संस्कृति से टक्कर होती तो शायद हम एस्केप कर जाते, हम आंख बंद कर लेते और देखने से इनकार कर देते। लेकिन अब सारी दुनिया से टक्कर है। और वह टक्कर ऐसी नहीं है कि बातों और विचारों की हो, वह टक्कर अब जिंदगी, पेट और रोजी-रोटी की भी है। उसे झुठलाया नहीं जा सकता। उसे इनकार भी नहीं किया जा सकता।

यह जो हमारा पुरानापन है यह पहली बार कांटे की तरह चुभना शुरू हुआ है। जो हमारी जिंदगी में बूढ़ा हिस्सा है, जो पिछली पीढ़ी है, जो पुराने खयाल के लोग हैं, वे जोर से अपनी पुरानी बातों का शोर-गुल मचाना शुरू करेंगे ताकि उन्हें नई बातें सुनाई न पड़ें, वे बहरे बनने की कोशिश करेंगे।

सुना होगा आपने, एक कहानी है, कि एक आदमी था जिसने अपने कानों में घंटे लटका रखे थे। वह अपने घंटों को दिन-रात बजाता रहता था। वह राम का भक्त था और कोई कृष्ण का नाम उसके कान में न चला जाए इसलिए उसने दोनों कानों में घंटे बजा रखे थे। वह घंटाकर्ण हो गया था। वह अपने घंटे बजाता रहता था और कृष्ण का नाम सुनाई न पड़ जाए।

हम करीब-करीब घंटाकर्ण की हालत में हैं, जहां तक पुरानी पीढ़ी का संबंध है। वह अपने कान के घंटे बजाती रहती है ताकि दुनिया भर की आवाजें सुनाई न पड़ जाएं। यह बड़ी खतरनाक बात हो सकती है। नई पीढ़ी इससे कम खतरनाक नहीं है। नई पीढ़ी को पुरानी बातें न सुनाई पड़ जाएं, वह उसके लिए अपने कानों में घंटे बनाए

हुए हैं। वह भी अपने घंटे बजा रही है। कोई राम न सुनाई पड़ जाए, किसी को कृष्ण न सुनाई पड़ जाए। पुरानी पीढ़ी अपने कानों के घंटे बजा रही है कि दुनिया में जो नई आधुनिकता का एक्सप्लोजन हुआ है, जो नये ज्ञान का विस्फोट हुआ है वह पता न चल जाए। क्योंकि उसके पता चलने से उसके पैर के नीचे की जमीन खिसक जाएगी और नई पीढ़ी उसकी प्रतिक्रिया में, रिएक्शन में पुराने को सुनने को बिलकुल राजी नहीं है।

ध्यान रहे, ये दोनों ही बातें खतरनाक हैं। क्योंकि नई पीढ़ी के पास कोई जड़ें नहीं होंगी। और जिस पीढ़ी के पास जड़ें न हों, वह ध्यान रहे, वह अगर फूल भी लाएगी तो वे फूल प्लास्टिक और कागज के होंगे, असली फूल नहीं हो सकते हैं। और पुरानी पीढ़ी खयाल रखे कि अगर उसके पास नये फूल खिलाने की क्षमता नहीं हैं तो अकेली जड़ें बहुत कुरूप और बहुत भद्दी और बेमानी हैं, और सिर्फ बोझ बन जाती हैं।

अकेली जड़ों का कोई मूल्य नहीं हैं। जड़ों की सार्थकता इसमें है कि वे रोज नये फूलों को जन्म दे सकें। जड़ें अपने में तो कुरूप होती हैं लेकिन सुंदर फूलों को जन्म देने की क्षमता होती है तो जड़ें जीवित होती हैं। पुरानी पीढ़ी पुरानी जड़ों को पकड़ कर बैठी है और नये फूलों से डरी हुई है। जड़ें भी सड़ेंगी पुरानी पीढ़ी भी सड़ जाएगी। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की बगावत और खिलाफत में जड़ों को इनकार करती है और सिर्फ नये फूलों को लिए बैठी है, उसके फूल उधार हैं, उसके फूल मांगे हुए हैं, उसके फूल दूसरों से लिए गए, बासे सेकेंड हैंड ही हो सकते हैं।

जो फूल पश्चिम में खिलते हैं वैसे फूल हमारे यहां भी खिलें यह तो उचित है, लेकिन उन्हीं फूलों को हम हाथ में लिए बैठे रहें यह उचित नहीं है। जो फूल सारी दुनिया में खिल रहे हैं वे हमारी जमीन में भी खिलें, यह तो सौभाग्य होगा। लेकिन हम उन फूलों को उधार ले आएं और अपने घरों के गुलदस्तों में सजा कर बैठ जाएं, इससे हम अपनी दीनता को थोड़ी-बहुत देर के लिए छिपा सकते हैं लेकिन मिटा नहीं सकते।

हिंदुस्तान की तकलीफ और हिंदुस्तान की जिच यह है कि पुरानी पीढ़ी जड़ों को पकड़े है और फूलों को इनकार कर रही है और नई पीढ़ी फूलों को स्वीकार करती है और जड़ों को इनकार करती है। ये दोनों ही खतरनाक वृत्तियां हैं। और मुझे ऐसे बहुत कम लोग दिखाई पड़ते हैं जो इन दोनों वृत्तियों से भिन्न हों।

एक तरफ जगतगुरु शंकराचार्य और उनके अनुयायी हैं और दूसरी तरफ नक्सलाइट हैं, ये एक ही तरह के लोग हैं, इनमें बहुत फर्क नहीं हैं। और मजा यह है कि इन दोनों में ही चुनाव करना पड़े हमें, ऐसी स्थिति बना दी है, या तो कुआं चुनो या खाई चुनो। ये दोनों बातें खतरनाक हैं।

नये भारत की ओर? पहली बात तो यह समझ लेनी है जरूरी है कि नया भारत अगर नया होगा तो अपनी पुरानी जड़ों को आत्मसात करके होगा। नया भारत अगर नया होगा तो भारत रहते हुए नया होगा। अगर भारत न रह जाए और नया हो जाए तो उसको नया भारत कहने की कोई जरूरत नहीं है। पुरानी जड़ों को आत्मसात करना होगा। और कोई भी कौम अपनी पुरानी जड़ों के बिना बिलकुल नहीं जी सकती। कोई वृक्ष नहीं जी सकता; कोई कौम भी नहीं जी सकती। और एक बार हम अपनी सारी जड़ों को इनकार कर दें, तो हम हाट हाउस के पौधे हो सकते हैं लेकिन हम जिंदगी के तूफानों को झेलने योग्य नहीं रह जाएंगे।

पुरानी जड़ों को आत्मसात करना होगा। पुरानी जड़ों को आत्मसात करने का अर्थ यह है कि भारत जो आज तक रहा है उस भारत के ऊपर ही नई कलमें लगनी चाहिए। उस पूरे भारत को इनकार कर देने से नई कलमें नहीं लगेंगी। हम सिर्फ उधार और पंगु हो जाएंगे। हम जमीन पर भिखमंगे हो जाएंगे।

पुराने आदमी के साथ खतरा यह है कि वह पुराने के लिए तो राजी है लेकिन नये अंकुर निकलें, नये फूल लगें, उनके लिए राजी नहीं हैं। नये आदमी के साथ खतरा यह है कि वह नये के लिए तो राजी है लेकिन पुरानी जड़ों को आत्मसात करने की उसकी जरा भी इच्छा नहीं है। वह इतना भयभीत है कि पुराने के साथ नया कैसे हो सकेगा? लेकिन ध्यान रहे, पुराने और नये में दुश्मनी नहीं है, पुराना ही नया होता है। पुराना और नया दो विरोधी चीजें नहीं हैं। पुराना ही विकसित होता है और नया होता है।

असल में जब एक आदमी बूढ़ा हो जाता है तो हमें दिखाई नहीं पड़ता कि यह बूढ़ा आदमी नया होगा, यह तो मर जाएगा। लेकिन वे जो नये बच्चे हमें दिखाई पड़ रहे हैं, वे इस बूढ़े की ही प्रतिमाएं हैं, प्रतिरूप हैं। यह बूढ़ा मरने के पहले नये बीज बो जाता है। असल में सब नये बच्चे पुराने बूढ़ों से पैदा होते हैं। सब नया पुराने से जन्म पाता है। पुराने और नये के बीच कोई दुश्मनी नहीं है। पुराने और नये के बीच बाप और बेटे का संबंध है। लेकिन बाप और बेटे के बीच ही कोई संबंध नहीं रह गया है। तो पुराने और नये के बीच कैसे संबंध रह पाए? बाप और बेटा दो क्लासेज नहीं हैं, बाप और बेटा दो वर्ग नहीं हैं, बाप और बेटे के बीच कोई कांफ्लिक्ट, कोई संघर्ष नहीं है और अगर है तो उसका मतलब है कि बाप और बेटे के बीच बाप और बेटे का संबंध नहीं रहा है। बाप और बेटे के बीच एक प्रवाह है।

असल में बेटा फिर से बाप को नये अर्थों में जगत में प्रवेश दे रहा है। अगर मैं इस जमीन पर संभव हो पाया हूं तो मेरे पीछे हजारों, लाखों वर्षों की यथार्थता है। अगर आप इस जमीन पर पैदा हो पाए हैं तो हजारों-हजारों पीढ़ियों ने आपको पैदा किया है। आप अपने पिता भी हैं, उनके पिता भी हैं, उनके पिता भी हैं, उनके पिता भी हैं, अपनी मां भी हैं, उनकी मां भी हैं, उनकी मां भी हैं, आप इन सबके साथ संचित हैं।

असल में वे पुराने हो गए थे इसलिए उनका जो हिस्सा नया हो सकता था उसे छोड़ कर वे विदा हो गए हैं और वह नया हिस्सा जीवन को चला रहा है। पुराना ही रोज नया हो रहा है। और ध्यान रहे, नया ही रोज पुराना भी हो रहा है। कोई पुराना ऐसा नहीं है जो कभी नया न रहा हो और कोई नया ऐसा नहीं है जो कल पुराना नहीं हो जाएगा।

इसलिए नये और पुराने के बीच दुश्मनी का खयाल खतरनाक है। नये और पुराने के बीच एक प्रवाह है, एक गति है, एक अंतस□बंध है, एक यात्रा है, एक प्रोसेस है। असल में पुराना प्रारंभ बिंदु है, नया अंत बिंदु है। जैसे जन्म और मृत्यु आमतौर से दिखाई पड़ती हैं, दो चीजें हैं, लेकिन दो चीजें नहीं हैं। जन्म ही विकसित होते-होते मौत बन जाती है। और जो लोग जानते हैं वे कहेंगे मौत ही विकसित होते-होते फिर नया जन्म बन जाती है।

तो पहली बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूं, भारत अगर एक नया भारत होना चाहता है तो उसे बड़ा अदभुत काम करना है, उसे एक बड़ा बैंलेंसिंग एक्ट करना है, एक बड़ी संतुलन की व्यवस्था करनी है। कभी अगर रस्सी के ऊपर चलते हुए नट को देखा हो, तो भारत का भविष्य बिलकुल रस्सी के ऊपर चलते हुए नट जैसा

होगा। जिसे पूरे समय दोनों तरफ गिरने से बचाना है अपने को। गिरना आसान है क्योंकि गिरते ही फिर संतुलन के श्रम करने की जरूरत न रह जाएगी। पुराने की तरफ भी गिर जाना आसान है, नये की तरफ भी गिर जाना आसान है, लेकिन इस जीवन की रस्सी पर सध कर चलना कठिन है।

और मुझे ऐसा निरंतर डर लगाता है कि पुरानी पीढ़ी पुराने की तरफ गिर कर संतुलन के लिए जो श्रम करना है उसकी फिक्र छोड़ देती है। नई पीढ़ी नये की तरफ गिर कर संतुलन के लिए जो प्रयत्न करना है उसका प्रयत्न छोड़ देती है। इन दोनों में बहुत फर्क नहीं है, ये दोनों संतुलन के श्रम से बचने की कोशिश में लगे हैं।

भारत को नया वे लोग कर पाएंगे जो इन दोनों चुनावों को इनकार कर दें और जो बीच में, बैलेंस में, संतुलन में खड़े होने के लिए राजी हो जाएं। असल में वह जो गोल्ड मीन है, वह जो बीच है, वह जो मध्य है वही जीवन है। सदा ही, सदा दो अतियों के बीच मध्य को चुन लेना बुद्धिमानी है।

सुना है मैंने कि कनफ्यूशियस एक गांव में गया और उस गांव के बाहर ही गांव में प्रवेश के पहले एक आदमी उसे मिल गया और उस आदमी ने कहा, आप जरूर हमारे गांव में आएं और हमारे गांव में भी एक बहुत बुद्धिमान आदमी है, एक बहुत वाइज मैन है। आप उससे मिल कर बहुत खुश होंगे।

कनफ्यूशियस ने कहा कि उसे बहुत बुद्धिमान क्यों कहते हो? अगर तुम मुझे कुछ उसके संबंध में बताओ तो अच्छा होगा?

तो उस आदमी ने कहा, वह इतना बुद्धिमान है कि वह एक कदम रखने के पहले तीन बार सोचता है।

कनफ्यूशियस ने कहा कि फिर मैं उससे न मिलूंगा।

उस आदमी ने कहा, क्यों?

कनफ्यूशियस ने कहा कि अगर वह एक ही बार सोचता होता तो मैं कहता कि वह थोड़ा कम बुद्धिमान है, अगर वह तीन बार सोचता है तो मैं कहूंगा वह थोड़ा ज्यादा बुद्धिमान है, अगर वह दो ही बार सोचता होता तो मैं कहता, वह बुद्धिमान है। और कम बुद्धिमान भी खतरे में पड़ जाते हैं और ज्यादा बुद्धिमान भी खतरे में पड़ जाते हैं।

असल में बुद्धिमान होना एक संतुलन है। बुद्धिमान होना एक संतुलन है। अति बुद्धि से भी बचना पड़ता है और अति अबुद्धि से भी बचना पड़ता है। असल में दो एक्सट्रीम से बच जाना बुद्धिमानी है। तो कनफ्यूशियस ने कहा, मैं न मिलूंगा, क्योंकि अगर वह तीन बार सोचता है तो थोड़ा जरा ज्यादा हो गई बात, जरा पेंडुलम ज्यादा घूम गया आगे की तरफ। घड़ी है उसमें बाएं से दाएं पेंडुलम भागता रहता है।

ठीक हमारा मन भी ऐसा ही भागता रहता है घड़ी के पेंडुलम की तरह। पुराने से हम नये पर जा सकते हैं और नये से हम पुराने पर जा सकते हैं। लेकिन जिंदगी बीच में है। और जो बीच में होता है उसको बड़े फायदे हैं क्योंकि वह पुराने के भी उतने ही निकट होता है जितना नये के निकट होता है, वह पुराने से भी उतना ही दूर होता है जितना नये से दूर होता है। उसके लिए चुनाव आसान है। और जो बीच में होता है वह रिएक्शनरी नये नहीं होता, वह किसी चीज के खिलाफ नहीं जा रहा होता।

और एक और मजे की बात है कि जब घड़ी का पेंडुलम बाएं से दायीं तरफ जाता है तो दिखाई तो पड़ता है कि उलटा जा रहा है, लेकिन आपने कभी खयाल न किया होगा, बाएं से दाएं तरफ जाता हुआ पेंडुलम फिर बाएं

तरफ आने की शक्ति को इकट्ठा कर रहा है। दाएं से बाएं तरफ जाता हुआ पेंडुलम मूवमेंटम इकट्ठा कर रहा है जो उसे फिर दाएं तरफ ले जाएगा।

तो बहुत कठिनाई नहीं है कि नक्सलाइट फिर शंकराचार्य का अनुयायी हो जाए। इसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। ये एक्सट्रीम जो हैं इनमें विरोध दिखाई पड़ता है वस्तुतः होता नहीं।

विपरीत से विपरीत पर जाना बहुत आसान है, अत्यंत आसान है। इसलिए बहुत कामुक व्यक्ति ब्रह्मचारी हो सकता है, उसमें बहुत कठिनाई नहीं है। लेकिन बहुत कामुक व्यक्ति संयमी नहीं हो सकता, उसमें कठिनाई है। बहुत ज्यादा खाने के लिए पागल आदमी उपवास कर सकता है, उसमें ज्यादा कठिनाई नहीं है, लेकिन संयमित भोजन नहीं कर सकता, उसमें बहुत कठिनाई है।

एक अति से दूसरी अति पर जाना सदा सरल है। क्योंकि दूसरी भी अति है और पहली भी अति थी। एक एक्सट्रीम से दूसरी एक्सट्रीम पर जाना एकदम आसान है। एक्सट्रीमीस्ट माइंड को कोई कठिनाई नहीं। लेकिन मध्य में रुकना बहुत कठिन है।

भारत के सामने जो बड़े से बड़ा सवाल यह है कि हम एक अति है पुराने की और एक अति है नये की। एक अति है अति प्राचीन की और एक अति है अति नवीन की। इन दोनों के बीच अगर भारत ने चुनाव किया, तो भारत नया भारत बन सकेगा।

नया भारत जिसके आधार पर पुराने की सारी संपदा होगी। नया भारत जिसकी जड़ों में पुराने की सारी ताकत होगी। नया भारत जो अपने अतीत से, अपनी संस्कृति से टूट नहीं गया होगा। और अगर उसने दो में से किसी एक को चुना, अगर उसने पुराने को चुना तो भारत रोज-रोज मरता जाएगा। क्योंकि सिर्फ अतीत के साथ कोई नहीं जी सकता। जो कौम अपने अतीत को रोज भविष्य बना सकती है वही जीवित है। जो कौम सिर्फ अतीत को अतीत की तरह पकड़ कर बैठ जाती है वह मर जाती है।

या अगर भारत ने सिर्फ नये को चुना, अतीत को इनकार किया, तो भारत बहुत कागजी, बहुत जापानी हो जाएगा, भारत बहुत ऊपरी हो जाएगा, बहुत सुपरफिसियल हो जाएगा। उसकी जिंदगी की गहराइयां सब खो जाएंगी। भारत ऊपर की लहरें बन जाएगा। उसके नीचे के सारे तल विदा हो जाएंगे। और जो कौम अपने अतीत को पूरा इनकार कर दे, वह कौम हवा के थपेड़ों पर जीने लगती है। फिर हवा के कोई भी थपेड़े उसे बदलते रहेंगे। आज उसे कम्युनिज्म ठीक लगेगा, कल उसे फेसिइज्म ठीक लगेगा, परसों उसे डेमोक्रेसी ठीक लगेगी, आगे उसे डिक्टेटरशिप ठीक लगेगी। आज उसे ये कपड़े ठीक लगेंगे, कल उसे वे कपड़े ठीक लगेंगे। आज यह ज्ञान ठीक लगेगा, कल वह ज्ञान ठीक लगेगा। और कोई भी चीज इतनी ठीक न लग पाएगी जो उसकी आत्मा बन जाए, सब उसके वस्त्र रह जाएंगे।

एक नये भारत के लिए पहला मेरा खयाल है वह यह है कि भारत को भारत रहते हुए नया होना है। बहुत आसान है भारत होना छोड़ कर नया होना। और यह भी बहुत आसान है भारत रह कर भारत बने रहना और नया न होना। ये दोनों बातें बहुत आसान हैं।

कठिनाई यहां है कि भारत भारत रहे और नया हो जाए। इसका क्या अर्थ होगा? इसका अर्थ यह होगा कि भारत भविष्य उन्मुख हो, लेकिन अतीत शत्रु न हो जाए। इसका अर्थ होगा भारत नया होने की तैयारी जुटाए लेकिन

पुराने के सारे अनुभव को साथ ले जा सके। इसका अर्थ यह होगा कि भारत कोई चीज पुरानी है सिर्फ इसलिए इनकार न कर दे और कोई चीज नई है इसलिए सिर्फ स्वीकार न कर ले।

अब तक हमने ऐसा किया है कि जो पुराना है वह ठीक है और जो नया है वह गलत है। हम एक अति पर जी रहे थे। पुराना सदा ठीक है नया सदा गलत है ऐसी हमारी धारणा थी। इसलिए हर आदमी जिसको कोई चीज सही सिद्ध करनी हो पहले उसे इस मुल्क में यह सिद्ध करना पड़ता है कि वह कितनी पुरानी है?

गीता अगर दो हजार साल पुरानी है तो थोड़ी कम सही हो जाएगी, और अगर पांच हजार साल पुरानी है तो थोड़ी ज्यादा सही हो जाएगी, और अगर पचास हजार साल पुरानी है तो और ज्यादा सही हो जाएगी। और अगर वेद लाख साल पुराने हैं तो और ज्यादा सही हो जाएंगे, और अगर सनातन हैं, सदा से हैं, तब तो उनके सही होने में कोई शक ही न रह जाएगा। इसलिए लोकमान्य तिलक पूरे समय कोशिश करते रहे कि वेद कम से कम नब्बे हजार वर्ष पुराने सिद्ध हो जाएं। क्योंकि अगर नब्बे हजार वर्ष पुराने सिद्ध हो गए, तो फिर बहुत ज्यादा सही हो जाएंगे। लेकिन कोई चीज पुरानी होने से सही नहीं होती। अब बहुत खतरा है कि हम दूसरे अति पर चले जाएं कि जो नया है वही सही है। नहीं; कोई चीज नये होने से भी सही नहीं होती। सही होना एक अलग बात है, जिसके लिए नया और पुराना होना संदर्भ के बाहर है, इररेलेवेंट है।

अगर भारत को विकसित होना है तो उसे पुरानी भूल छोड़नी पड़ेगी कि पुराना होने से कुछ सही है और नई भूल पकड़ने से बचना पड़ेगा कि कोई चीज नये होने से सही है और भारत को खोजना पड़ेगा कि सही क्या है? अगर वह पुराना है तो भी सही है, अगर वह नया है तो भी सही है। और हम सही की खोज करके अगर जिंदगी को बनाने की कोशिश किए, तो भारत पुराने से टूटेगा नहीं और नया हो जाएगा। और अगर हमने नये को सही मानना शुरू किया तो पुराने से टूट ही जाना पड़ेगा। क्योंकि पुराना फिर गलत हो जाता है। पुराने का अर्थ हो जाता है गलत, जो पुराना है वह गलत।

पश्चिम उलटी अति पर जी रहा है। पश्चिम में अगर किसी व्यक्ति को कोई किताब कीमती है यह सिद्ध करना हो तो उसे यह सिद्ध करना पड़ता है कि यह बिलकुल नई है, यह बात कभी लिखी ही नहीं गई। अगर किसी की किताब को कोई सिद्ध कर दे कि यह तो पहले भी लिखी गई है, तो वह किताब बेकार हो गई, उसका कोई मतलब न रहा। इसलिए हर लेखक को यह सिद्ध करना पड़ता है कि वह मौलिक है, ओरिजिनल है। और ओरिजिनल होने की कोशिश में कई बेवकूफियां भी करनी पड़ती हैं। क्योंकि आदमी इतने समय से पृथ्वी पर है कि ओरिजिनल होना आसान मामला नहीं है।

अगर आप एक खूबसूरत औरत बनाते हैं तो बहुत बार खूबसूरत औरत का चित्र बनाया जा चुका है। शायद ही संभव है कि हम कोई नई खूबसूरती औरत में खोज सकें। तो फिर क्या करना पड़े? तो फिर पिकासो जैसे चित्र बनाने पड़े—कि औरत के हाथ की जगह टांग लगानी पड़े और आंख की जगह कान लगाना पड़े, तब वह ओरिजिनल हो जाए। लेकिन वह औरत नहीं रह गई, ओरिजिनल तो हो गई। पिकासो की पेंटिंग्स की इज्जत पश्चिम में बनी, क्योंकि वह बिलकुल नई थी। उनमें पुराना कुछ भी नहीं था। लेकिन पिकासो ने अभी आखिरी दिनों में एक बात कह कर उसके भक्तों को बड़ी मुश्किल में डाल दिया। उसकी साठवीं वर्षगांठ पर उससे किसी

ने पूछा कि आप जैसा मौलिक आदमी कोई भी नहीं है। तो पिकासो ने कहा, आई वाज़ जस्ट बी फुलिंग द मैन काइंड, मैं तो सिर्फ आदमियों को बेवकूफ बना रहा था।

पिकासो के इस एक वचन ने सारे पश्चिम की मौलिकता को कठिनाई में डाल दिया। बड़ी हैरानी हो गई! क्योंकि स्त्री के चेहरे में चांद तो देखा गया था, स्त्री की आंखों में कमल देखा गया था, लेकिन स्त्री की आंखों में छिपकली कभी नहीं देखी गई थी? उसको आधुनिक कवि ने देख लिया! लेकिन पिकासो ने जब यह कहा कि मैं सिर्फ लोगों को मूर्ख बना रहा था। तो बड़ा सदमा पहुंचा है पश्चिम को।

असल में अगर नया ही सही है तो नया एब्सडिटी में ले जाएगा, मूर्खता में ले जाएगा। क्योंकि बुद्धिमत्ता हजारों साल का निचोड़ होती है। विज़डम और नालेज में यही फर्क है। नालेज नई हो सकती है, विज़डम सदा ही पुरानी होती है।

ज्ञान और प्रज्ञा में यही फर्क है। ज्ञान सदा ही नया होना चाहिए, नहीं तो उसको ज्ञान कहना बेमानी है। लेकिन प्रज्ञा, बुद्धिमत्ता, विज़डम, विज़डम सदा पुरानी होगी। इसलिए जवान आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है, लेकिन विज़डम को सिर्फ बूढ़ा आदमी ही उपलब्ध हो सकता है। जवान आदमी बुद्धिमत्ता को उपलब्ध नहीं हो सकता।

हेनरी फोर्ड ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जिस दिन पचास साल से कम उम्र के लोग हुकूमत करने लगेंगे उस दिन दुनिया में बड़े खतरे हो जाएंगे। खतरे हो ही जाएंगे! लेकिन हेनरी फोर्ड को पता नहीं है कि पचास साल से कम उम्र के लोग हुकूमत करके जितना खतरा पहुंचाएंगे, पचास साल से कम के लोग दुनिया में शिक्षक होकर उससे भी ज्यादा खतरा पहुंचा दे?

असल में शिक्षक होने योग्य बुद्धिमत्ता अनुभव से झरती है। हां, अन्वेषक होने योग्य बुद्धिमत्ता, इनवेंटर और डिस्कवर्ड होने योग्य ज्ञान, युवा चित्त को उपलब्ध होता है। इसलिए बूढ़े दुनिया में आविष्कार नहीं करते। सारे आविष्कार करीब-करीब पैंतीस साल के आस-पास पूरे हो जाते हैं।

मनुष्य की सारी बड़ी खोजें नई उम्र की खोजें हैं। लेकिन मनुष्य के जीवन के सारे अनुभव वृद्ध के अनुभव हैं। और जब मैं कह रहा हूं पुराने और नये के बीच सेतु, तो मैं यह कह रहा हूं कि बूढ़े और जवान के बीच सेतु। बूढ़े और जवान के बीच एक ब्रीज चाहिए। यह संभव हो सकता है। यह संभव कैसे होगा? हम किस दिशाओं में सोचना शुरू करें कि यह संभव हो जाए।

दो-तीन दिशाएं मैं आपको सुझाना चाहूं। एक, भारत के पुरानेपन की बुनियादी भूल क्या थी यह हम समझ लें तो भारत के नयेपन की बुनयादी सुधार क्या होगा यह हमारे समझ में आ सके। भारत के पुरानेपन की एक बहुत बुनियादी भूल थी और वह बुनियादी भूल यह थी की हम जीवन को अस्वीकार कर दिए थे। हमने जीवन को कभी स्वीकार नहीं किया। हम जीवन के शत्रु रहे। हमारे मन में स्वीकृति है स्वर्ग की, मोक्ष की, हमारे मन में स्वीकृति है मृत्यु के बाद की। मृत्यु के पहले हम मजबूरी में जी रहे हैं, ए नेसेसरी ईविल की तरह।

यह जो जीवन है हमारा, यह हमारे मन में निंदा से भरा हुआ है, कंडेमड है। इस जिंदगी में सिर्फ हम पाप की वजह से भेजे गए हैं, पाप का भुगतान करने के लिए। यह जिंदगी हमारे पाप कर्मों का फल है। और जो इस जिंदगी में शुभ कर्मों को उपलब्ध हो जाएगा, उसको वापस नहीं जन्मना पड़ेगा। हमने जिंदगी की बड़ी गंदी

तस्वीर खींच रखी है। हम जिंदगी को शत्रु की तरह देख रहे हैं। कारागृह की तरह, दंड की तरह, पाप की तरह। और जो कौम जिंदगी को पाप की तरह देखेगी, दंड की तरह देखेगी, जो कौम जिंदगी को अपराध की तरह देखेगी और जो कौम जिंदगी से भागने के लिए उत्सुक होगी, वह जिंदगी को सुंदर और समृद्ध नहीं बना सकती। कारागृह को कोई पागल कैदी ही होगा कि उसकी दीवालों को सुंदर बनाने की कोशिश करे। कारागृह का कोई पागल ही कैदी होगा कि उसके सिकंचों पर रंगीन कागज चढ़ाए। कोई पागल कैदी होगा कि अपने हाथ की जंजीरों को सोने से मढ़े। नहीं, कोई नहीं मढ़ेगा। जिन जंजीरों को तोड़ना है उन्हें सोने से मढ़ने की कोई जरूरत नहीं। और जिन सिकंचों तोड़ कर बाहर निकल जाना है उन सिकंचों को सुंदर बनाने से वे और मजबूत हो जाते हैं। और जिस कारागृह से भागना है उस कारागृह की दीवालें पुती हैं, नहीं पुती हैं; स्वच्छ हैं, नहीं स्वच्छ हैं इससे क्या प्रयोजन है?

भारत जिंदगी को एक जेलखाने की तरह लेता रहा है। इससे नुकसान हुए हैं। इसके नुकसान के कारण ही हम कमजोर हुए हैं। इस वृत्ति के कारण ही हम विज्ञान न खोज सके हैं। इस वृत्ति के कारण ही हम जिंदगी को संपन्न, समृद्ध, शक्तिशाली न बना सके। इस वृत्ति के कारण हम गुलाम हुए हैं। इस वृत्ति के कारण हमने भूखे रहने को भी सांत्वना बना लिया। इस वृत्ति के कारण हमने उम्र न बढ़ाई, स्वास्थ्य न बढ़ाया, सौंदर्य न बढ़ाया। इस वृत्ति ने हमें अत्यंत दीन बना दिया सब दृष्टियों से।

भारत के पुराने मन की जो बुनियादी भूल है वह जीवन को आह्लादपूर्वक स्वीकार न करना। जीवन को दुखपूर्वक स्वीकार करना। भारत का पुराना मन पैसिमिस्टिक है, निराशावादी है। वह कह रहा है, जीवन दुख है; वह कह रहा है, जीवन छोड़ देने जैसा है। जीवन आवागमन से मुक्ति के लिए सिर्फ एक अवसर है। अगर भारत कभी भगवान के सामने भी हाथ जोड़ कर खड़ा है तो इसीलिए कि कब जीवन से छुटकारा मिले? यह हमारे चित्त की दशा है निश्चित ही जिम्मेवार हुई है। भारत जैसी बड़ी संपत्ति वाला देश, जिसके पास बड़े स्रोत थे, वह उन स्रोतों का कोई उपभोग न कर पाया। भारत जैसी विराट संख्या वाला देश, जिसके पास बड़ी शक्ति थी, वह इतनी बड़ी शक्ति को भी रहते हुए गुलाम बन सका।

बहुत छोटी ताकत की कौमें भारत पर हावी हो गइ। क्योंकि भारत के मन ने संकोच को स्वीकार कर लिया, विस्तार को इनकार कर दिया। असल में कोई जिम्मेवार नहीं है इस देश को गुलाम बनाने के लिए, हम गुलाम बनने के लिए इतने तत्पर थे कि अगर हमें कोई गुलाम न बनाता तो ही आश्चर्य होता।

कोई जिम्मेवार नहीं है हमको गरीब बनाने के लिए। लेकिन हम इतने प्रसन्न हैं गरीब बन जाने में कि जिन्होंने हमें गरीब बनाया हम उनके लिए हजार-हजार धन्यवाद से भरे हुए हैं। दीनता और दरिद्रता और दासता हमें स्वीकृत हैं। और जब हम दीन हुए, दास हुए, परेशान हुए तो हमारा सिद्धांत और अटल हो गया कि जिंदगी दुख है। हमने कहा कि ऋषि-मुनियों ने ठीक ही कहा है कि जिंदगी दुख है, देख लो कि जिंदगी दुख है।

हमने इस बात से लड़ने की कोशिश न की। इस बात से हम बल्कि प्रसन्न हुए कि हमारे सब सिद्धांत सही निकले। अब हमारे मुल्क में साधु-संन्यासी लोगों को समझा रहा है कि यह कलियुग है और ऋषि-मुनि पहले कह गए कि लोग दुखी होंगे, मरेंगे, परेशान होंगे, भूखे रहेंगे। हम अपने शास्त्र को देख कर बड़े प्रसन्न हो रहे हैं कि हमारा शास्त्र कितना सही है कि कलियुग आ गया। यह कलियुग आने की वजह से शास्त्र में लिखा है ऐसा

मैं नहीं मानता, यह शास्त्र में लिखा है इसलिए इस कलियुग को आने में आसानी हो गई है। क्योंकि हमने स्वीकार कर लिया है कि कलियुग आएगा ही। अगर न आता तो शायद हम दुखी होते। हम कहते कि ऋषि-मुनि और गलत हो सकते हैं? सर्वज्ञ, जो सब जानते थे वे गलत हो सकते हैं? नहीं; इस दुनिया में कोई सब जानने वाला पैदा नहीं हुआ। और जिस कौम में सर्वज्ञ पैदा हो जाएंगे वह कौम अज्ञानी हो जाएगी। क्योंकि जानने को सदा शेष है, जानना रोज है, नई खोज रोज करनी है।

एक जो बुनियादी भूल मुझे दिखाई पड़ती है पुराने भारत की, जिसकी वजह से भारत नया नहीं हो सका, वह यही है कि हम शरीर को इनकार करते हैं, भौतिकता को इनकार करते हैं, संसार को इनकार करते हैं। लेकिन ध्यान रहे, जो संसार को इनकार कर देगा वह परमात्मा तक नहीं पहुंच सकेगा। क्योंकि परमात्मा तक पहुंचने वाले सब रास्ते संसार से होकर गुजरते हैं। और जो आदमी यह कहेगा कि हम तो मंदिर के स्वर्ण-शिखरों को मानते हैं, हम नींव के गंदे पत्थरों को नहीं मानते। तो ध्यान रहे, वह स्वर्ण-शिखर रखा बैठा रहे, वे कभी मंदिर पर चढ़ेंगे न। ये बड़े मजे की बात है, जिंदगी के बड़े राज की बात है कि अगर आप चाहें तो मंदिर की नींव बना कर छोड़ सकते हैं, मंदिर के नींव के पत्थरों के लिए शिखर का होना अनिवार्य नहीं है, लेकिन मंदिर का शिखर बिना नींव के पत्थर के नहीं हो सकता।

ये बड़े मजे की बात है कि जिंदगी में निकृष्ट हो सकता है श्रेष्ठ के बिना, लेकिन श्रेष्ठ निकृष्ट के बिना नहीं हो सकता। असल में, सब श्रेष्ठ को निकृष्ट पर ही आधार बनाना पड़ता है। निकृष्ट का मेरे मन में अर्थ यह है कि जो श्रेष्ठ का आधार बनता हो। निकृष्ट का मेरे मन में कोई कंडेमनेटरी, कोई निंदात्मक अर्थ नहीं है। निकृष्ट का मतलब है कि जो नीचे होता है। लेकिन हर ऊंची चीज के लिए किसी को नीचे होना ही पड़ेगा। और मजे की बात यह है कि ऊंची चीज के बिना भी नीचा हो सकता है, लेकिन नीची चीज के बिना ऊंचा नहीं हो सकता।

आपका शरीर बिना आत्मा के भी दिखाई पड़ जाता है, लेकिन आपकी आत्मा बिना शरीर के दिखाई नहीं पड़ती। एक आदमी मर जाता है तो हम देखते हैं कि शरीर पड़ा रह गया, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती है। लेकिन ऐसा नहीं मामला होता है कि आत्मा खड़ी है शरीर कहां चला गया?

शरीर आधार है, बुनियाद है। विज्ञान हो सकता है बिना धर्म के, लेकिन धर्म बिना विज्ञान के नहीं हो सकता। सिर्फ बातचीत हो सकती है। तो हम धर्म की बातचीत कर रहे हैं, क्योंकि आधार तो हमारे पास नहीं है, आधार हमारे पास नहीं हैं। एक आदमी का अगर पेट भरा हो तो जरूरी नहीं कि वह कविता करे ही। एक आदमी का पेट भरा हो तो जरूरी नहीं कि वह सितार बजाए ही। एक आदमी का पेट भरा हो तो जरूरी नहीं कि भगवान की खोज करे ही। लेकिन अगर एक आदमी का पेट खाली हो तो पक्का है कि सितार न बजा सकेगा, भगवान की खोज न कर सकेगा, गीत न गा सकेगा। गीत ऊंचाई है, पेट बड़ी नीची चीज है। लेकिन जो नीचे को इनकार कर देते हैं उनकी ऊंचाइयां अपने आप नष्ट हो जाती हैं।

इस देश ने नीचाई को इनकार करने की भूल की है। और हम ऊंचाई को बचाने की कोशिश कर रहे हैं पांच हजार साल से। और जिस पर वह बच सकती थी उसको इनकार किया हुआ है। शरीर के हम दुश्मन थे। बल्कि हमारे शास्त्रों में कहा हुआ है कि जिसको आत्मा को पाना है उसे शरीर से लड़ना पड़ेगा। तो ठीक है, जिसको मंदिर के ऊपर स्वर्ण का शिखर चढ़ाना है उसे नींव के पत्थर उखाड़ने चाहिए। जरूर मंदिर का शिखर रख दिया

जाएगा। लेकिन वह मंदिर का शिखर शिखर पर नहीं रखा जाएगा। वह जमीन की गंदगी में पड़ा रहेगा। असल में, जमीन की गंदगी से मंदिर के शिखर को बचाने के लिए कुछ पत्थरों को गंदगी में खड़े रहने की तैयारी दिखानी पड़ती है। उन पत्थरों को आदर देना, क्योंकि उन पत्थरों के कारण ही शिखर आसमान पर उठ पाता है। यह आत्मा की सारी संभावना शरीर के बिना संभव नहीं है। यह शरीर के कारण ही आत्मा ऊंचाइयां छू पाती हैं। शरीर को धन्यवाद लेकिन हम न दे पाए। शरीर को हमने सताया जरूर, हम प्रेम न कर सके। इसलिए शरीर से जो हो सकता था वह नहीं हो पाया। और शरीर के बिना जो हो ही नहीं सकता था उसकी हम बातचीत कर रहे हैं बैठ कर। घरों में लोग आत्मा-परमात्मा की बात करेंगे। लेकिन वह बातचीत होगी। ब्रह्म की चर्चा चर्चा ही रह जाएगी। वह ऐसे ही है जैसे कोई हवाई जहाज में उड़ने की बात करता हो, लेकिन हवाई जहाज बनाने वाले कारखाने न हो, लोहा न हो, इंजीनियर न हो, तो फिर घर में बैठ कर बात की जा सकती है, आंख बंद करके सपने देखे जा सकते हैं।

भारत धर्म के सपने देख रहा है। क्योंकि बिना विज्ञान के आधार के धर्म की ऊंचाइयां छुई ही नहीं जा सकती है। भारत त्याग के सपने देख रहा है, क्योंकि त्याग केवल उनके ही लिए है जिनके पास कुछ हो। असल में त्याग गरीब आदमी की क्षमता नहीं है, त्याग गरीब आदमी का सुख नहीं है। त्याग समृद्ध आदमी की आखिरी लग्जूरी, वह आखिरी आनंद है, आखिरी विलास है।

असल में, जब कोई महावीर या कोई बुद्ध अपने महल को लात मार कर जंगल में चला जाता है, तो आप यह मत समझना यह उसी जगह पहुंच जाता है जहां जंगल का आदिवासी है? यह उसी जगह नहीं पहुंचता। क्योंकि आदिवासी जंगल में इसलिए है कि महल नहीं बना सका और यह आदमी जंगल में इसलिए है कि महल अब बेमानी हो गए हैं। ये दोनों एक जगह खड़े होकर भी इनके बीच जमीन-आसमान का फासला है।

बुद्ध छोड़ सके। छोड़ वही सकता है जिसके पास है। और छोड़ने की क्षमता उस दिन आती है जिस दिन होने की क्षमता इतनी बढ़ जाती है कि अब और होने का कोई मतलब नहीं रह जाता। असल में, गरीब देश त्यागी नहीं हो सकता, सिर्फ त्याग की बातें कर सकता है। इसलिए हमारे त्यागी को भी आप अगर देखने जाएंगे तो उसकी पकड़ भी त्याग पर नहीं दिखाई पड़ेगी।

अभी मैं एक संन्यासी के आश्रम गया। अब वहां बात चल रही है धर्म की, त्याग की, और लोग रुपये चढ़ाते हैं, वे जल्दी से बात बंद करके पहले रुपये को नीचे सरका देते हैं, फिर ब्रह्म की चर्चा शुरू हो जाती है। बड़ी कठिन बात मालूम पड़ती है। रुपये के लिए ब्रह्म की चर्चा को भी रुकना पड़ता है। ठीक ही मालूम होता है। रुकना पड़ेगा। क्योंकि बिना रुपये के ब्रह्म की चर्चा भी नहीं हो सकती है।

इसमें में उन संन्यासी को दोष नहीं देता। उनके रुपये सरकाने को दोष नहीं देता। दोष देता हूं उनकी इस वृत्ति को, इस रुपये के खिलाफ वे बोल रहे हैं और इसी रुपये को सरका रहे हैं।

हिंदुस्तान जैसा कृपण समाज खोजना मुश्किल है। और हिंदुस्तान जैसा त्याग की बात करने वाला भी कोई समाज नहीं है। अब त्यागी और कृपण के बीच कोई संगति नहीं मालूम पड़ती। हिंदुस्तान की कंजूसी और हिंदुस्तान के त्याग की बातों के बीच कोई संबंध नहीं मालूम पड़ता।

हिंदुस्तान जैसा पदार्थवादी, मैटीरियलिस्ट मुल्क भी खोजना कठिन है। लेकिन हिंदुस्तान जैसी स्प्रिट और स्प्रिचुअलिटी की बात करने वाला कोई भी नहीं है जमीन पर। मामला क्या है? गलती कहां हो गई है? हमारा आदमी एकदम भौतिकवादी है। उसकी सारी चिंतना भौतिकवाद के आस-पास घूमती है। वह रात सपने भी रुपये के देखता है और तिजोरी के पास ही सोता है और ताला भी लगाता है तो दुबारा भी हिला कर देखता है कि चाबी ठीक से लग गई कि नहीं लग गई। लेकिन मंदिर जा रहा है।

मेरे सामने ही एक सज्जन रहते हैं वे रोज सुबह मंदिर जाते हैं ताला लगा कर, फिर दस कदम वापस लौट कर ताले को हिला कर देखते हैं। एक दिन मैं बैठा था तो मैंने उनसे कहा कि आप यह दुबारा ताले को हिला कर क्यों देखते हैं?

उन्होंने कहा कि अब आपने पूछ ही लिया, आपके संकोच की वजह से कई दफे मैं देख भी नहीं पाता। अब आपने पूछ ही लिया है तो मुझे शक हो जाता है कि पता नहीं लगा है ठीक नहीं लगा।

तो मैंने कहा, सौ कदम चल कर फिर नहीं होता शक?

उन्होंने कहा, होता है, लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाता कि लोग क्या कहेंगे?

और मैंने कहा, जब मंदिर में भगवान के सामने खड़े होते हैं तो भगवान दिखाई पड़ता है कि ताला दिखाई पड़ता है?

उन्होंने कहा, आपको कैसे पता चल गया? हैरानी की बात है! जल्दी-जल्दी किसी तरह पूजा कर के भागता हूं। दिखाई तो ताला ही पड़ता है!

लेकिन मंदिर में खड़े देख कर भ्रांति हो जाएगी कि यह आदमी भगवान के सामने खड़ा है। यह आदमी पूरे वक्त तिजोरी के सामने खड़ा है। यह आदमी भगवान के सामने खड़ा नहीं हो सकता। हमारा चित्त तो है बौद्धिक, होगा ही, क्योंकि हमने भौतिक जिंदगी की मांग पूरी नहीं की। मुझे इसमें कोई बुराई नहीं दिखाई पड़ती, स्वाभाविक है। लेकिन जब हम इसको इनकार करते हैं तब रुग्णता शुरू हो जाती है।

जो आदमी भूखा है वह अगर भगवान के सामने खड़ा हो और उसे भगवान न दिखाई पड़ कर रोटी दिखाई पड़े तो इसमें बुराई क्या है? उसे रोटी दिखाई पड़ेगी। लेकिन कारण क्या है? इस आदमी ने रोटी की मांग पूरी नहीं की। भारत ने आदमी की बुनियादी जरूरतों की मांग आज तक पूरी नहीं की है। भारत आज भी बुनियादी मांगों के मामले में अत्यंत असहाय और दीन है। न हमारे पास ठीक भोजन है, न ठीक कपड़े हैं, न ठीक शरीर है, न ठीक सौंदर्य है। हमारे पास कुछ भी नहीं है, जिंदगी की जरूरी चीजें हमारे पास नहीं हैं। और तब हम जिंदगी की उन बातों की बातें कर रहे हैं जो एक अर्थ में गैर-जरूरी हैं। वह जरूरी बनती हैं जब जरूरत की सब चीजें पूरी हो जाएं। तब वह भी जरूरी बन जाती हैं किसी अशोक के लिए या किसी अकबर के लिए धर्म एक जरूरत हो जाती है। हो जानी चाहिए। अकबर के लिए धर्म एक जरूरत है, एक नीड है। लेकिन हमारे लिए नहीं हो सकती, हमारी जरूरतें कुछ और हैं।

इसलिए जब हम भगवान के सामने भी जाते हैं तो कोई हाथ जोड़ कर कहता है मेरे लड़के को नौकरी लगवा दो, कोई कहता है मेरी लड़की की शादी करवा दो, कोई कहता है मेरी पत्नी की बीमारी ठीक कर दो। हम भगवान के पास भी क्या मांगने जाते हैं? बहुत बेशर्म हैं हम। जो काम हमें कर लेना चाहिए वह हम भगवान से मांगने जाते

हैं। और जो हम नहीं कर सके, ध्यान रहे, वह भगवान नहीं करेगा। क्योंकि उस सबको करने की पूरी क्षमता उसने हमें दे दी है। अब उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं है। रोटी हम पैदा कर सकते हैं, कपड़े हम पैदा कर सकते हैं, मकान हम बना सकते हैं। इसमें भगवान को बीच में लाकर कष्ट देने का कोई भी कारण नहीं। लेकिन हम पांच हजार साल से कष्ट दिए जा रहे हैं। और अगर भगवान हमसे डर कर कहीं छिप गया हो तो बहुत हैरानी की बात नहीं है। और अगर उसने अपने कानों का आपरेशन करवा लिया हो और हमारी प्रार्थना न सुनता हो तो उचित ही किया है, नहीं तो वह पागल हो जाता।

जो काम हम कर सकते हैं उसके लिए किसी और से कहने जाना नपुंसकता है, इंपोटेंस है। असल में, भगवान के सामने जाने का वह आदमी अधिकारी है कि जिसने अपनी जिंदगी का पूरा काम पूरा कर दिया और अब भगवान के सामने पूछने गया है कि अब और क्या? असल में, और काम पूछने जो गया है भगवान के सामने, जो पूछने गया है कि जो हो सकता था वह हो गया, अब जो नहीं हो सकता उसकी कुछ बात करें।

जो पूछने गया है कि जिंदगी का सारा काम निपटा दिया है अब और कोई काम है इस जिंदगी के ऊपर? जमीन की सारी बात पूरी हो गई है, आकाश की भी कोई बात है? शरीर का सारा इंतजाम हो गया है, शरीर के ऊपर भी मनुष्य का कोई व्यक्तित्व है? जो भगवान के मंदिर में सारे काम मंदिर के बाहर के पूरे करके पहुंचा है, शायद भगवान के काम उसके ही उपयोग में आ पाते हैं अन्यथा नहीं आ पाते हैं।

पुराना भारत शरीर के विरोध में अध्यात्मवादी था इसलिए शरीरवादी हो गया, अध्यात्मवादी नहीं हो पाया। नये भारत के साथ खतरा है जो मैंने कहा कि कहीं वह पुराने की प्रतिक्रिया में अब निपट भौतिकवादी न हो जाए। और कहे कि पांच हजार साल तो अध्यात्म की बकवास हो चुकी, अब हम छोड़ना चाहते हैं। यह खतरा है, और यह खतरा बहुत वाइटल है, बहुत जीवंत है। यह खतरा बहुत ही ऐसा है कि शायद ही हम इससे बच सकें। अगर बच जाएं तो सौभाग्य, न बच पाएं तो किसी से शिकायत करने का भी कोई उपाय न होगा।

क्योंकि पांच हजार साल से हम इतने परेशान हो गए हैं अध्यात्म की बात करते-करते कि पेंडुलम अब मैटीरियलिज्म की तरफ सीधा घूम जाएगा। इसलिए हिंदुस्तान के कम्युनिस्ट हो जाने की संभावना रोज बढ़ती जाएगी। उसके लिए हिंदुस्तान के कम्युनिस्ट जिम्मेवार नहीं होंगे, न तो डांगे हिंदुस्तान को कम्युनिस्ट बना सकते हैं और न पी.सी. जोशी बना सकते हैं और न राडरे बना सकते हैं। हिंदुस्तान को अगर कम्युनिस्ट बनाएंगे तो हिंदुस्तान के पांच हजार साल के ऋषि-मुनि उसके लिए जिम्मेवार होंगे। क्योंकि उन्होंने इतनी बकवास की है अध्यात्म की कि हिंदुस्तान के बच्चे अगर उनके खिलाफ चले जाएं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। यह रिएक्शन होगा।

हिंदुस्तान में कम्युनिज्म या हिंदुस्तान में भौतिकवाद रेवल्यूशन नहीं होगी, रिएक्शन होगा। हिंदुस्तान में कम्युनिज्म क्रांति नहीं है प्रतिक्रिया है। वह हिंदुस्तान के पांच हजार साल की दुखद कहानी का विरोध है। और अगर आज आपके बच्चे मंदिर जाने से इनकार कर रहे हैं, तो ध्यान रखना, बच्चे जिम्मेवार नहीं हैं, आप ही जिम्मेवार हैं। आपने मंदिर ऐसा बनाया जिसमें कोई बुनियाद नहीं है, जो मरा हुआ है, जिसमें जिंदगी का कोई आधार नहीं है।

अगर आपके बच्चे आपकी गीता को फेंक रहे हैं, तो उसका कारण है। क्योंकि भूखे पेट पर रखी गई गीता सुख नहीं देती, सिर्फ दुख देती है, उतारने की जरूरत पड़ जाती। अगर आपके बच्चे अब मानने को राजी नहीं हैं कि कृष्ण बांसुरी बजाते रहे होंगे, क्योंकि बांसुरी बजाने के लिए जिंदगी के लिए जितनी जरूरत है वह कोई भी पूरी होती दिखाई नहीं पड़ती। तो अगर कृष्ण पर शक आ रहा हो आपके बच्चों को तो वे जिम्मेवार नहीं हैं हम ही जिम्मेवार हैं। क्योंकि हमने जो हालत पैदा की है, वह हालत प्रतिक्रिया में ले जाने वाली है। खतरा बहुत है। और खतरा बड़े से बड़ा खतरा यह है कि हमने अध्यात्मवाद के दुख झेल लिए, कहीं अब हमें भौतिकवाद के दुख न झेलने पड़ें। कहीं ऐसा न हो कि हम अकेला शिखर लिए बैठे रहे हैं और नींव न भरी, अब हम नींव भर कर बैठ जाएं और मंदिर न बनाएं। इसका बहुत डर है।

इसलिए भारत को अध्यात्मवाद के नीचे भौतिकवाद की नींव देनी है, अध्यात्मवाद के खिलाफ भौतिकवाद का आंदोलन नहीं करना है। असल में, भारत को अपने ऋषि-मुनियों के लिए वह नींव देनी है जिसको वे खुद इनकार करते रहे हैं। असल में, भारत को महावीर और बुद्ध के पैरों के नीचे आइंस्टीन और न्यूटन को खड़ा करना है। क्योंकि उनके बिना महावीर और बुद्ध अब खड़े नहीं रह सकते। उनकी मूर्तियां गिर जाएंगी और चूर-चूर हो जाएंगी और मिट्टी में मिल जाएंगी, लोग उनके ऊपर जूते रख कर चलेंगे, और कोई उपाय नहीं रह जाएगा।

विज्ञान अगर भारत के मन का आधार बन जाए तो भारत की आत्मा धर्म की उड़ान ले सकती है। और मैं विज्ञान और धर्म में कोई विरोध नहीं देखता। लेकिन कठिनाई है, धार्मिक आदमी विरोध देखता है, और विज्ञान पढ़ने वाला विद्यार्थी भी विरोध देखता है। धार्मिक आदमी मानता है कि विज्ञान की बातों ने धर्म नष्ट कर दिया और वह विज्ञान की शिक्षा पाने वाला युवक मानता है कि धर्म की बकवास अंधविश्वास है, इसका विज्ञान से क्या संबंध है?

एक खाई, एक जेनरेशन गैप पैदा हो रहा है। हिंदुस्तान में यह खाई जितनी बड़ी है उतनी दुनिया में कहीं भी नहीं है। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच इतनी बड़ी खाई हो रही है कि उसके आर-पार हाथ फैलाने मुश्किल मालूम हो रहे हैं। मैं नहीं मानता हूं ऐसे घर जिनमें बाप और बेटे बैठ कर बात भी करते हैं। कोई कम्युनिकेशन नहीं है। मैं सैकड़ों घरों में ठहरता हूं। बाप और बेटे बच कर निकलते हैं। या तो बाप को कोई उपदेश देना होता है तब बेटे को दो मिनट रोकता है, या बेटे को बाप की जेब से कुछ निकालना होता है तब वह दो मिनट के लिए मिलता है। लेकिन कोई कम्युनिकेशन नहीं है, कोई संवाद नहीं है, कोई दोनों के बीच कोई संबंध नहीं रह गया है। बाप किसी और दुनिया का हिस्सा है, बेटा किसी और दुनिया का हिस्सा है, बेटी कहीं और जी रही है, मां कहीं और जी रही है। न मां बेटी की बात समझ पाती, न बेटी मां की बात समझ पाती। उनके पास कॉमन लेंग्वेज भी नहीं है, समान भाषा भी नहीं जिसमें बातचीत हो सके।

हिंदुस्तान के साधु एक तरफ खड़े हैं वे अपनी बातचीत जारी रखे हुए हैं, वे अपने पुराने का गुहार मचा रहे हैं। हिंदुस्तान के जवान एक तरफ खड़े हुए हैं वे अपनी बातचीत जारी रखे हुए हैं वह अपनी बात चिल्ला रहे हैं और दोनों के बीच कोई बातचीत नहीं हो रही।

जुंग ने एक संस्मरण लिखा है कि उसके पागलखाने में दो प्रोफेसरों को इलाज के लिए लाया गया। असल में, जो प्रोफेसर एकाध दफे दिमाग के इलाज के लिए न जाए वह थोड़ा ठीक प्रोफेसर नहीं है। ऐसा जानना भी चाहिए। दोनों का दिमाग खराब हो गया है। उन दोनों को लाया गया है, उन दोनों का जुंग अध्ययन करता है तो बड़ा हैरान हो जाता है। वह देखता है कि वे अपने कमरे में बैठे दोनों बात करते हैं, बातें बड़ी ऊंची होती हैं, लेकिन एक बड़ी अजीब बात है कि जो एक प्रोफेसर जब बात करता है तो दूसरा चुप रहता है, और जब दूसरा बात करता है तो पहला चुप रहता है। हालांकि उन दोनों की बात में कोई संबंध नहीं है। पहला अगर आकाश की बात करता है तो दूसरा जमीन की बात करता है। उनमें कोई संबंध नहीं। खैर दो पागलों के बीच में कोई बात का संबंध न हो यह समझ में आता है। जुंग को दिक्कत यह होती है कि जब दोनों पागल हैं और बात में कोई संबंध नहीं तो जब एक बोलता है तो दूसरा चुप क्यों हो जाता है? उसको बोलते रहना चाहिए।

वह अंदर जाता है और उनसे पूछता है कि मेरी समझ में आ गई सब बात, एक समझ में नहीं आती, कि जब एक बोलता है तो दूसरा चुप क्यों हो जाता है? तो वे दोनों हंसते हैं, वे कहते हैं कि आप समझते हैं कि हमें कनवरसेशन का नियम नहीं मालूम। नियम हमें मालूम है। बातचीत का नियम यह है कि जब एक बोले तब तुम चुप रहो।

तो जुंग कहता है कि जब तुम्हें इतना मालूम है बातचीत का नियम कि जब एक बोले तब तुम चुप रहो, तब तुम्हें यह भी तो पता होना चाहिए कि जो एक बोल रहा है तुम्हारे बोलने में उससे कुछ संबंध हो। तो वे दोनों पागल हंसते हैं, वे कहते हैं खैर हम तो पागल हैं, लेकिन हमने ऐसे आदमी ही नहीं देखे जिनकी बातचीत में कोई संबंध हो। हम तो पागल हैं लेकिन हमने और आदमी भी नहीं देखे जिनकी बातचीत में कोई संबंध हो।

लेकिन यह बात शायद उन पागलों की सबके बाबत सही न हो, लेकिन इस वक्त, इस मुल्क में यह सही हो गई है। बाप और बेटे की बातचीत में कोई संबंध नहीं, दो पागलों की बातचीत है। गुरु और शिष्य के बीच कोई संबंध नहीं, दो पागलों की बातचीत है। गुरु अपनी कहे चला जा रहा है, शिष्य अपनी कहे चला जा रहा है। गुरु ही बोल रहा है और वह खुद ही सुन रहा है और शिष्य बोल रहा है और वह खुद ही सुन रहा है। सुनने और बोलने का काम एक ही आदमी को खुद ही करना पड़ रहा है। बाप जो बोलता है, बाप ही सुनता है, बेटा सुनता नहीं। जब बाप बोलता है तब बेटा इस तैयारी में होता है कि कैसे इस सुनने के दायरे के बाहर हो जाए। जब बेटा बोलता है तब बाप ऐसे सुनता है जैसे कि यह बात न ही सुनी होती तो अच्छा था।

इन दोनों पीढ़ियों के बीच जो यह गैप है, यह गैप नये भारत के निर्माण में सबसे बड़ी बाधा बनेगा। यह जो अंतराल है यह अंतराल नये भारत को कैसे बनने देगा? क्योंकि नये भारत को बनाना है नये लड़कों को और नये भारत के लड़के अगर अपनी पुरानी पीढ़ियों की सारी समझ के बिना भारत को बनाएंगे, तो भारत एक मैटीरियलिस्ट मुल्क होगा, एक भौतिकवादी मुल्क होगा। जिसमें अध्यात्म के लिए हमने सब आधार तोड़ दिए होंगे, जिसमें हमने अध्यात्म के लिए सब ओपनिंग खत्म कर दी होंगी, जिसमें हम अध्यात्म के फूल नहीं खिलने देंगे। अगर भारत नये लड़के बनाएंगे सिर्फ, तो भारत निपट शरीरवादी मुल्क होगा, जिसमें आत्मा को शायद हम धीरे-धीरे भूलते चले जाएंगे। और अगर भारत के नये बच्चे निर्माण न कर पाएं और भारत के बूढ़े जीत

जाएं और वे ही भारत को बनाए चले जाएं, तो भारत का जो पुराना रोग है वह अपनी जगह रहेगा, उसे मिटाया नहीं जा सकता।

पुराने आदमी की समझ चाहिए, नये आदमी की शक्ति चाहिए। पुराने आदमी का अनुभव चाहिए, नये आदमी का भविष्य चाहिए। अनुभव अतीत से आता है, भविष्य आशाओं से आता है। बूढ़े आदमी के पास आशाएं नहीं होती हैं, अतीत होता है, अनुभव होता है। नये आदमी के पास आशाएं होती हैं, अनुभव नहीं होता, अतीत नहीं होता।

असल में, पुरानी और नई पीढ़ी सदा उस हालत में होती हैं जिस हालत में कभी एक जंगल में आग लग गई थी और एक अंधे और लंगड़े ने अपने को पाया था। अंधा देख नहीं सकता था, लंगड़ा भाग नहीं सकता था। आग भयंकर थी और दोनों की मौत निश्चित थी। करीब-करीब भारत ऐसी आग के बीच में खड़ा है। जहां एक पीढ़ी अंधी है और एक पीढ़ी लंगड़ी है। बूढ़ी पीढ़ी लंगड़ी है और नई पीढ़ी अंधी है और आग भयंकर है, और दोनों जल कर मर जाएंगी। लेकिन उन दोनों लंगड़े और अंधे आदमियों ने बड़ी समझ का उपयोग किया। लंगड़ा राजी हो गया कंधे पर बैठने को, अंधा राजी हो गया लंगड़े को कंधे पर बिठाने को। अंधा राजी हो गया लंगड़े की आंखों से काम लेने को, लंगड़ा राजी हो गया अंधे के पैरों से काम लेने को। वे दोनों जंगल से बाहर निकल गए थे। क्योंकि अंधा नीचे था और चल रहा था, लंगड़ा ऊपर था और देख रहा था। दो आदमियों ने एक आदमी का काम कर लिया था।

हमेशा जब भी सृजन का कोई क्षण हो किसी देश में तो पुरानी और नई पीढ़ी इसी हालत में पड़ जाती है। नई पीढ़ी के पास आंख तो होती है लेकिन दौड़ने के पैर नहीं होते। पुरानी पीढ़ी बैठने को राजी होगी? ये दौड़ते जवान बूढ़ों का बोझ लेने को तैयार होंगे? ये मरते हुए बूढ़े इन जवानों के दौड़ने की और गति को झेलने के लिए तैयार होंगे? ये सवाल हैं नये भारत के लिए।

अभी मुझे नहीं दिखाई पड़ता कि ऐसा हो रहा है। अभी ऐसा हो रहा है कि अंधे दौड़ रहे हैं तेजी से। तो बजाए रास्ते पर पहुंचने के वे आग में पहुंच जाते हैं। वह सब तरफ आग लग रही है। वह आग बहुत तरह की है, बहुत रूपों में। इसलिए इस वक्त आग के केंद्र भारत में ही नहीं, सारी दुनिया में यूनिवर्सिटीज बन गई हैं। क्योंकि वहां पैर स्वस्थ और आंखें नहीं हैं, ऐसे लोगों की बड़ी जमातें इकट्ठी हो गई हैं।

इस वक्त सारी दुनिया में उपद्रव और आग का केंद्र विश्वविद्यालय है। आग सबसे जोर से वहां है और वहां आंखहीन शक्तिशाली पैर वाले युवक हैं, जो दौड़ेंगे। इसलिए नहीं कि कहीं पहुंचना है, क्योंकि कहीं पहुंचने का खयाल तो आंख को होता है। इसलिए कि पैरों में ताकत है और दौड़े बिना नहीं रहा जा सकता, दौड़ना ही पड़ेगा। दूसरी तरफ बूढ़े कट कर पड़ गए हैं—वे चाहे मंदिरों में बैठे हों, चाहे आश्रमों में बैठे हों, चाहे अपने घरों में बैठे हों, वे कट कर बैठ गए हैं। उनके पास आंख हैं वे देख सकते हैं आग कहां लगी है। लेकिन पैर उनके पास नहीं हैं। न तो वे दौड़ सकते हैं और न ही वे दौड़ने वाले लोगों की सहायता लेने को तैयार हैं।

नये भारत का जन्म हो सकता है इस आग के बाहर। बूढ़े और जवान को भारत में सेतु निर्माण करना पड़े। और इधर मैं निरंतर सोचता हूं कि हमें ऐसे कुछ शिविर, और ऐसी कुछ सेमीनार, और ऐसे कुछ मिलन के स्थान बनाने चाहिए जहां नई और पुरानी पीढ़ी आमने-सामने बात कर सके। जहां बाप और बेटे अपनी तकलीफें और

अपनी संभावनाएं और अपने दुख कह सकें। और जहां बेटे बाप को सहानुभूति से सुन सके और जहां बाप बेटों को सहानुभूति से सुन सके।

अगर हिंदुस्तान में ऐसा डायलाग पैदा नहीं होता, तो हम नये भारत का निर्माण न कर पाएंगे। भारत नया हो जाएगा, लेकिन नये हो जाने से तो सब कुछ नहीं हो जाता। नया हो जाना दुखद भी हो सकता है, नया हो जाना गलत भी हो सकता है, नया हो जाना और बड़े गड्ढे में गिर जाना भी हो सकता है। हां, कई बार सिर्फ नये हो जाने से भी राहत मिलती है, क्योंकि बदलाहट की राहत होती है। लेकिन थोड़ी देर बाद पता चलता है कि बीमारियां सब अपनी जगह खड़ी हैं या और भयंकर होकर आ गई हैं।

आदमी मरघट ले जाते हैं किसी को, अरथी को, तो रास्ते में कंधे बदल लेते हैं। एक कंधा दुखने लगता है तो अरथी को दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। कंधा बदलने से वजन कम नहीं होता, अरथी में कोई फर्क नहीं पड़ता, रास्ता वही का वही होता है लेकिन दूसरे कंधे पर थोड़ी देर राहत मिल जाती है, नया कंधा होता है थोड़ी देर झेल लेते हैं।

भारत सिर्फ कंधा तो नहीं बदल लेगा कि बीमारियां सिर्फ कंधा बदल लें और पुरानी बीमारियां नये नाम ले लें और पुरानी शराबें नई बोतलों में भर जाएं? तो भी नया तो हो जाएगा, ऐसा लगेगा कि नया हो गया है। लेकिन नया हो भी नहीं पाएगा कि पता चलेगा कि सब पुराना अपनी जगह खड़ा है।

नहीं; भारत को मात्र नया नहीं हो जाना है। भारत को शुभ की दिशा में, सत्य की दिशा में, शांति की दिशा में, शक्ति की दिशा में, आनंद की दिशा में, जीवन की दिशा में, मुक्ति की दिशा में, एक साथ एक संतुलित व्यक्तित्व को पैदा करना है। जिसमें पुराने की भूल न हो, पुराने की सब समृद्धि हो, जिसमें नये की नासमझी न हो, नये का सारा नया ज्ञान हो।

एक अभूतपूर्व घटना घट गई है मनुष्य के इतिहास में, इस बीसवीं सदी में, उसकी मैं बात करूं, फिर मैं अपनी बात पूरी कर दूं। और वह घटना यह घट गई है कि आज से कोई दो सौ वर्ष पहले तक दुनिया में आदमी और आदमी के ज्ञान में कभी बहुत फासला नहीं पड़ता था। असल में, आदमी सदा ही अपने ज्ञान के आगे होता था और ज्ञान सदा पीछे होता था। आज से दो सौ साल पहले तक आदमी के पीछे ज्ञान छाया की तरह था। वह आदमी के आगे नहीं होता था सदा आदमी के पीछे होता था। क्योंकि ज्ञान का विकास अति मद्धिम था, उसकी गति बहुत धीमी थी। जीसस के मरने के साढ़े अठारह सौ वर्षों में जितना ज्ञान दुनिया में पैदा हुआ उतना ज्ञान पिछले डेढ़ सौ वर्षों में पैदा हुआ। और पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ उतना पिछले पंद्रह वर्षों में पैदा हुआ। और जितना पिछले पंद्रह वर्षों में ज्ञान पैदा हुआ उतना पिछले पांच वर्षों में पैदा हुआ। अब हम पांच वर्षों में इतना ज्ञान पैदा करते हैं जितना पुरानी दुनिया साढ़े अठारह सौ वर्षों में पैदा करती थी।

साढ़े अठारह सौ वर्षों में अनेक पीढ़ियां बदल जाती थीं और ज्ञान धीरे-धीरे बदलता था और आदमी ज्ञान के बदलने की चोट को कभी अनुभव नहीं करता था। वह इतने आहिस्ता बदलता था, आहिस्ता बदलता था कि आदमी उसमें रच-पच जाता था, वह उसका खून बन जाता था।

एक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था। उसने एक मेंढक को उबलते हुए पानी में डाल दिया, वह मेंढक छलांग लगा कर बाहर निकल गया। क्योंकि उबलने का संघात इतना तीव्र था! फिर उसने उस मेंढक को साधारण पानी में

रखा और आहिस्ता-आहिस्ता पानी को गर्म करना शुरू किया, वह गर्म करता गया, इस गर्म करने में उसने कोई आठ घंटे लगाए। पानी उबलने लगा, मेंढक वहीं बैठा रहा और उबलता रहा। आठ घंटे में वह मेंढक जो है कंडीशंड हो गया। आठ घंटे में वह धीरे-धीरे-धीरे-धीरे इतनी धीमी गति से गर्मी बढ़ी कि मेंढक उसके लिए राजी होता गया। मेंढक आगे बढ़ता गया, राजी होता गया, गर्मी पीछे चलती रही, मेंढक सदा आगे होता गया। छलांग उसने वहां भी लगाई लेकिन पूरे बर्तन के बाहर छलांग लगाने की जरूरत न पड़ी। पुराने गर्मी का जो उसके शरीर का तल था, उसने इंच भर आगे बढ़ कर छलांग ले ली और अपने शरीर की गर्मी को आगे कर लिया। वह गर्म होता रहा, मर गया, उसे पता नहीं चला।

लेकिन उतने ही उबलते पानी में नये मेंढक को डालो, छलांग लगा कर बाहर हो जाएगा। क्यों? क्योंकि गर्मी बहुत आगे, मेंढक बहुत पीछे पड़ गया और मेंढक को मौका नहीं मिला कि वह गर्मी के लिए एडजेस्ट हो जाए। पुरानी दुनिया एडजेस्टीड थी। उसका एडजेस्टमेंट पक्का था। क्योंकि ज्ञान इतने धीमे बढ़ता था कि एक आदमी की जिंदगी में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ते थे। जन्म लेते वक्त आदमी दुनिया को जहां पाता था करीब-करीब वहीं मरते वक्त छोड़ता था। न रास्ते बदलते थे, न बैलगाड़ी बदलती थी, न खेती बदलती थी, न मकान बदलते थे, न दवाई बदलती थी, कुछ नहीं बदलता था। या बदलाहट इतनी धीमी होती थी कि उस बदलाहट की कोई चोट आदमी पर नहीं पड़ती थी। पुराना इतना ज्यादा होता था, नया इतना कम होता था कि पुराना उसे आत्मसात कर जाता था, पी जाता।

इधर पचास वर्षों में मुश्किल हो गई। ज्ञान छलांगें लगा रहा है बहुत आगे। आदमी जमीन पर रहने के योग्य नहीं हो पाया और विज्ञान चांद पर पहुंचा दिया है। आदमी अभी जमीन पर रहने के योग्य बिलकुल नहीं है।

इसलिए बर्ट्रेंड रसल ने जिस दिन पहली दफा आदमी ने पृथ्वी की सीमा को पार किया, आर्बेट को पार किया, उस दिन जो वक्तव्य दिया था वह बहुत उचित था। बर्ट्रेंड रसल ने यह कहा कि मैं बहुत परेशानियों से घिर गया हूं। जब कि सारी दुनिया ने स्वागत किया। तब बर्ट्रेंड रसल ने कहा कि मैं बहुत एंजाइटी और चिंता से भर गया हूं। क्योंकि जिस आदमी ने अभी पृथ्वी की बेवकूफियों को अंत नहीं किया और पृथ्वी को बेवकूफियों से भर दिया, वह अपनी बेवकूफियों को चांद पर भी ले जाने की कोशिश कर रहा है।

कहीं इसकी बीमारियां सारे जगत में न फैल जाएं? अभी जमीन ही इतनी नासमझी से भरी है, लेकिन ज्ञान हमारा चांद पर पहुंचाने वाला हो गया। हमारी सारी नासमझियां आदमी का सारा ढंग जीने का पुराना है और ज्ञान ने छलांग ले ली है। अब इस ज्ञान ने नई स्थितियां बना दी हैं, जिनके साथ एडजेस्ट होना पड़ेगा।

एक आदमी है अमेरिका में, उस आदमी ने एक छोटा सा प्रयोग किया जो हैरानी का है। उसने एक प्रयोग किया, वह गोरा आदमी है, सफेद चमड़ी का आदमी है। उसने एक प्रयोग किया कि उसने अपने शरीर पर कलरपिग्मेंटस के इंजेक्शन लगवाए और अपने शरीर को नीग्रो जैसा काला करवा लिया। उस आदमी का नाम है—हावर्ड ग्रेफीन। हिम्मत का प्रयोग किया। उसने इंजेक्शनस लगवा कर अपनी सारी चमड़ी को काला करवा लिया। बाल घुंघराले करवाने की कोशिश की, लेकिन नहीं बन सके, तो उसने सिर घुटवा डाला। एक रात वह पूरी तरह नीग्रो होकर अपने कमरे से बाहर निकल गया। यह अनुभव करने कि एक सफेद आदमी नीग्रो की चमड़ी में किस स्थिति से गुजरेगा। वह है तो सफेद आदमी। लेकिन अमेरिका में नीग्रो की क्या स्थिति है सफेद

आदमी कभी अनुभव नहीं कर सकता। क्योंकि वह नीग्रो की जगह कभी खड़ा नहीं हो सकता। तो वह नीग्रो बन कर निकल पड़ा। उस आदमी ने अपने संस्मरण लिखे हैं वे बड़ी हैरानी के हैं। उसने लिखे हैं कि मैं पहले तो बहुत डरा आईने के सामने जाने में, फिर भी मैंने सोचा, कि रहूंगा तो मैं वही सिर्फ काला हो गया हूं। तो जब वह आईने के सामने गया और उसने बिजली का बटन दबाया, बिजली का बटन दबाते वक्त भी उसके हाथ कंपे। जब उसने बिजली का बटन दबाया और आईने में देखा तो उसे पता चला कि यह मैं वही नहीं हूं, यह तो आदमी ही कोई और है।

उसकी सारी आइडेंटिटी गड़बड़ हो गई। उसका जो अपना नाम था, अपना ज्ञान था, अपनी जो समझ थी, वह सब गड़बड़ हो गई। वह एकदम से, जिसको कहना चाहिए मैलएडजेस्टमेंट हो गया, सब चीजें अस्त-व्यस्त हो गइ। वह अपने ही हाथ को अब ऐसा नहीं मान सकता कि मेरा है। अब उसे शरीर अपना बिलकुल अलग मालूम पड़ने लगा और खुद बिलकुल अलग मालूम पड़ने लगा। है तो वह गोरा आदमी, गोरे आदमी की प्रिज्युडिस और गोरे आदमी के खयाल और हो गया है नीग्रो!

अगर इस आदमी की चमड़ी धीरे-धीरे-धीरे-धीरे काली पड़ती जाए और सत्तर साल लग जाएं, तो ऐसी दिक्कत नहीं आएगी। यह इंजेक्शन से बारह घंटे के भीतर संभव हो गया। इसके दो हिस्से हो गए। यह आदमी स्किजोफ्रेनिया में पड़ गया। इसका एक हिस्सा नीग्रो हो गया जो बिलकुल अलग है और एक हिस्सा अंग्रेज रह गया जो बिलकुल अलग है। अब इन दोनों के बीच कोई ताल-मेल न रहा। उसका सिर घूमने लगा। वह सड़क पर चल रहा है तो उसे पता नहीं चलता कि मैं कौन हूं? और लोग उसकी तरफ देखते हैं तो आंखें अब वही नहीं हैं जो कल तक थीं। अब लोग उसे और तरह से देख रहे हैं। अब वह एक होटल में प्रवेश कर रहा है तो लोग उसे और तरह से देख रहे हैं। लोग उससे और तरह का व्यवहार कर रहे हैं। अब वह भीतर हंस रहा है, क्योंकि यह व्यवहार नीग्रो के साथ हो रहा है जो वह नहीं है।

वह अपनी चमड़ी को भी धोता है तो उसे ऐसा लगता है वह किसी और की चमड़ी धो रहा है। यह घटना इतनी तेजी से घट गई कि इसके व्यक्तित्व में खंड हो गया। मनुष्य-जाति ने जोर से ज्ञान उत्पन्न किया है और ज्ञान एक्सिलरिटिंग है। वह रोज गति बढ़ती जाएगी। अगले दिनों में ढाई वर्ष में इतना हो जाएगा, फिर सवा वर्ष में इतना हो जाएगा, फिर महीने भर में इतना हो जाएगा।

इस सदी के पूरे होते-होते आदमी अपने को बड़ी मुश्किल में पाएगा और वह यह कि वह बहुत पीछे रह गया और ज्ञान रोज बदलता जा रहा है। और उस ज्ञान के साथ नये एडजेस्टमेंट खोजने कठिन हो जाएंगे।

भारत के लिए जो सबसे बड़ा सवाल है वह यह है कि सारी दुनिया ने जो ज्ञान की खोज की है और हमने तो वह खोज नहीं की। तो हम तो अपने घर में जी रहे थे। जहां बैलगाड़ियां थीं, जहां शूद्र थे, जहां हिंदू-मुसलमान थे, जहां ब्राह्मण शूद्र की छाया से बच रहा था। हम अपनी उस दुनिया में जी रहे थे।

अचानक आंख खुली और हमने पाया कि जैसे एक सपना टूट गया, न यहां बैलगाड़ियां हैं! यहां ज़ेट प्लेन हैं, जो विक्षिप्त रफ्तार से चांद की तरफ जा रहे हैं। न यहां कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र है। सब कुछ बदल गया है चारों तरफ। इस बदले हुए के साथ नये भारत को अपना एडजेस्टमेंट खोजना है। इस बदले हुए के साथ अपना समायोजन करना है।

या तो हम पागल हो जाएंगे, स्किजोफ्रेनिक हो जाएंगे, और हम जीने से इनकार कर देंगे कि हम नहीं जी सकते और या फिर हम एक छलांग लेने की तैयारी जुटाएंगे। यह तैयारी भारत के इतिहास में पहला मौका होगी। ऐसा मौका भारत को कभी नहीं आया था।

यूरोप में ऐसा मौका नहीं आया जैसा हमें आया है, क्योंकि यूरोप को विज्ञान का विकास धीरे-धीरे हुआ है, वहां मेंढक की गर्मी धीरे-धीरे बढ़ी। वहां चमड़ी आहिस्ता बदली। यूरोप एडजेस्ट हो गया है।

भारत के सामने जो सवाल है वह अमेरिका के सामने नहीं है, रूस के सामने नहीं है, वह यूरोप के सामने नहीं है। वह सवाल चीन के सामने भी नहीं है। क्योंकि चीन कोड़े के बल पर छलांग लगवा लेगा। बंदूक के बल पर छलांग लग जाएगी वहां।

हिंदुस्तान के सामने बड़ा सवाल है कि लोकतांत्रिक देश, छलांग बंदूक के कुंदे पर नहीं लगवाई जा सकती। और इतिहास की प्रक्रिया में हम ऐसी जगह खड़े हो गए हैं, जहां हमें छलांग लगानी पड़ेगी, अन्यथा हम पागल हो जाएंगे।

नया भारत अपनी पुरानी सारी शक्ति को बटोर कर एक बार अगर छलांग लगाने की तैयारी दिखाए। इस छलांग की तैयारी में जवान के पैरों की जरूरत होगी, बूढ़े की समझ की जरूरत होगी। अगर हम सारी ताकत इकट्ठी करके लगा सकें। लेकिन ऐसा लगता है कि यह नहीं हो पाएगा। क्योंकि मुल्क में सारी ताकतें तोड़ने वाली हैं। कोई महाराष्ट्रीयन को गुजराती से तोड़ता है। कोई हिंदी बोलने वाले को गैर-हिंदी वाले से तोड़ता है। कोई हिंदू को मुसलमान से तोड़ता है। कोई गरीब को अमीर से तोड़ता है। कोई दक्षिण को उत्तर से तोड़ता है। कोई बाप को बेटे से तोड़ रहा है। कोई शिक्षक को शिष्य से तोड़ रहा है। सारा मुल्क स्प्लिट है और सारा मुल्क खंड-खंड है। हम इकट्ठी ताकत कैसे लगा पाएंगे? अगर हम यह नहीं लगा पाए तो भारत नया होगा इसकी संभावना कम है। भारत विक्षिप्त हो जाएगा इसकी संभावना ज्यादा है। भारत पूरा का पूरा पागल हो सकता है, इसकी संभावना ज्यादा है।

ये हमें विकल्प सीधे देख लेने चाहिए। एक रास्ता तो यह कि हम पागल हो जाएं, जिसमें हमारे राजनैतिक बड़े कुशल हैं, वे हमें पागल करवा सकते हैं। दूसरा रास्ता यह है कि जिसे हमें बहुत बुद्धिमत्ता पूर्वक भारत की सारी शक्तियों को इकट्ठा करके—भारत में न तो गरीब और अमीर के बीच कोई संघर्ष चाहिए अभी पचास वर्षों तक, न भारत में विद्यार्थी-शिक्षक के बीच कोई संघर्ष चाहिए, न भारत में स्त्री-पुरुष के बीच कोई संघर्ष चाहिए, न भारत में हिंदी बोलने वाले गैर-हिंदी बोलने वाले के बीच संघर्ष चाहिए। भारत में पचास वर्षों तक कोई संघर्ष नहीं चाहिए। भारत में पचास वर्षों तक टोटल कोआपरेशन, पूर्ण सहयोग चाहिए। तो शायद हम नये भारत को जन्म देने में समर्थ हो सकते हैं। और अगर यह नहीं हुआ तो मैं समझता हूं कि जो होगा वह पुराने भारत से भी बदतर होने वाला। वह विक्षिप्त भारत होगा, पागल भारत होगा।

आदमियों के पागल होने के संबंध में हमने सुना है, लेकिन आदमियों के पागल होने की जो स्थितियां होती हैं वे पूरे राष्ट्र के लिए हमारे लिए खड़ी हो गई हैं। पूरा मुल्क पागल हो सकता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कही हैं इस आशा में कि आप सोचेंगे। मैं कोई मार्गदर्शक नहीं हूं। इससे मुझे जो सीधी साफ बात है कह देने में सुविधा हो जाती है। आप मेरी बात मानें ऐसा आग्रह नहीं है, आप सिर्फ सोचें।

असल में, भारत बहुत जल्दी मान लेता है किसी की भी बात, यही खतरा हो गया। तो कम्युनिस्ट कहेंगे तो उनकी मान लेगा, सोशलिस्ट कहेंगे उनकी मान लेगा, जनसंगी कहेंगे उनकी मान लेगा, राजनीतिज्ञ कहेंगे उनकी मान लेगा, साधु कहेंगे उनकी मान लेगा। हजार तरह के मानने वाले मुल्क में इकट्ठे हो जाएंगे और सारा मुल्क टूट जाता। मानना बंद करें। अगर मुल्क की टूट बंद करनी है तो किसी को भी मानना बंद करें। सोचना शुरू करें?

सोचना एकमात्र एकता है। अगर पूरा मुल्क सोचने लगे, तो सोचने के नियम अलग-अलग नहीं होते। अगर आप भी जोड़ें दो और दो कितने हैं तो चार होंगे और मैं भी जोडूं तो चार होंगे और तीसरा भी जोड़े तो चार होंगे। अगर हम सोचते हैं तो दो और दो चार होंगे। लेकिन मैं मानता हूं की कुरान में लिखा है कि दो और दो पांच होते हैं, मैं कुरान को मानता हूं। आप गीता को मानते हैं, उसमें लिखा है दो और दो तीन होते हैं, आपके तीन होंगे। कोई मार्क्स को मानता है उसकी किताब में लिखा है कि दो और दो दो ही होते हैं, तो वह दो ही होंगे।

मानने वाले लोग मुल्क को तुड़वा रहे हैं, तोड़े हुए हैं। मुल्क को विचार करने वाले लोग चाहिए। विचार के निष्कर्ष सदा एक है। विचार युनिवर्सल है

तो मेरी बात को आप सिर्फ सोचेंगे, मानेंगे नहीं। अन्यथा मैं भी एक टुकड़े को तोड़ने वाला ही सिद्ध हो जाऊंगा, सोचें, सोचना हमें एक जगह ले आएगा। जहां हम छलांग लगाने की तैयारी कर सकते हैं।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

बारहवां प्रवचन

भारत का भविष्य

सादगी का कभी-कभी मजाक करते हैं तो ऐसा नहीं है कि गांधी जी ने इस देश का निरीक्षण किया, पर्यटन किया और करुणा की वजह से उन्होंने जीवन में जो जरूरी थी उतनी चीजों से चला कर वह सादगी का अंगीकार किया था, वह करुणा की वजह से किया नहीं है वह।

करुणा की वजह से हो या न हो इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता, मेरे लिए यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि गांधी जी ने किस वजह से सादगी अख्तियार की। मेरे लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि सादगी का रुख मुल्क को गरीब बनाता है। मेरे लिए वह महत्वपूर्ण नहीं है। वह गांधी जी की व्यक्तिगत बात है कि वे करुणा से साध रहे हैं, या उनको कोई आप्सेशन है इसलिए साध रहे हैं, या दिमाग खराब है इसलिए साध रहे हैं। इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। वह गांधी जी की निजी बात है। मेरे लिए प्रयोजन जिस बात से है वह यह है कि जो मुल्क सादगी को प्रतिष्ठा देता है वह मुल्क संपन्न नहीं हो सकता।

मेरे लिए जो आधार है आलोचना का वह बिलकुल दूसरा है। इससे मुझे प्रयोजन ही नहीं है। गांधी जी की करुणा हो वह उनके साथ है। लेकिन जो सवाल है वह यह है कि अगर हम एक बार किसी मुल्क

में—आवश्यकताएं कम होनी चाहिए, सादगी होनी चाहिए, जीवन सीधा होना चाहिए, चीजें कम होनी चाहिए, कम से कम जरूरत में हमें पूरा करना चाहिए। इस धारणा को अगर मजबूत बना ले तो यह गरीब रहने का राम-बाण नुस्खा है। इससे फिर कभी कोई कौम संपन्न नहीं हो सकती। इसलिए अगर गांधी जी करुणा से कह रहे हैं तो मैं भी करुणा से कह रहा हूं कि वह उनकी बात बकवास है।

मेरी बात समझ रहे हैं न? यानी मैं भी करुणा से ही कह रहा हूं और अगर उनकी करुणा बहुत सामयिक है तो मेरी करुणा बहुत शाश्वत है। क्योंकि पांच हजार साल में जिन लोगों ने भी करुणा के कारण हिंदुस्तान को सादा रहने की शिक्षा दी है, वे ही लोग जिम्मेवार हैं हिंदुस्तान की गरीबी के लिए। हिंदुस्तान कभी भी अमीर हो सकता था। लेकिन अमीरी के अपने सूत्र हैं। अमीरी का पहला सूत्र तो यह है कि जो है उससे हम संतुष्ट न हों। असंतोष सदा बना रहे। जितनी हमारी आवश्यकताएं हैं, उतने पर हम ठहर न जाएं, हमारी आवश्यकताएं रोज विस्तीर्ण होती रहें।

जिंदगी का जो विकास है वह जटिलता से है। तो जितना जटिल होता है उतना ही विकास होता है। बुद्ध भी करुणा कर रहे हैं, महावीर भी करुणा कर रहे हैं, गांधी जी भी करुणा कर रहे हैं, सब करुणा कर रहे हैं, यह मुल्क मरा जा रहा है। उनकी करुणा महंगी है। उनकी करुणा मेरी दृष्टि में मुल्क के हित में नहीं है, मंगलदाई नहीं है, दिखाई तो पड़ती है। दिखाई तो ऐसा पड़ता है कि ठीक है भई इतना गरीब देश है। इस मुल्क को अगर हम गरीबी में रहने की राजी करने की व्यवस्था नहीं करेंगे तो यह मुल्क तो बहुत परेशान हो जाएगा। लेकिन मेरा मानना है कि जितना यह गरीब रह कर परेशान होगा, उतना गरीबी से मुक्त होने के लिए परेशान होना, उतना खतरनाक नहीं है।

इस गरीबी को कहीं तोड़ना पड़ेगा। गांधी जी को पांच हजार साल के बाद भी करुणा करनी पड़ती है, अगर आप गांधी जी को मानते हैं तो पांच हजार साल बाद भी करुणा करनी ही पड़ेगी हमको इस मुल्क में। यह व्यवस्था नहीं टूटेगी। इसलिए यह महत्वपूर्ण नहीं है। मैं गांधी जी करुणा पर कोई बात नहीं कह रहा हूं। कोई सवाल नहीं है। मैं आपको करुणा से भर कर आप बीमार हैं और आपको मिठाई दे देता हूं। मैं करुणा से ही देता हूं इससे कोई सवाल नहीं है। आप पर क्या होगा अंतिम परिणाम, सवाल यह है? अंतिम परिणाम मैं मानता हूं कि आवश्यकताएं कम करने की कल्पना, कम आवश्यकताओं में जीने की आस्था, जिंदगी को विकसित नहीं होने देती। अन्यथा हम शायद जमीन पर सबसे समृद्ध कौम हो सकते हैं, सबसे। जमीन कहीं भी इतनी समृद्ध नहीं है जितनी हमारी है। और सबसे पहले दुनिया में हमने ही मानसिक रूप से विकास किया, बाकी कौमों ने, बहुत पीछे आइ□।

और आज हालत उलटी हो गई। आज हालत यह है कि हम उनसे कैसे उनके कदम मिलाएं, यह सवाल है। नहीं तो दुनिया में हमसे कोई कदम नहीं मिला सकता था। गणित हमने कोई तीन हजार साल पहले खोज लिया था। विज्ञान के मूलभूत कदम हमने कोई ढाई हजार साल पहले खोज लिए थे। दुनिया की सारी महत्वपूर्ण खोज की शुरुआत हमने की लेकिन पूरा किसी और ने किया है। जब कि हम बहुत आगे थे। यानि आज फ्रायड जो कह रहा है, वह हमारा पतंजलि, हमारा बुद्ध ढाई हजार साल पहले समझता था। अभी उनके पास जो भी समझ है वह ज्यादा से ज्यादा तीन सौ साल पुरानी है। हमारे पास जो समझ है वह पांच हजार साल पुरानी है।

लेकिन समझ भी थी, सुविधा भी थी, देश के स्रोत संपन्न थे। लेकिन हमने जो फिलासफी पकड़ी, हमने जो जीवन-दर्शन पकड़ा वह सादगी का था। उसने हमें नुकसान पहुंचाया।
यह सब इस बात पर निर्भर करता है, दो चीजों पर निर्भर करता है। भविष्य को देखते हैं आप या सिर्फ वर्तमान को देखते हैं? अगर सिर्फ वर्तमान को देखते हैं तो गांधी की करुणा बहुत सार्थक मालूम पड़ेगी। लेकिन अगर भविष्य को देखते हैं तो बहुत खतरनाक और पायज़नस, विषाक्त मालूम पड़ेगी। पर मुझे उससे प्रयोजन ही नहीं है। यानि मैं यह कहता हूं, एक आदमी करुणा करे यह उसका मजा होगा। लेकिन इस करुणा का विस्तीर्ण परिणाम क्या होगा? और इसमें गांधी जी से मुझे लेना देना नहीं है। असल में, मेरी बात समझने में कठिनाई होती है। असली सवाल तो हमारी दृष्टि का है। गांधी जी उस दृष्टि को फिर मजबूत कर जाते हैं।

रचनात्मक काम के बारे में जब आप कहते हैं तो कोई ऐसा खयाल नहीं है कि देश में जितना कपड़ा है उससे कम कपड़ा मिले। जब देश को ग्यारह गज कपड़ा मिलता था तब गांधी जी ने तीस गज कपड़ा हरेक को मिलना चाहिए ऐसा विचार कहा। लेकिन वह प्राप्त करने के लिए साधन कौन से इस्तेमाल करें। आज देश में देखेंगे तो दो पंचवर्षीय योजना के बाद सत्रह गज से ज्यादा कपड़ा हम उत्पन्न नहीं कर सकते हैं क्योंकि उसका बिक्री नहीं हो सका है। तो गांधी ने तो ऐसा कहा कि जिनको कपड़ा पहनने को नहीं मिलता है वह कपड़े वाला हो। उसके लिए उत्पादन के साधन जो उनको मिले उन्होंने लिए, उस जमाने में चरखा मिला तो चरखा लिया। अब हमें चरखा मिला तो एक आदमी सिर्फ बीस घंटा काम करे, तो भी उसको पांच-सात गज कपड़ा मिल सकता है। ऐसे औजार स्रोत की खोज हुई है। इसका मतलब आपका जो यह खयाल है कि रचनात्मक काम देश को दरिद्र बनाने के लिए है या नहीं।

नहीं, रचनात्मक काम की बात ही नहीं की है अभी। मैंने जो बात की है वह सादगी के लक्ष्य की बात की है। रचनात्मक काम की बात मैं अलग से आपसे करता हूं। आपने जो सवाल उठाया था वह रचनात्मक से संबंधित नहीं था। जो मैंने बात की है वह यह की है कि सादगी मेरे लिए लक्ष्य नहीं है। मेरे लिए जीवन को जितने वैभव और संपन्नता से जीया जा सके उतना ही मैं मानता हूं उचित है। क्योंकि उसके वैभव और संपन्नता से जीने की जो अभीप्सा है वह हमारी सोई हुई शक्तियों को चुनौती देती है और हम आगे बढ़ते हैं।
कोई अमेरिका में इतनी संपत्ति पैदा हो जाए और हम भीख मांगते रहें। इसमें कुछ अमेरिका की जमीन की विशेषता नहीं, सिर्फ अमेरिका के मस्तिष्क की विशेषता है। क्योंकि वह सादगी से जीने को राजी नहीं है। और मजे की बात यह है कि वह जो चीज पा लेता है उसी को सादगी मानने लगता है, फौरन। और आगे बढ़ने की कोशिश करने लगता है। अगर किसी के पास बहुत बड़ी गाड़ी है तो वह भी सादी हो जाती है, और बड़ी गाड़ी चाहिए। यह तो मैंने सादगी...रचनात्मक जिसको आप कह रहे हैं, मैं नहीं मानता कि रचनात्मक है। क्योंकि कारण क्या है, पहली तो बात यह है कि अगर एक आदमी, गांधी जी ने जो उपाय सुझाए चरखा या तकली या उस तरह के सामान्य यंत्र जो आदमी एक-एक आदमी मेनेज कर सके।

गांधी जी की नजर कुल इतनी है कि वह बड़ा यंत्र जो व्यक्तियों के ऊपर हावी हो जाता है उसके खिलाफ हैं। वे ऐसा यंत्र चाहते हैं जिस पर व्यक्ति हावी रहे। इसमें मेरा मानना है कि गांधी जी की मनुष्य की आत्मा में बहुत कम भरोसा है। उनका चित्त आदमी में बहुत कम भरोसे वाला है। क्योंकि वे मानते हैं बड़ा यंत्र आदमी पर हावी हो जाएगा। उनको आदमी की आत्मा जो है बहुत छोटी मालूम पड़ती है। बहुत कम हिम्मतवर नपुंसक मालूम पड़ती है, एक। दूसरी बात, गांधी जी जो यंत्र दे रहे हैं। यह हो सकता है कि एक आदमी को तीस गज कपड़ा मिल जाए। यह हो सकता है, यह बहुत कठिन नहीं। अगर एक आदमी गांधी जी के चरखे को ही चलाता रहे तो तीस गज कपड़ा मिल सकता है। लेकिन विकास मल्टी डायमेंशनल है। जो आदमी छह घंटे चरखा चला कर तीस गज कपड़ा पा लेगा या चार घंटे चला कर तीस गज कपड़ा पा लेगा। चार घंटे चरखा चलाने में उसने कितना खोया उसका हिसाब आपको नहीं है। अगर मेरा बस चले तो गांधी जी को सजा करवा देनी चाहिए कि तुमको हम चरखा नहीं चलाने देंगे, क्योंकि गांधी जैसा आदमी दो घंटे चला कर मुल्क का कितना नुकसान पहुंचा रहा है इसका हमें कुछ पता नहीं है।

गांधी जैसी हैसियत की प्रतिभा का आदमी दो-तीन घंटे चरखे के साथ उलझा रहे, इन तीन घंटों में इस प्रतिभा का हम कितना उपयोग कर सकते थे और कितना हमने सूत पैदा किया? यह सूत और इस प्रतिभा के उपयोग का कोई संबंध नहीं जुड़ता। यह जो दो-तीन मालाएं सूत की बन जाएंगी, यह गांधी जी के तीन घंटे श्रम का हम फायदा लेंगे, तो आप समझ लेना कि आप गरीब रहेंगे। उसके कारण हैं। सच बात तो यह है कि मनुष्य का विकास इससे होता है कि वह अपने समय, समझ और श्रम का कितना इकॉनामिक उपयोग करता है।

आप कितने कम समय में कितना ज्यादा पैदा करते हैं इससे आपके विकास की संभावना बढ़ती है। गांधी जी के जो साधन हैं वे ज्यादा समय में बहुत कम पैदा करवाने वाले हैं। इसलिए मैं उनके खिलाफत में हूं। मैं रचनात्मक नहीं मानता, विध्वंसात्मक मानता हूं। गांधी जी के सब साधन डिस्ट्रक्टिव हैं। उनमें रचना नहीं है, विध्वंस हैं। लेकिन दिखाई हमें यह पड़ता है कि अगर मैं छह घंटे बैठ कर चरखा चलाता रहूं तो आपको भी दिखाई पड़ेगा कि सूत तो पैदा हुआ लेकिन छह घंटे से मैं जो पैदा कर सकता था वह पैदा नहीं हुआ। वह आपको दिखाई नहीं पड़ रहा है। और मुझे एक गधा-पचीसी में लगाया कि छह घंटे में सूत पैदा करूं, जो कि एक मशीन कर देगी जिसमें मेरी जरूरत ही नहीं।

मेरे छह घंटे बच सकते थे जिनका मैं उपयोग कर रहा हूं। मनुष्य की सारी संस्कृति, मनुष्य के लीजर टाइम का विकास है। जो भी कौमें संस्कृत हुई हैं और जो भी सभ्यता विकसित हुई है वह खाली समय में विकसित हुई है। खाली समय कितना आदमी के पास है, इससे निर्भर करेगा कि वह कितना विकसित होता है। अगर गांधी जी की पूरी व्यवस्था अगर हम मानें, तो साबुन अपनी खुद बना लेनी चाहिए, अपना खाना खुद पैदा कर लेना चाहिए, अपना कपड़ा खुद बना लेना चाहिए। तो मैं मानता हूं कि अगर एक आदमी इस व्यवस्था को स्वीकार कर ले, तो सिर्फ जिंदगी में वह आदमी खाना पैदा करने वाली, कपड़ा बनाने वाली, साबुन बनाने वाली मशीन बन जाएगा। उसकी पूरी जिंदगी इसमें नष्ट हो जाएगी।

जिंदगी का हिसाब क्या है? आप अगर साठ साल जीते हैं, जो कि हिंदुस्तान में नहीं जीते हैं। अगर गांधी जी की बात को अमेरिका मान ले तो शायद थोड़ा ठीक भी है क्योंकि उनके पास जिंदगी ज्यादा है। हिंदुस्तान के पास अब भी औसत उम्र पैंतीस साल, छत्तीस साल के करीब हैं।

इक्यावन वर्ष।

इक्यावन हो गया क्योंकि बच्चे कम मर रहे हैं। आपकी उम्र नहीं बढ़ गई कहीं कोई। और कुछ नहीं फर्क पड़ गया है। यह जो आदमी जी रहा है, पचास साल समझ लें, साठ साल समझ लें। एक आदमी साठ साल जीता है, उसमें कम से कम बीस साल तो सोने में जाते हैं, नींद में चले जाते हैं। बचते है चालीस साल। चालीस साल में, अगर गांधी जी की व्यवस्था मानी जाए तो आठ घंटे चौबीस घंटे में सोने में चले जाते हैं। नहाना, खाना, कपड़े धोना, साबुन बनाना, खेती करना, चरखा चलाना, रूई ओटना। अगर यह सब आदमी करे तो मैं मानता हूं कि जरूर उसको कपड़े भी मिल जाएंगे। तीस गज भी मिल जाएंगे, खाना भी कामचलाऊ मिल जाएगा, साबुन से भी कपड़ा धोने लायक साबुन भी बना लेगा, अपना जूता भी तैयार कर लेगा। लेकिन यह आदमी यही करते मरेगा। इस आदमी के पास लीजर टाइम नहीं बचने वाला है।

उसी में से मूल्य खड़ा होगा?

कोई मूल्य खड़ा नहीं होगा। इसमें से सिर्फ एक जानवर खड़ा होगा, आदमी नहीं। आदमी और जानवर में इतना ही फर्क है कि जानवर के पास लीजर टाइम नहीं है। वह अपने खाने-पीने की फिक्र में पूरा वक्त गुजार देता है। एक कुत्ता है वह दिन भर घूम रहा है। वह बहुत रचनात्मक बुद्धि का है, उसके पास लीजर टाइम नहीं है। या तो सोता है या खाने की तलाश करता है, या अपनी पत्नी को या प्रेयसी को भोगता है। बस ये तीन काम हैं उसके पास।

अगर गांधी जी की बात पूरी मानी जाए—तो आदमी बच्चे पैदा करेगा, कपड़े पैदा करेगा, खाना बनाएगा। लेकिन लीजर टाइम उसके पास नहीं, और लीजर के वे खिलाफ हैं। उसके पास खाली समय नहीं बचेगा। दुनिया का सारा विकास खाली समय में हुआ है। चाहे संगीत हो, चाहे साहित्य हो, चाहे धर्म हो, चाहे विज्ञान हो, यह खाली लोगों की खोज है। जिनके पास कोई काम नहीं बचता; जिनके पास काम के अतिरिक्त समय है। अब वे क्या करें? इसमें वे जुआ खेल सकते हैं, ध्यान भी कर सकते हैं। वह दूसरी बात है कि वे क्या करेंगे। जुआ भी खाली समय में आता है, ध्यान भी खाली समय में आता है, प्रार्थना भी खाली समय में आती है, भगवान भी खाली समय में आता है। जिन दिनों में कोई मुल्क के पास खाने, कपड़े, पत्नी, बच्चों के अलावा समय बचता है उन दिनों में उस मुल्क की चेतना विकसित होती है।

अगर हम गांधी जी की बात मानें तो मैं मानता हूं कि सबसे डिस्ट्रक्टिव योजना है, सबसे विध्वंस की। क्योंकि इसका परिणाम क्या होगा? इसका परिणाम सिर्फ इतना होगा कि आदमी को हम एनिमल लेवल पर खड़ा कर देंगे। हां, एनिमल सादा भी है। आवश्यकताएं भी उसकी ज्यादा नहीं हैं। वह भी ठीक है। लेकिन मैं मानता हूं कि मनुष्य का जो विकास है वह मनुष्य का विकास पशु के तल से ऊपर उठने में है और पशु के तल से ऊपर उठने में जो सबसे बड़ी बात काम करती है वह है आपके पास अतिरिक्त समय? आपके पास कितना अतिरिक्त समय है उतनी ही आपकी चेतना मुश्किल में पड़ जाती है कि अब मैं क्या करूं?

तो मेरी अपनी दृष्टि यह है कि छोटी मशीनें अतिरिक्त समय नहीं ला सकती, न चरखा ला सकता है, न अंबर चरखा ला सकता है। सिर्फ वे ही मशीनें अतिरिक्त समय ला सकती हैं जो मशीनें अधिकतम लोगों का काम करने में समर्थ हैं। जैसे मेरी समझ है कि आने वाले बीस वर्षों में अमेरिका के पास दुनिया का सर्वाधिक अतिरिक्त समय होगा, आज भी है। यह जो अतिरिक्त समय अमेरिका के पास बचेगा, यह अतिरिक्त समय ही उसको चांद पर पहुंचाएगा, मंगल पर पहुंचाएगा, यह अतिरिक्त समय ही उसे ध्यान में भी लगाएगा, योग में भी लगाएगा, साहित्य, संगीत, सब तरफ लगेगा।

इधर जो कठिनाई है क्या है, गांधी जी बहुत ही ज्यादा जिसको कहना चाहिए सामयिक हैं, वे देख रहे हैं समय को। वे देख रहे हैं कि कपड़ा नहीं है, साबुन नहीं है, फलां नहीं है, ढिकां नहीं है। लेकिन इसको देखने की भी उनकी समझ जो है प्रिमिटिव है। वह दो हजार साल पुरानी है। यानी अगर वह दो हजार साल पहले पैदा हुए होते तो वे ठीक आदमी थे। दो हजार साल बाद वे ठीक आदमी नहीं हैं। क्योंकि जिस समाज से वे यह कह रहे हैं, उस समाज के पड़ोसी समाज यंत्र का उपयोग कर रहे हैं बड़े पैमाने पर। और आदमी को मुक्त कर रहे हैं। और मेरा मानना यह है कि यंत्र ही आदमी को मुक्त करने वाला है। अगर पूर्ण यंत्र आ जाए तो आदमी पूर्ण मुक्त होता है।

जब तक किसी भी आदमी को श्रम करना पड़ेगा मजबूरी में, तब तक गुलामी जारी रहेगी किसी न किसी तरह की। अगर एक बार आदमी को श्रम करने से छुटकारा हो जाए और श्रम भी स्वेच्छा हो जाए कि पूरण चंद जी को काम करना है, शौक है उनका, तो करें। नहीं करना है तो उनकी मौज है। उनको बिना काम किए भी इतना मिल सकता है। तो यह तो संभव तभी है जब हम बड़ी आटोमेटिक यंत्रों पर भरोसा करें। और बड़े मजे की बात यह है कि मैं कभी भी नहीं देख पाता कि बड़ा यंत्र आदमी को क्यों दबा लेगा? कोई यंत्र आदमी को कभी नहीं दबा सकता है।

असल में, चूंकि यंत्रों का बनाने वाला आदमी है। और यंत्रों को किसी भी दिन बंद कर सकता है एक बटन को दबा कर। कोई यंत्र आदमी को कभी नहीं दबा सकता। मेरी अपनी समझ यह है कि छोटा यंत्र आदमी को ज्यादा गुलाम बनाता है। समझ लें कि मैं एक पंखा लेकर आपको हवा करने बैठूं, तो वह मुझे ज्यादा गुलाम बनाता है, बजाए एयरकंडीशनर के। एयरकंडीशनर मुझे गुलाम बना ही नहीं रहा एक अर्थों में। क्योंकि मैं चौबीस घंटे मुक्त हूं और आपको हवा मिल रही है। अगर मैं पंखा लेकर बैठूं तो मैं चौबीस घंटे आपको पंखा चलाना चाहिए। वह जो पंखा चलाने वाला आदमी मुक्त हो गया पंखा चलाने से वह उस पंखे की वजह से मुक्त हो

गया है जो यंत्र ने दे दिया है। जिंदगी को हम कितने ज्यादा यंत्र दें इस पर निर्भर करेगा कि हम आदमी को कितनी आत्मा दे दें।

तो मैं नहीं मानता हूं कि गांधी की दृष्टि कोई रचनात्मक है। रचनात्मक दिखाई पड़ती है, वह एपिअरेंस है। लेकिन बहुत गहरे में डिस्ट्रक्टिव है। क्योंकि मनुष्य में जो क्षमता विकास की होनी चाहिए वह उसमें मर जाएगी। अगर गांधी से कोई भी राजी हो जाए, हालांकि कोई राजी नहीं होगा। आप चिल्लाते रहें कोई राजी नहीं होने वाला। क्योंकि विकास के खिलाफ कभी किसी समाज को राजी किया नहीं जा सकता है। हां, थोड़े से सिरफिरे लोगों को राजी किया जा सकता है। थोड़े से इंसेंट्रीक लोगों को जिनको कि दिमाग में बात पकड़ जाती है, वे अपनी कुर्बानी दे सकते हैं। उनको राजी किया जा सकता है। समाज को कभी राजी नहीं किया जा सकता।

इसलिए गांधी जी की अपील आजादी के पहले ज्यादा थी। आजादी आते से ही अपील क्षीण हो गई। गांधी को खुद ही लगा कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं। इसमें गांधी खोटे सिक्के नहीं हो गए थे। असल में हमको पहली दफा विकास का मौका मिला और हमको पता चला कि गांधी खतरनाक है। इसके साथ विकास हो नहीं सकता। इसको छोड़ना पड़ेगा एक तरफ। लेकिन पूरे मन से हम नहीं छोड़ पाए। तो वह चलता है दोनों—पंचवर्षीय योजना भी चलती है और हमारी बुद्धि में गांधी जी भी चलते हैं। वह जो आप कहते हैं, पंचवर्षीय योजना से क्या हुआ? बहुत कुछ हो सकता था। रूस में बहुत कुछ हुआ। हिंदुस्तान में नहीं हुआ क्योंकि रूस के दिमाग में गांधी नहीं था, सिर्फ पंचवर्षीय योजना थी।

हिंदुस्तान के दिमाग में गांधी और हाथ में पंचवर्षीय योजनाएं! इन दोनों में विरोध है। ये दोनों नहीं चल सकते साथ। या तो पंचवर्षीय योजना चला लें या गांधी जी को चला लें। ये दोनों हैं इसलिए अहित हो रहा है। और यह जो सारा मैं कह रहा हूं वह इस बात को ध्यान में रख कर कह रहा हूं कि मेरे लिए एक पर्सपैक्टिव है भविष्य का आदमी के लिए। और जो हमारी सामान्य धारणाएं हैं, उन सामान्य धारणाओं को हम कभी सोच नहीं पाते कि हम—अब गांधी जी को हम थर्ड क्लास में चला रहे हैं। बड़ा सादगी मान रहे हैं और महात्मा मान रहे हैं। लेकिन गांधी जैसा आदमी जहां घंटे भर में पहुंच सकता था, वहां अड़तालीस घंटे में पहुंचेगा। ये जो सैंतालीस घंटे गांधी के हमने खराब किए इसका कौन जिम्मेदार होगा? और गांधी जैसे आदमी को खुद तो हक है ही नहीं कि सैंतालीस घंटे अपने खराब कर दे कि ये तो हमारे घंटे हैं। गांधी जैसे आदमी को हम खराब नहीं करने देंगे लेकिन हम खराब करवाएंगे। अगर विनोबा पैदल चले तो हम और खुश हो जाएंगे। अगर जमीन पर ही सरकने लगे, रेंगने लगे तो हमारी खुशी का कोई अंत न रहे। हम इनको बिलकुल परमहंस मान लेंगे। हमारे सोचने का जो ढंग है वह संकोच वाला है। और जिसको हम रचनात्मक कहते हैं वह रचनात्मक है नहीं।

अब जैसे कि समझ लें, रचनात्मक किसको कहें—एक आदमी ने जिसने बिजली बनाई वह रचनात्मक है या एक आदमी जो एक-एक घर में दीया रखता फिर रहा है वह रचनात्मक है? रचनात्मक कौन है? जिस आदमी ने चरखा चला दिया है लोगों को पकड़ा दिया है कि चरखा चलाओ वह आदमी रचनात्मक है या एक आदमी ने एक बटन बनाई है और लाखों चरखे चल रहे हैं उस बटन से वह रचनात्मक है?

नहीं; हमें यह घर-घर में चरखा वाला रचनात्मक मालूम पड़ेगा। और एक-एक आदमी के छह-छह घंटे खराब करना, करोड़ों आदमियों के अरबों घंटे खराब करना है और जिंदगी बहुत छोटी है। इसलिए मैं राजी नहीं हूं।

मेरी अपनी समझ यह है कि...लेकिन अगर गांधी जी जैसी बात को हम पकड़ लें, तो हम चरखा चलाने में उलझ सकते हैं। और हमारा जो चित्त है तीन-चार हजार साल का वह राजी हो सकता है इसके लिए। क्यों? उसके कारण हैं। हम जटिलता से भयभीत कौम हैं। और ध्यान रहे, जितनी जटिलता का हम मुकाबला करेंगे उतनी हमारी प्रतिभा विकसित होगी। एक बैलगाड़ी चला रहा एक आदमी, एक बैलगाड़ी चलाने वाले आदमी की प्रतिभा बहुत विकसित नहीं हो सकती। इसी आदमी को हवाई जहाज चलाने के लिए बिठाइए। तो आप पाएंगे कि इसकी प्रतिभा को मजबूरन विकसित होना पड़ेगा। क्योंकि हवाई जहाज चलाने के लिए जितने जटिल यंत्र को सम्हालना है उतनी बुद्धि भी चाहिए। फिर हवाई जहाज को चलाने में जितना खतरा है उतनी चेतना भी चाहिए, अवेयरनेस भी चाहिए। बैलगाड़ी में वह कोई भी नहीं। बैलगाड़ी में चलाने वाला आदमी बैल की बुद्धि से बहुत ज्यादा आगे विकसित नहीं हो सकता। क्योंकि वह चला बैल को ही रहा है न आखिर। तो उसकी भी एक, उसमें भले ही कितनी बुद्धि हो लेकिन उसकी जरूरत ही नहीं पड़ती। बैल को ही चलाना है तो बैल को ही चलाने लायक बुद्धि की पुकार आती है।

और हमारे पास जो समझ है वह बड़ी हैरानी की है। वह यह है कि आदमी अच्छे से समझदार से समझदार आदमी अपनी बुद्धि के पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा का उपयोग नहीं कर पाता। अच्छे से अच्छा आदमी, बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी। तो जिसको हम साधारण जन कहें वह तो तीन-चार-पांच परसेंट उपयोग करता है।

वह जो अस्सी-नब्बे परसेंट बुद्धि हमारी अतिरिक्त पड़ी है उसका कैसे उपयोग होगा? गांधी जी के पास उसकी कोई जगह नहीं है। न तो हरि भजन से हो सकता है, न राम की धुन से हो सकता है, न चरखे से हो सकता है। गांधी जी के पास मनुष्य की प्रतिभा को जगाने का कोई क्रिएटिव प्रोग्राम नहीं है। तो इसलिए मैं नहीं मानता कि वह रचनात्मक है। मैं तो मानता हूं कि रचनात्मक बातचीत के भीतर बहुत विध्वंसात्मक है। और मेरी हालत मैं उलटी मानता हूं। मेरी सारी विध्वंसात्मक बातचीत के बीच में बिलकुल रचनात्मक हूं। और मेरी रचना का अर्थ है, उनकी रचना का अपना अर्थ है। उनकी रचना को मैं रचना नहीं मानने को राजी हूं।

उनका खयाल यह था रचनात्मक का कि जिस आदमी को काम भी नहीं मिलता है और खाना भी नहीं मिलता है उससे काम लेना एक समाज का धर्म बन रहा है। और क्या नजदीक से कौन सा काम देखते हैं। आज भी देखें कि आज साठ रुपया प्राप्त करने के लिए काफी लोग अंबर चरखा कातने के लिए आते हैं। सिर्फ गुजरात में यह हालत है इतना बड़ा वस्त्र उद्योग है सारे हिंदुस्तान का वस्त्र उद्योग में नौ लाख आदमी को रोजी मिलती है। अतिरिक्त और इसको आटोमेटिक कर दें तो मैं समझता हूं कि ढाई लाख से ही सारा हिंदुस्तान का कपड़ा बन जाएगा।

दूसरा प्रश्न, हम देहात में रह कर देखें कि लोगों को खाने का भी मिलता नहीं है, काम नहीं है। तो काम प्राप्त करने का, काम इसलिए कि उसको रोटी चाहिए। तो वह अधिकार हम कैसे दिलवा सकेंगे? मानो कि आप कहें, वैसे ही स्वयं संचालित युग आ गया और मैं तो एक टेक्नालॉजी का विद्यार्थी। ऐसे एक मशीन बन गई कि जिसमें सब स्वयं संचालित हैं और हिंदुस्तान की जितनी मिल हैं, वह साठ लाख से नहीं सिर्फ एक लाख से चलने लगें और जितनी रेडियो हैं इसमें सब आटोमेटिक कर दें, मेथेमेटिक आटोमेटिक कर दें, कंप्यूटर रख दें

तो हिंदुस्तान की आम जनता को जो काम नहीं मिलता है, खाना नहीं मिलता है, उनको क्या काम और कैसे देंगे? वह सब देंगे तो बराबर।

हमारी तकलीफ क्या है कि जब हम भविष्य के किसी यंत्र की बात करते हैं तब भी आर्थिक बुद्धि हमारी अतीत की होती है। भविष्य के यंत्र की बात करते हैं और समझ हमारी अतीत की आर्थिक होती है। इसलिए कठिनाई होती है। जैसे मैं आपसे कहता हूं, जिस दिन आटोमेटिक यंत्र आ जाएगा, आप समझते हैं—हजारों कारखाने बंद हो जाएं कार के, एक कार का कारखाना चलेगा। उसमें किसी को मजदूर की जरूरत नहीं रह जाएगी। शायद दस-पांच आदमी उपयोगी होंगे, लाखों आदमी बेकार हो जाएंगे। लेकिन क्या आप समझते हैं यह कारें आप बनाइएगा किसलिए, खरीदेगा कौन? जब सारा मुल्क बेकार होगा तो ये कारें खरीदेगा कौन, इनको बनाइएगा किसलिए?

इधर आपको कार बनानी पड़ेगी, इधर बेकार लोगों को पैसा देना पड़ेगा। नहीं तो ये कार बिकेगी कहां? आप समझ नहीं रहे हैं। हमारा जो पुराना दिमाग है वह यह कहता है कि जब काम नहीं होगा तो फिर मर जाएंगे आदमी। लेकिन जिस दिन आटोमेटिक यंत्र आ गया उस दिन हमारी पूरी आर्थिक-व्यवस्था का पुराना ढांचा बदलेगा और ढांचा नया होगा, और ढांचा यह होगा कि बेकार आदमी के लिए हमें पैसा देना पड़ेगा। अन्यथा वह खरीदने वाला ही नहीं है कोई।

आप टुथपेस्ट बना लें, साबुन बना लें आटोमेटिक यंत्र से, खरीदेगा कौन? पूरा का पूरा मुल्क बेकार है। अगर आपको यह उत्पादन जारी रखना है आटोमेटिक तो आपको बेकार लोगों को पैसा देना पड़ेगा।

बल्कि मेरी अपनी समझ यह है, और आज अमेरिका में जहां कि अकेली स्थिति बनी है, तो इस सदी के पूरे होते-होते आटोमेटिक स्थिति आ जाएगी। तो उनको अपना पूरा...अभी तक हमारा यह व्यवस्था थी कि जो काम करे उसे पैसा मिले। आने वाली व्यवस्था यह होगी कि जो काम न करे उसे पैसा मिले। जो काम भी मांगे, क्योंकि बहुत लोग होंगे जो आप्सेशनल हैं, बहुत लोग हैं जो खाली नहीं बैठ सकते हैं। बहुत लोग हैं—न संगीत में रुचि ले सकते हैं, न कविता रच सकते हैं, न किताब पढ़ सकते हैं, न ताश खेल सकते हैं, न सिगरेट पी सकते हैं, या बहुत लोग हैं जिनको काम जो है वह बीमारी है—उनको काम चाहिए ही।

जैसे कर्मयोगी जिनको हम कहते हैं इस तरह के लोगों को तो काम चाहिए। इनकी कर्म बीमारी है, ये फुरसत में हो नहीं सकते, इनका रोग है। तो इस तरह के लोगों के लिए हमें काम देना पड़ेगा। तो इस तरह के लोगों को तनख्वाह कम मिलेगी भविष्य में। क्योंकि ये दोनों चीजें मांगते हैं तनख्वाह भी मांगते हैं और काम भी मांगते हैं। भविष्य की पूरी इकॉनामिक्स बदलेगी।

हमारी पुरानी इकॉनामिक्स की वजह से हमको सवाल उठता है कि लोग बेकार हो जाएंगे। तो फिर क्या होगा? लोग बेकार हो जाएंगे यह सवाल लोगों के लिए नहीं है। जो लोग उत्पादन कर रहे हैं उनके लिए सवाल है कि उत्पादन का क्या होगा? अगर आपको उत्पादन खपाना है और कारखाना चलाना है, कंप्यूटर चलाना है, आटोमेटिक मशीन चलानी है, तो बेकार आदमियों के लिए आपको पैसा देना पड़ेगा। और जो आदमी जितने कम काम की मांग करेगा, उसको उतना ज्यादा पैसा देना पड़ेगा। जो आदमी कहेगा हम बिलकुल नहीं काम

करने को राजी हैं उसको ज्यादा से ज्यादा तनख्वाह मिल सकेगी। जैसे अभी तक हमारा नियम था जो जितना काम करे उतना मिले। अब हमारा नियम होगा, आटोमेटिक के बाद, जो जितना कम काम करे उतना ज्यादा पाए। क्योंकि कम काम करने वाला आदमी समाज पर दोहरी कृपा कर रहा है। काम नहीं मांग रहा और बेकाम होने को राजी है।

हमारी जो तकलीफ है वह तकलीफ इसलिए है कि हमारा सारा खयाल तो होता है पुरानी परिस्थिति का और नई परिस्थिति जब बनती है तो पुरानी पूरी परिस्थिति बदलेगी, उससे उत्तर नहीं मिलता। अब जैसे होता क्या है, आदमी की सारी उलझनें ऐसी हैं, अब आज हम—आज भी हम चर्खे पर सूत काते जा रहे हैं। अब हमको अंदाज नहीं है कि चर्खे से सूत कातना या लूम में भी सूत कातना अवैज्ञानिक है। अब सूत कातना ही अवैज्ञानिक है। उसका कारण यह है कि जब हम कपास से सूत बनाते थे तो कपास को पहले हमें सूत बनाना पड़ता है। फिर सूत को बुनना पड़ता है। अब यह निपट गंवारी हो गई है अब। लेकिन हमारी पुरानी आदत की वजह से...

अब टेरीलीन है, उससे सीधा कपड़ा ढाला जा सकता है। सूत बनाने की जरूरत नहीं है। लेकिन पुरानी खोपड़ी की वजह से हम टेरीलीन को पहले सूत बनाते हैं। पुरानी खोपड़ी, कपास का व्यापार हम टेरीलीन के साथ, और जितने नये सिंथेटिक चीजें बनी हैं कपड़े की उनके साथ कर रहे हैं पुरानी बुद्धि का प्रयोग। पहले सूत बनाएंगे, अब यह बिलकुल अनावश्यक मूर्खता है, इसको सूत बनाने की जरूरत ही नहीं है। यह तो सीधा ही ढल सकता है। सीधा ही, इसको काट कर दर्जी बनाए इसकी भी जरूरत नहीं है, क्योंकि वह काटना भी हमारी पुरानी बुद्धि है। इसका तो हम सीधा शर्ट ही ढाल सकते हैं, सीधा पेंट ही ढाल सकते हैं। असल में, जैसे और चीजें ढालते हैं अब कपड़ा भी ढल सकता है। लेकिन दिक्कत क्या होती है कि हमारे पास पुराना दिमाग है!

जैसे अभी मैं लुधियाना था तो यूनिवर्सिटी बोलने गया था। तो वहां कोई, हम सात साल के बच्चे को स्कूल भेज देते हैं। अब भी हम सात साल के बच्चे को स्कूल भेजे चले जाते हैं। कोई नहीं पूछता कि सात साल के बच्चे को हमने स्कूल क्यों भेजा था? सात साल से बच्चे के स्कूल जाने का कौन सा संबंध है? आठ साल का क्यों नहीं? छह साल का क्यों नहीं? सात साल का हमने भेजना शुरू किया था कभी आज से पांच सौ साल पहले। स्कूल इतने दूर थे कि सात साल से कम बच्चा भेजा ही नहीं जा सकता था। बस इतना कुल कारण था।

अभी भी हम भेजे चले जा रहे हैं सात साल के बच्चे को। अब कोई कारण नहीं है। अब हालतें उलटी हो गई हैं। अब मनोविज्ञान यह कह रहा है कि चार साल का बच्चा ही असल में शिक्षित किया जाना चाहिए। चार साल के पहले ही क्योंकि जिंदगी का पचास प्रतिशत सीख लेता है चार साल का बच्चा। पचास प्रतिशत बाकी जिंदगी में सीखेगा है। तो जिस बच्चे ने चार साल अशिक्षा में गुजार दिए अब इसको ठीक से शिक्षित करना असंभव है। लेकिन हमारी पुरानी आदत वह हम उसको जारी रखे हैं। हम सब चीजों के मामले में ऐसा हुआ है। सारी चीजों के मामले में ऐसा होता है कि हमारे पास दिमाग होता है पुराना, घटना घटती है नई, पुरानी परिस्थिति में नई घटना को जोड़ना चाहते हैं। इसको भूल जाते हैं कि नई घटना भी पैदा होगी नई चीज के साथ। तो मेरी अपनी समझ यह है कि जब तक हम रोक रहे हैं आटोमेटिक यंत्र को।

तो असल में हमें आटोमेटिक यंत्र को नहीं रोकना चाहिए। हमें बेकार आदमी को पैसा मिलना चाहिए, इसकी मांग बढ़ानी चाहिए। आटोमेटिक यंत्र को रोकने की जरूरत नहीं है। वह तो खतरनाक है। देखें आप यह हमारी...लेकिन स्वभावतः चोट तो इस पर पड़ती है। आज एक कारखाने में अगर आटोमेटिक यंत्र लगेगा तो उस कारखाने के मजदूर बेकार होंगे और उसके मजदूर लड़ाई करेंगे आटोमेटिक यंत्र के खिलाफ। उनको पता नहीं कि आटोमेटिक यंत्र के खिलाफ लड़ाई अपने ही खिलाफ लड़ाई है। वे यह कह रहे हैं कि हम मजदूर ही रहेंगे। वे यह कह रहे हैं। उनको आटोमेटिक यंत्र के खिलाफ नहीं लड़ना चाहिए, उन्हें लड़ना चाहिए कि हम काम छोड़ने को राजी हैं काम के छोड़ने के बदले में क्या देते हो?

यह सवाल नहीं है आटोमेटिक यंत्र बराबर लाओ। जिस दिन सारी दुनिया आटोमेटिक यंत्र पर आ जाएगी उस दिन सारी दुनिया में इतना एक्सपेंशन होगा चेतना का, इतना बड़ा विस्फोट होगा—कि मैं मानता हूं, लाखों बुद्ध एक साथ पैदा हो सकेंगे। असल में, बुद्ध भी बेकार घर में पैदा होते हैं, महावीर भी बेकार घर में पैदा होते हैं। जहां वे मुक्त हैं काम से, वे कोई काम नहीं कर रहे हैं। आज तक दुनिया में जो जिसको हम श्रेष्ठ चेतना कहें, वह चाहे गांधी की हो—वे भी दीवान के बेटे हैं—वे भी कोई चौबीस घंटे चर्खा चलाने वाले के घर में पैदा नहीं हो जाते। सारी दुनिया में जो चेतना विकसित होती है वह संपन्न परिवारों में या संपन्न समाजों में पैदा होती है।

हमने ब्राह्मण को काम से मुक्त कर दिया था हिंदुस्तान में। उससे हम काम नहीं लेते थे, उसकी हम सेवा करते थे। उसको हमने छोड़ दिया था कि वह जो सोचना चाहे सोचे। उसको काम की जरूरत ही नहीं थी। भिक्षा का मतलब यह था कि समाज उसको देगा। तो हिंदुस्तान के ब्राह्मण ने अनूठा चीजें उपलब्ध की जो दुनिया में कोई भी नहीं कर सका। बेकार ब्राह्मण का परिणाम है और कोई कारण नहीं है उसका। अगर शूद्र को भी उतना ही बेकार किया जा सके तो शूद्र भी उतने ही बड़े महर्षि पैदा कर सकेगा जितने ब्राह्मण ने पैदा किए। वह अनएंप्लाइड लेकिन सुविधा उपलब्ध। बेकार लेकिन उसको भोजन की चिंता नहीं। तो ब्राह्मण क्या करता, उसने आकाश की बड़ी उड़ाने ली। जैसी उड़ान ब्राह्मण ले सका है, एज ए होल कम्युनिटी की तरह, ऐसी दुनिया की कोई कम्युनिटी नहीं ले सकी। ले ही नहीं सकती क्योंकि कोई कम्युनिटी इतनी बेकार नहीं रही अतीत में।

दुनिया में हिंदुस्तान में पहली दफे बेकारी का प्रयोग किया है। ब्राह्मण जो है उसको हमने कहा कि तुम बेकार रहो, तुम सिर्फ सोचो। तुम गाओ, तुम चिंतन करो, तुम नाचो, तुम खोजो, हम तुमसे काम न लेंगे, न हम साबुन बनवाएंगे, न हम तुमसे कपड़ा बुनवाएंगे, न हम तुमसे खेती करवाएंगे, यह हम कर लेंगे। लेकिन कुछ और ऊंची खोज तुम कर लाओ। तो वह ऊंची खोज कर सका है। आज पश्चिम में वैज्ञानिक काम से मुक्त हो गया है। आज उससे हम दूसरे काम नहीं ले रहे हैं। आज सिर्फ विज्ञान की, तो वह चांद पर उतर पा रहा है। गांधी जी कोई वैज्ञानिक पैदा नहीं कर सकते कभी भी। क्योंकि वह उनको जो आब्सेशन है, उनको जो रोग है वह यह है कि श्रम भगवान है। श्रम-व्रम भगवान नहीं है। श्रम सिर्फ गुलामी है, अबुद्धि है, श्रम अज्ञान है। हम जब तक अज्ञानी हैं तब तक श्रम हमको मजबूरी है, वह हमारी नेसेसरी ईविल है। उसको भगवान-वगवान कहने की जरूरत नहीं है कि श्रम देवता है और उसकी पूजा करो। कोई देवता नहीं है श्रम। हम श्रम भी इसीलिए करते हैं कि विश्राम कर सकें, और कोई कारण नहीं है। अगर दिन भर एक आदमी मजदूरी करता है तो सांझ घर आराम से लेट सकेगा इसलिए करता है, और कोई कारण नहीं है।

जिन समाजों में गुलाम थे, उन समाजों ने बड़ा विकास किया। मैं गुलाम के पक्ष में नहीं हूं। लेकिन यह देखने जैसा मामला है। ताजमहल गुलामी से पैदा हुआ। पिरामिड गुलामों के इजिप्त में बने। दुनिया में जो भी विकास हुआ—जैसे एथेंस में सुकरात और प्लेटो और अरस्तू पैदा हुए, वह गुलामों का जमाना था। क्योंकि एथेंस में भी उन्होंने यह इंतजाम किया कि एक गुलामों का वर्ग ही खड़ा कर दिया जो काम ही करेगा। वह मशीन हो गया, वह आटोमेटिक मशीन है, और कुछ नहीं है। आदमी को आटोमेटिक मशीन बना दिया, वह सिर्फ काम करेगा। कुछ लोग सिर्फ सोचेंगे।

लेकिन यह बड़ा दुखद है। अगर हमें दुनिया को गुलामी से मुक्त करना है तो गांधी जी की बात भूल कर मत मानना, नहीं तो गुलामी से मुक्त नहीं होगी दुनिया। अगर आप, हिंदुस्तान को अगर एक आदमी को चिंतन के लिए छोड़ना है तो दूसरे लोगों को काम करना पड़ेगा। समझ लें कि मैं अगर चिंतन के लिए मुक्त मुझे छोड़ना है, तो आप मुझसे नहीं चाहेंगे कि मैं चरखा चलाता रहूं। तो आपको चरखा चलाना पड़ेगा मेरे। लिए लेकिन यह तो बड़ी बुरी बात है। आपसे मैं गुलामी करवा रहा हूं। अंततः मैं आपसे गुलामी करवा रहा हूं, वह परोक्ष हो, प्रत्यक्ष हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझे खाना चाहिए, अगर मैं खेतीबाड़ी में लग जाऊं तो ठीक है मैं खेतीबाड़ी में ही लगा रहूंगा। लेकिन तब मैं जो कर सकता हूं वह नहीं कर पाऊंगा। तो कोई मेरे लिए खेतीबाड़ी कर रहा है, यह बहुत अमानवीय है कि मैं खाऊं, कोई खेतीबाड़ी करे।

तो मैं कहता हूं, मशीन खेतीबाड़ी करे। किसी को करने की जरूरत नहीं। मशीन के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं होता। इसलिए मशीन गुलाम बनाई जा सकती है। मशीन के पास चूंकि कोई आत्मा नहीं है। अगर आप गांधी जी की बात मानते हैं तो गुलामी कभी खत्म नहीं होगी। सिर्फ पूर्ण मशीन ही मनुष्य को पूर्ण मुक्त कर सकती है। इसलिए मेरी लड़ाई है। वह लड़ाई गांधी जी से बहुत नहीं है। वह लड़ाई आपके दिमाग से बहुत ज्यादा है। इसमें गांधी जी, बहुत लेना-देना नहीं है मेरे लिए।

आपने...में ऐसा कहा था कि मैं गांधी जी का परम भक्त हूं।

नहीं, मैं काहे को कहूंगा, मैं किसी का परम भक्त नहीं हूं। गांधी जी मेरे परम भक्त नहीं, मैं उनका क्यों होने वाला हूं। यह गोरख धंधा मैं पालता नहीं। न मैं किसी का परम भक्त हूं, न कोई मेरा परम भक्त है। भक्त को ही नहीं मानता मैं। बुद्धिहीनता से भक्ति पैदा होती है। नहीं तो कोई जरूरत नहीं है।

जो आपने कहा वैसा ही हेनरी फोर्ड ने कहा था, मोटर बहुत बन गई, तो उन्होंने कहा था, अब एक ऐसा समय आया है कि जहां हमारा एक फर्ज होता है कि जिनके घरों में पैसा नहीं है उनके घरों में पैसा पहुंचाना चाहिए। और उसके लिए उन्होंने फिर यह सोचा कि जहां गेहूं पैदा होता है वहां ब्रेड बनाओ। तो आगे चल कर लोगों के, आपका खयाल यह है कि एक समाज ऐसा बनेगा जिसमें लोगों को मुक्ति दी जाएगी। वह भी एक संस्कृति हो सकती है कि जिसमें सब लोग कुछ काम न करें, और कल्चर ही करे, तो संस्कृति का अनुभव है कि जहां-जहां

गुलामी पनपी है वहां वह संस्कृति नष्ट हो गई है। रोम का, सब आप जो-जो बताते हैं। और हमने देखा कि टाल्सटाय और जितने अच्छे से अच्छे विचारक हुए।

असल में, ऐसी गलत बातें जो करते हैं उनको आप अच्छा विचारक कहते हैं और कोई बात नहीं है। मजा यह है कि टालस्टाय को आप अच्छा आदमी मानते हैं। इसकी वजह टालस्टाय अच्छा है ऐसा नहीं। टालस्टाय से दुष्ट आदमी खोजना मुश्किल है पृथ्वी पर। मैं आपको कारण से कहता हूं। टालस्टाय से ज्यादा कामुक, दुष्ट, घृणा और हिंसा से भरा आदमी खोजना मुश्किल है। लेकिन आपको अच्छा लगेगा क्योंकि वह आप जिसको अच्छा समझते हैं वह कह रहा है। वह आखिरी दम तक बेचैन और परेशान मरा है।

गांधी ने अपने जितने गुरु चुने, सारी दुनिया में छांट कर नासमझ चुने। छांट कर, उसकी वजह यह नहीं कि वे योग्य आदमी थे। उसकी वजह गांधी जी की जो समझ थी उससे वे चुनाव करेंगे। उसका चुनाव तो वे टालस्टाय को चुनेंगे, रस्किन को चुनेंगे, थॉरो को चुनेंगे, ये कोई भी आदमी जगत के हित में नहीं है। ये कोई भी आदमी जगत के हित में नहीं है। इनकी जो बातचीत है वह हमेशा पीछे लौटने वाली बातचीत है। और ये सब परेशान लोग हैं। ये बहुत व्यथित और हैरानी से और जिंदगी जिनकी जरा भी सुलझी हुई नहीं है, बहुत उलझी हुई और परेशानी से भरी हुई है।

गांधी जी की जिंदगी भी बहुत सुलझी हुई जिंदगी नहीं है। मगर हम हमारी तकलीफें ये हैं कि हम जिसको महात्मा मान लें, उसको हम देखना बंद कर देते हैं। असल में, महात्मा का मतलब यह है कि जिसकी तरफ हमने आंख बंद कर लीं, अब हम देखेंगे न। और हम समझाए चले जाते हैं कि गांधी और कस्तूरबा का संबंध आदर्श दांपत्य है। इससे रद्दी दांपत्य खोजना मुश्किल है। मगर हम कहे चले जाते हैं, कहे चले जाते हैं। आधी रात को गांधी कस्तूरबा को निकाल घर के बाहर कर देते हैं। इनकी कलह शाश्वत है। लेकिन हम आदर्श कहे चले जाते हैं, हम लेख लिखे चले जाते हैं।

टालस्टाय और उसकी पत्नी के संबंध इतने नारकीय हैं जिनका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन सारी की सारी कठिनाई जो है हमारी वह यह है कि हम किसको अच्छा कहें। कई बार ऐसा होता है कि शायद ही कोई आइंस्टीन को अच्छा कहे। क्योंकि न तो वह चरखा चला रहा है, न वह पान का त्याग कर रहा है, न वह सिगरेट का त्याग कर रहा है, न शराब का त्याग कर रहा है। लेकिन मनुष्य-जाति को जो फायदा पहुंचने वाला है वह इस आदमी से पहुंचने वाला है। न टालस्टाय से पहुंचने वाला है, न रस्किन से, न गांधी से। क्योंकि कल एटामिक एनर्जी ही मनुष्य को सारी गुलामी से मुक्त कर पाएगी। लेकिन इस सबको कभी महात्माओं में हम फिक्र न करेंगे। हम महात्माओं की फिक्र उनकी करेंगे जो कि किसी चीज से किसी को कभी मुक्त नहीं कर पाए हैं।

लेकिन हमारी कोई तृप्ति उनसे जरूर होती है। कोई तृप्ति हमारी जरूर होती है, उसकी वजह से हम उनको अच्छा आदमी कहते हैं। अब हमारी क्या तृप्ति होती है? टालस्टाय से हमें कौन सी तृप्ति मिलती है? रस्किन से कौन सी तृप्ति मिलती है? गांधी से कौन सी तृप्ति मिलती है? असल में, गरीब आदमी इतने दिन से गरीब है तो उसे अपनी गरीबी में ग्लोरीफिकेशन चाहिए। उसको चाहिए कि गरीबी कोई ऊंची चीज है। एक आदमी पांच

हजार साल से गरीब है। वह गरीबी से तो परेशान है ही, अगर कोई उसे समझाने वाला मिल जाए कि गरीबी तो बड़ी भगवान की कृपा है। तो उसको बड़ा कंसोलेशन होगा।

महावीर जब राज्य छोड़ कर सड़क पर खड़े हो गए तो गरीब बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा, यह है महान त्याग। और गरीब ने समझा कि भगवान हम पर बड़ा कृपालु है क्योंकि महावीर को जो हमको करना पड़ा वह हमको जन्म से मिला हुआ है। जो दुनिया में गरीब की लंबी परंपरा है, वह गरीब की लंबी परंपरा त्यागियों को आदर देती है। क्योंकि त्यागी का मतलब हैः स्वेच्छा से बना हुआ गरीब। वह वालेंटरी पावर्टी है उसकी। और मजे की बात यह है कि वह पुअर इसलिए नहीं बनता, वालेंटरी पावर्टी जो उसकी स्वेच्छा से दरिद्रता वरण की है, वह कोई दरिद्रता के रस से नहीं की है; वह संपन्नता से अरुचि से पैदा होती है। इसका असली कारण बहुत दूसरा है।

बुद्ध के पास बुद्ध के बाप ने सब सुंदर औरतें इकट्ठी कर दीं। ऊब गया, कोई भी ऊब जाएगा। बुद्ध भी कोई खूबी नहीं है उसमें। किसी भी साधारण आदमी के पास दस-पच्चीस सुंदर स्त्रियां इकट्ठी कर दो वह एकदम भाग खड़ा होगा उनसे। क्योंकि सुंदर स्त्री जितनी दूर होती है उतनी सुंदर मालूम पड़ती है। और पास ही आ जाए तो थोड़ी देर में घबड़ाने वाली और उबाने वाली हो जाती है। तो बुद्ध कोई ब्रह्मचर्य के लिए नहीं भाग गए हैं। असली कारण यह है कि औरतें इतनी इकट्ठी हैं कि औरतों से भागने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह गया।

लेकिन जिसके पास औरत नहीं है वह बड़ा प्रसन्न हो रहा है। वह कह रहा है, हम पर भगवान की बड़ी कृपा है। हमको पहले से ही नहीं, तुमको भागना पड़ रहा है। इस पर कोई कृपा नहीं है यह औरतों के पीछे भागता ही रहेगा। जहां भी संपन्नता गहरी पैदा होती है वहां संपन्नता से अरुचि पैदा हो जाती है। असल में, कोई भी चीज, मनुष्य के मन के बड़े अदभुत नियम हैं, एक नियम यह है कि हर चीज का स्वाद हमें उबा देता है। गरीब आदमी अमीर होने की कोशिश में लग जाता है। एक दफा आप अमीर हो जाएं आप गरीब होने की कोशिश में लग जाएंगे।

ये सब गरीब होने की कोशिश से पैदा हुए महात्मा हैं। यह टालस्टाय, यह रस्किन, ये सारे के सारे लोग। ये अमीरी से ऊब गए हैं। इनके मुंह का स्वाद खराब हो गया है—अच्छे भोजन से, इनको अब रूखी-सूखी रोटी चाहिए। अब ये नेचरोपैथी के चक्कर में पड़ेंगे। ये बच नहीं सकते। जिस मुल्क में ज्यादा खाना पैदा होता है वहां उपवास का कल्ट फौरन पकड़ जाता है। अमेरिका में जोर से पकड़ रहा है। जगह-जगह उपवास करने वाले बैठे हुए हैं। असल में जब ओवरफेडिंग हो जाती है और ज्यादा आदमी खा जाता है, तो खाने से ऊब पैदा होती है, फिर न खाने में बड़ा आनंद आता है।

महावीर को आनंद आता है न खाने में, बिहार के अकाल में पड़े आदमी को बिलकुल आनंद नहीं आता नहीं खाने में। असल में, जो हमें मिलता है हम उससे ऊब जाते हैं। बहुत लोग गरीब हैं इसलिए हम सब गरीबी से ऊबे हुए हैं। बहुत थोड़े लोग अमीर हैं इसलिए बहुत थोड़े लोग अमीरी से ऊब पाते हैं। और जो अमीर हैं वे भी पूरी तरह अमीर नहीं हैं। जब तक पूरी सोसाइटी अमीर न हो तब तक एक इंडिविजुअल का पूरा अमीर होना बहुत मुश्किल है। बहुत मुश्किल है, वह हमेशा अमीर हो ही नहीं पाता, हमेशा होता रहता है। वह हमेशा

प्रोसेस में रहता है। कभी ऐसा नहीं हो पाता कि वह अनुभव कर पाए कि अब मैं अमीर हो गया। क्योंकि हमेशा कोई आगे, हमेशा कोई पीछे।

जिस समाज की मैं बात कर रहा हूं, वैसा समाज पहली दफा अमीर होगा, और पहला समाज पहली दफा दरिद्रता से ही मुक्त नहीं होगा, अमीरी से भी मुक्त हो जाएगा। हमारी जो पकड़ है। एक आदमी अगर चौबीस घंटे कार में चले तो उसको सड़क पर पैदल चलने का मजे का हिसाब ही नहीं है। लेकिन आप यह मत सोचना कि कार के बगल से कीचड़ उड़ते हुए जो आदमी पैदल चल रहा है उसको भी वही मजा आ रहा है। इस भ्रम में आप मत पड़ना। कार में बैठे आदमी को कभी-कभी सड़क पर चलने का बड़ा मजा आता है। और जब वह सड़क पर चलता है तब सड़क पर चलने वाले के अहंकार को तृप्ति भी मिलती है कि अच्छा, मतलब सड़क पर चलने का भी मजा है। यानी हम नाहक ही परेशान हो रहे हैं।

लेकिन ध्यान रहे, सड़क पर चलने का मजा सिर्फ कार उपलब्ध हो तो ही है। और गरीब होने का मजा तभी है जब कि अमीरी चखी गई हो। नंगे होने का मजा तभी है जब कि कपड़े खूब मिल चुके हों, अन्यथा नहीं है। तो मैं तो पक्ष में हूं किसी और अर्थ में। मैं इस अर्थ में पक्ष में हूं कि जिस दिन दुनिया पूरी तरफ एफ्लुएंट होगी उस दिन गरीबी अमीरी की दोनों बेवकूफियां खत्म हो जाएंगी। उस दिन पहली दफे सादगी आएगी जो भीतरी होगी। जो बाहरी नहीं होगी, उसका बाहर से कोई संबंध नहीं होगा। कौन आदमी कितने कपड़े पहनता है इससे सादगी का कोई संबंध ही नहीं है। आदमी कपड़ों को किस भांति लेता है इससे सादगी का संबंध है। सादगी जो है वह एटीटयूट है, व्यवहार नहीं है। कौन आदमी कार में बैठता है कौन नहीं बैठता, यह सवाल नहीं है। कार में बैठने को और पैदल चलने को अगर कोई आदमी एक जैसा लेने लगे। तब मैं समझूंगा कि सादगी आई, नहीं तो वह आदमी जटिल है। वह आदमी जटिल है।

अगर मैं कहूं कि मैं रेशम के ही कपड़े पहनूंगा और खादी नहीं पहन सकता, मर जाऊंगा खादी पहननी पड़ी तो, तो मैं जटिल हूं। इससे उलटा आदमी भी जटिल है, वह कहता है, मैं खादी ही पहनूंगा, नहीं तो मर जाऊंगा, रेशम छू भी नहीं सकता, यह भी जटिल है। ये दोनों आदमी जटिल हैं, यह सादा कोई नहीं है इनमें। असल में, अब तक दुनिया में सादगी आ नहीं सकी क्योंकि द्वंद्व बहुत तीव्र है गरीब और अमीर का। तो इस सादगी का मतलब होता है गरीबी की स्वीकृति, और कोई मतलब नहीं होता है। लेकिन गरीबी-अमीरी से जब दोनों से चित्त मुक्त होता है तभी सादगी आती है, वह सादगी बहुत अन्य है। उस सादगी को सादगी नहीं कहना चाहिए। सरलता है, वह सिंप्लीसिटी है आंत्रिक। उसके तो मैं पक्ष में हूं लेकिन मैं मानता हूं गांधी उस अर्थों में सरल नहीं हैं वे बहुत जटिल हैं। उनकी सारी सादगी चुनी हुई कैलकुलेटिड है, उसमें एक-एक इंच का हिसाब है। सादा आदमी हिसाब नहीं रख सकता। सादा आदमी सादा होता है। सादा होने का मतलब यह हैः कैलकुलेशन कनिंगनेस है, चालाकी है।

जो आदमी चौबीस घंटे कैलकुलेट कर रहा है कि इतना खाऊंगा, इतना पहनूंगा, इतने कमरे में रहूंगा, ऐसे उठूंगा, ऐसे...यह आदमी चालाक है। यह आदमी जिंदगी में गणित बिठा रहा है। सरल का मतलब ही यह है कि आदमी सरलता से जी रहा है। जो मिलता है वह खा लेता है, जहां ठहरने मिलता है सो जाता है। लेकिन यह

कब संभव होगा? यह तब संभव होगा जब मशीन ने सारा काम ले लिया होगा। उसके पहले यह बड़े पैमाने पर संभव नहीं हो सकता है।

इसलिए मैं तो वृहत उद्योग के पक्ष में हूं। और आप जो कहते हैं कि अंबर से इतना काम हो सकता है। अगर ठीक से समझें तो अंबर गांधीवादी का समझौता है। अंबर गांधीवादी का विकास नहीं, कंप्रोमाइज है। अंबर गांधीवादी की हार है। क्योंकि अंबर को अब कहां रोकिएगा? आप कह रहे हैं, आटोमेटिक हो जाए। तो मतलब क्या रहा? तो लूम ने क्या बिगाड़ा है? सिर्फ नाम रखने से फर्क पड़ता है।

गांधीवादी की हार है अंबर। मैं इसलिए कहता हूं, यह मैं इसलिए कहता हूं कि रुकिएगा कहां? अगर एक आदमी पांच तकली चला सकता है अंबर से, तो पचास क्यों नहीं, पांच हजार क्यों नहीं? और एक आदमी पांच हजार चला सकता है तो एक आदमी के बिना चल सकती हो तो हर्ज क्या है? इसमें रुकिएगा कहां? इसमें सवाल जो है, इसको मैं कंप्रोमाइज कहता हूं, यह हार है, गांधीवादी मरा अंबर चरखे के साथ। अंबर चरखा दफन करने वाली व्यवस्था है उसकी, क्योंकि अब रुकेगा कहां वह? रुकने का कहां इंतजाम करिएगा? और जब आप कहते हैं कि अंबर से इतना काम हो रहा है। आटोमेटिक अंबर हो जाए तो और काम होगा। तो मतलब यह रहा कि आटोमेटिक मशीन और आटोमेटिक अंबर में सिर्फ नाम का ही फर्क है, गांधीवादी मशीन हो गई। तो कोई फर्क पड़ने वाला है। जो मैं आपसे कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि अगर गांधी जी की हम दशा को समझें मन की तो अंबर के पक्ष में नहीं हैं। गांधी जी सख्त खिलाफ हैं यंत्र के बढ़ने के। और ऐसे यंत्रों के भी खिलाफ हैं जिनको आप कभी सोच नहीं सकते थे। टेलीग्राफ के भी खिलाफ हैं। उन्नीस सौ पांच में खिलाफ थे। मैं भी कई दफा सोचता था कि उन्नीस सौ पांच में लिखी गई किताब पर भरोसा नहीं करना चाहिए। आदमी फिर और चालीस साल जी लिया है तो आदमी और जिंदा आदमी था, रोज बदल रहा था। लेकिन उन्नीस सौ पैंतालीस में नेहरू ने एक पत्र में गांधी जी को पूछा है कि आप हिंदू स्वराज में कही गई बातों से क्या अब भी राजी हैं? तो गांधी जी ने कहा, अक्षर अक्षर। हिंदू स्वराज में कहा हुआ है कि रेलगाड़ी पाप है। तो जो आदमी रेलगाड़ी को पाप कह रहा है वह आदमी अंबर चरखा वाला नहीं है।

टेलीग्राफ खतरनाक है। इसकी जरूरत नहीं है। हवाई जहाज की जगह नहीं है। आप हैरान होंगे कि एलोपैथी की भी जगह नहीं है। बड़े यंत्रों की जहां भी सुविधा है वहां कोई जगह नहीं है। और उन्नीस सौ पैंतालीस में भी वे कहते हैं कि मैं हिंदू स्वराज से सहमत हूं। यह गांधीवादी का समझौता है गांधी जी का नहीं। यह जो मैं कह रहा हूं, अंबर चर्खा है, यह गांधी के मरने के बाद गांधीवादी का समझौता है, वह रोज समझौता करेगा। क्योंकि उसे करना पड़ेगा। क्योंकि उसकी बातें नासमझी पूर्ण हैं। उनको कोई मान सकता नहीं। अब उसको रोज-रोज इन चीज से लौटना पड़ेगा वापस, वह रोज वापस लौट रहा है। बीस साल पूरे होते-होते वह वहीं खड़ा हो जाएगा जहां गांधीजी ने उसको पकड़ा था। वह वापस लौट आएगा। गांधी जी ने जो ऊहापोह पैदा किया था वह खत्म हो जाएगा क्योंकि वह न तो प्रगति के पक्ष में है, न वह मनुष्य के हित में है, न उससे मंगल सिद्ध होने वाला है, न उससे कुछ होने वाला है। और अब जो सवाल है, कई दफा मुझे ऐसा लगता है कि गांधी जी को जिंदगी के सवालों का भी पूरा साक्षात नहीं है। इसलिए वे बहुत अजीब सी बातें कहते रहते हैं।

मेरी अपनी समझ यह है कि जिंदगी के सारे सवालों का साक्षात उनको बिलकुल नहीं है। जैसे उनको यह भी पता नहीं है कि जनसंख्या कितनी इस सदी के पूरे होते-होते हो जाएगी। इस सदी के पूरे होते-होते इतनी जनसंख्या हो जाएगी कि खेती तो करना ही मुश्किल हो जाएगा। यह सवाल नहीं है कि करो या न करो। खेती के लिए जमीन नहीं बचने वाली। और इक्कीसवीं सदी के पूरे होते-होते तो अगर जनसंख्या इस मात्रा से बढ़ती है और अगर गांधीवादी बर्थ कंट्रोल के खिलाफ प्रचार किए चले जाते हैं, तो बढ़ेगी ही। कोई और रुकने का कारण नहीं है। इक्कीसवीं सदी पूरे होते सिर्फ सौ साल में एक वर्ग फीट जमीन एक आदमी के पास बचेगी। जमीन पर इतने आदमी होंगे। आदमियों का वजन जमीन से ज्यादा हो जाएगा। तो एक वर्ग फीट जमीन में अंबर चरखा चलाइएगा, खेती करिएगा, क्या करने के इरादे हैं? गांधी जी को पर्सपैक्टिव नहीं है पूरा कि यह हो क्या रहा है? कितने जोर से...चरखा एक जीवन-व्यवस्था का अंग थी, जब संख्या बिलकुल न के बराबर थी। खेती एक जीवन-व्यवस्था का अंग थी, जब जमीन बहुत थी और लोग बहुत कम थे। अब तो सिंथेटिक फूड की जरूरत पड़ेगी, गोली से ही काम चलाना है भविष्य में। सबको भोजन नहीं मिल सकेगा। भोजन का उपाय भी नहीं है। और मैं समझता हूं बेकार भी है। भोजन बहुत ही अनइकॉनामिक व्यवस्था है।

तीन पाव खाओ, फिर आधा पाव पचाओ, फिर ढाई पाव निकालो, एकदम अवैज्ञानिक है। इसमें कोई मतलब नहीं है। फिर उस ढाई पाव को गांधी जी के गड्ढे में डालो, फिर उसका खाद बनाओ। यह सब पागलपन है। खाद भी मशीन बना सकती है और गोली भी मशीन बना सकती है। और मजा यह है कि जिस दिन आदमी सिंथेटिक फूड पर आ जाएगा कि एक गोली दिन में खा ले और चौबीस घंटे की उसकी वैटिलिटी, कि उसे पूरा सामान मिल जाएगा। उस दिन बीमारियां तिरोहित हो जाएंगी, नब्बे प्रतिशत बीमारियां तिरोहित हो जाएंगी। और आदमी में पहली दफा सौंदर्य का विकास होगा। और पहली दफा...

और अगर गांधी उस सोसाइटी को प्रभावित कर पाते हैं तो उसी सोसाइटी को प्रभावित कर पाते हैं। हिंदुस्तान की आजादी में जितना गांधी का हाथ है उतना अंग्रेजों का भी हाथ है। उतना हिंदुस्तानियों का भी हाथ है। जो लोग आजादी की लड़ाई में लड़े उनका भी हाथ है, जो नहीं लड़े उनका भी हाथ है। यह सब टोटल फेनामिना है ये इकट्ठी घटनाएं हैं। लेकिन हमारी बुद्धि को दिक्कत होती है कि हम एक-एक आदमी को पकड़ लेते, और फिर हम उनको पूजे चले जाते। इसका मैं कोई मूल्य नहीं मानता व्यक्ति का। कोई इतना परेशान होने की जरूरत नहीं है। हां, जो उन्होंने किया है वह कर सके एक समाज में विशेष समाज के दायरे में, लेकिन अगर मुझसे पूछते हो तो खतरा क्या है?

खतरा यह है जैसे कि इंग्लैंड था। दूसरा महायुद्ध हुआ और इंग्लैंड ने तत्काल चर्चिल को ताकत दे दी। क्योंकि इंग्लैंड को लगा कि चर्चिल आदमी युद्ध के क्षण में उपयोगी है। मुल्क लड़ रहा है, तो एक लड़ाका आदमी चाहिए ताकतवर। फौरन ताकत दे दी। चर्चिल के पहले जो बैठा था उसको ऐसे अलग कर दिया जैसे वह था ही नहीं। फिर युद्ध जीत गया, चर्चिल की जय-जयकार कर दी और युद्ध के बाद चर्चिल को चुपचाप अलग कर दिया। और ऐसी फिक्र ही नहीं की कि इस आदमी ने जिसने युद्ध जीताया। इंग्लैंड के इतिहास में चर्चिल से कीमती आदमी नहीं है, पूरे इतिहास में। लेकिन इसको वे चुपचाप लग कर सके और दूसरे आदमी को बिठा सके।

हमारी क्या तकलीफ है, गांधी जी ने आजादी क्या दिला दी, अब हम गांधी जी से पीड़ित रहेंगे न मालूम कितने समय तक। गांधी जी आजादी के लिए क्या लड़े हमें मुश्किल में डाल गए। अब हम न मालूम कितने हजारों साल तक उपद्रव बांधे रखेंगे कि गांधीजी ने यह किया, गांधीजी ने वह किया। जो किया वह उनकी मौज थी। बात खत्म हो गई। उसको अध्याय को खत्म करो। अब क्या करना है इसकी फिक्र करो।

तो मैं व्यक्तियों में बहुत चिंता नहीं लेता। निश्चित ही उन्होंने काम किया है, और हजारों लोगों ने काम किया है। भगतसिंह का हाथ है, सुभाष का हाथ है, आजाद का हाथ है, गांधी का हाथ है, नेहरू का, तिलक का, गोखले का, सबका हाथ है। कौन आदमी आखिर में बचा यह बिलकुल सांयोगिक है। जिसको पूरा श्रेय मिल जाता है। लेकिन सबके हाथ हैं। और ठीक है, बात खत्म हो गई अब उसको कब तक लिए बैठे रहोगे। अब पंद्रह अगस्त को खत्म होने दोगे कि उसको पकड़े ही रखोगे। उसको जाने दो। बीस साल बीत गया, अब उसको छोड़ते नहीं, उसको कब तक पकड़े रहोगे। जो कौमें अतीत को इतने जोर से पकड़ती हैं कि उनकी ग्रिप भविष्य पर कम हो जाती है। अब भविष्य में कुछ आदमी पैदा करने हों तो गांधी को अब नमस्कार करो। उनको कहो कि अब आप जाइए, अब आप बहुत हो गए। और वे तो चले ही गए हैं। हमारी खोपड़ी खराब है, हम उनको पकड़े हुए बैठे हैं। अब जय गांधी कार लगाए रहो। तो उससे कोई अर्थ नहीं। जो इतिहास जा चुका वह जा चुका, उसमें अच्छा बुरा जो हुआ वह हुआ।

सवाल यह नहीं है कि उसमें किसको श्रेय दें और किसको न दें। सवाल यह है कि उस इतिहास से अब हमारा भविष्य क्या होगा? क्या हम चरखा चलाते रहेंगे? क्योंकि गांधी जी को श्रेय देना है। तो फिर मुश्किल हो जाएगी। यह मेरे लिए इररिलेवेंट है। उसमें मैं कोई बातचीत करना ही पसंद नहीं करता। समय खराब करना है।

मेरे लिए भविष्य है अर्थपूर्ण। अतीत निबट गया, उसका अब...जिस अतीत को हम बदल नहीं सकते उसकी बात भी क्या करनी। जिस अतीत को हम छू नहीं सकते उसका बात करने से फायदा भी क्या है। ठीक है, वह बात समाप्त हो गई। उससे कोई लेना-देना नहीं। आपके पिता आपको पैदा कर गए। अब आपसे ही काम है। अब आपके पिता ने आपको पैदा किया इसको कब तक चिल्लाते रहिएगा। पैदा किया यह बात ठीक है। बात खत्म हो गई। लेकिन अब इसी को गुणगान गाते रहिए जिंदगी भर कि मेरे पिता ने मुझको पैदा किया है। तो अब और कोई काम करना है कि यही गुणगान करना है? आप भी कुछ करिएगा कि पिता ने पैदा किया काम वही खतम कर गए आपका भी। यह दृष्टि गलत है।

चीजें टोटल हैं और हमें रोज आगे बढ़ जाना चाहिए। आज में आपसे एक बात कह रहा हूं अब वह कल आप उसको पकड़ें इसकी कोई जरूरत नहीं है। जितनी सार्थक होगी वह आप में डूब जानी चाहिए, खतम हो गई बात, मैं कल मर जाऊं भूल जाना चाहिए। याद भी करने की जरूरत नहीं है। बात खतम हो गई। हमें आगे बढ़ना चाहिए। जिंदगी रोज आगे है और हमारी खोपड़ी रोज पीछे की तरफ है। इससे हमारी दिक्कत है। तो मैं निरंतर कहता हूं कि हम भारत में अगर कार बनाएंगे तो उसमें हम सर्च जो लाइट है हेड लाइट वह पीछे लगाएंगे। चलेगी गाड़ी आगे लाइट पीछे पड़ेगा। क्योंकि हमको उड़ती पीछे की धूल देखने में बड़ा सुख है। अहा, कितना अच्छा रास्ता है।

चलना आगे पड़ता है तो लाइट आगे चाहिए। पीछे को भूलते जाना पड़ता है। धूल उड़ गई रास्ता छूट गया है। वहां कोई लाइट नहीं है। वहां जो छोटे से दो लाल लाइट लगे हैं वे भी पीछे से जो आ रहे हैं उनके लिए हैं, आपके लिए नहीं हैं। एक वह मिरर लगा हुआ है रियर व्यू, वह भी उनके लिए हैं कि जो पीछे आ रहे हैं वे कहीं आपसे टकरा न जाएं। वह उनको याद रखने के लिए उनके स्मरण के लिए नहीं। लेकिन हिंदुस्तान का दिमाग जो है वह रियर व्यू मिरर है, वह बस पीछे ही देखता है, उसके पास आगे कोई दृष्टि नहीं है। कल भी गांधी पैदा करने हैं कि चूक गए। आने वाले भविष्य में भी कोई आदमी पैदा करना है कि बस खतम हो गया आपका काम।

इसलिए पीछे को हमें रोज-रोज शिथिल करके छोड़ देना है। जो उसमें सार्थक है वह हमारे भीतर बच जाता है। उससे डरने की कोई जरूरत नहीं है। यानी मेरा मानना यह है, जो सार्थक है वह बच ही जाता है, उससे हम छूट ही नहीं सकते। जो सार्थक है वह बच ही जाता है, उसमें कहीं कुछ खोता ही नहीं। लेकिन अगर आप कोशिश करके पकड़ें तो जो व्यर्थ है वह पकड़ जाता है। इसलिए इसकी कोई, मैं कोई इसको बड़ा समझता नहीं।